

प्रीत कियो दुःख होय



श्री प्रियदर्शन



प्रीत किये दुःख होय

(नमस्कार महामंत्र के प्रभाव पर सुरसुंदरी चरित्र)

श्री प्रियदर्शन

[आचार्य श्री विजयभद्रगुप्तसूरिजी महाराज]

भावानुवाद

रुनेहदीय



पुनः संपादन

ज्ञानतीर्थ-कोबा

द्वितीय आवृत्ति

वि.सं.२०६५, ३१ अगस्त-२००९

गंगल प्रसंग

राष्ट्रसंत श्रुतोद्धारक आचार्यदेवश्री पद्मसागरसूरिजी

का ७५वाँ जन्मदिवस

तिथि : भाद्र. सुद-११ दि. ३१-८-२००९, सांताक्रूज, मुंबई

मूल्य

पक्की जिल्द : रू. २००-०० कच्ची जिल्द : रू. ९०-००

आर्थिक सौजन्य

शेठ श्री निरंजन नरोत्तमभाई के स्मरणार्थ

ह. शेठ श्री नरोत्तमभाई लालभाई परिवार

प्रकाशक

श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र

आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर

कोबा, ता.जि. गांधीनगर - ३८२००७

फोन नं. (०७९) २३२७६२०४, २३२७६२५२

email : gyanmandir@kobatirth.org

website : www.kobatirth.org

मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टर्स, अमदावाद - ९८२५५९८८५५

टाईटल डीजाइन : आर्य ग्राफीक्स - ९९२५८०९९१०



पूज्य आचार्य भगवंत श्री विजयभद्रगुप्तसूरीश्वरजी

श्रावण शुक्ला १२, वि.सं. १९८९ के दिन पुदगाम महेसाणा (गुजरात) में मणीभाई एवं हीराबहन के कुलदीपक के रूप में जन्मे मूलचन्दभाई, जुही की कली की भांति खिलती-खुलती जवानी में १८ बरस की उम्र में वि.सं. २००७, महावद ५ के दिन राणपुर (सौराष्ट्र) में आचार्य श्रीमद विजयप्रेमसूरीश्वरजी महाराजा के करमकमलों द्वारा दीक्षित होकर पू. भुवनभानुसूरीश्वरजी के शिष्य बने. मुनि श्री भद्रगुप्तविजयजी की दीक्षाजीवन के प्रारंभ काल से ही अध्ययन-अध्यापन की सुदीर्घ यात्रा प्रारंभ हो चुकी थी. ४५ आगमों के सटीक अध्ययनोपरांत दार्शनिक, भारतीय एवं पाश्चात्य तत्वज्ञान, काव्य-साहित्य वगैरह के 'मिलस्टोन' पार करती हुई वह यात्रा सर्जनात्मक क्षितिज की तरफ मुड़ गई. 'महापंथनो यात्री' से २० साल की उम्र में शुरू हुई लेखनयात्रा अंत समय तक अथक एवं अनवरत चली. तरह-तरह का मौलिक साहित्य, तत्वज्ञान, विवेचना, दीर्घ कथाएँ, लघु कथाएँ, काव्यगीत, पत्रों के जरिये स्वच्छ व स्वस्थ मार्गदर्शन परक साहित्य सर्जन द्वारा उनका जीवन सफर दिन-ब-दिन भरापूरा बना रहता था. प्रेमभरा हँसमुख स्वभाव, प्रसन्न व मृदु आंतर-बाह्य व्यक्तित्व एवं बहुजन-हिताय बहुजन-सुखाय प्रवृत्तियाँ उनके जीवन के महत्त्वपूर्ण अंगरूप थी. संघ-शासन विशेष करके युवा पीढ़ी, तरुण पीढ़ी एवं शिशु-संसार के जीवन निर्माण की प्रक्रिया में उन्हें रुचि थी... और इसी से उन्हें संतुष्टि मिलती थी. प्रवचन, वार्तालाप, संस्कार शिबिर, जाप-ध्यान, अनुष्ठान एवं परमात्म भक्ति के विशिष्ट आयोजनों के माध्यम से उनका सहिष्णु व्यक्तित्व भी उतना ही उन्नत एवं उज्ज्वल बना रहा. पूज्यश्री जानने योग्य व्यक्तित्व व महसूस करने योग्य अस्तित्व से सराबोर थे. कोल्हापुर में ता. ४-५-१९८७ के दिन गुरुदेव ने उन्हें आचार्य पद से विभूषित किया. जीवन के अंत समय में लम्बे अरसे तक वे अनेक व्याधियों का सामना करते हुए और ऐसे में भी सतत साहित्य सर्जन करते हुए दिनांक १९-११-१९९९ को श्यामल, अहमदाबाद में कालधर्म को प्राप्त हुए.

प्रकाशकीय

पूज्य आचार्य श्री विजयभद्रगुप्तसूरिजी महाराज (श्री प्रियदर्शन) द्वारा लिखित और विश्वकल्याण प्रकाशन, महेसाणा से प्रकाशित साहित्य, जैन समाज में ही नहीं अपितु जैनेतर समाज में भी बड़ी उत्सुकता और मनोयोग से पढ़ा जाने वाला लोकप्रिय साहित्य है.

पूज्यश्री ने १९ नवम्बर, १९९९ के दिन अहमदाबाद में कालधर्म प्राप्त किया. इसके बाद विश्वकल्याण प्रकाशन ट्रस्ट को विसर्जित कर उनके प्रकाशनों का पुनः प्रकाशन बन्द करने के निर्णय की बात सुनकर हमारे ट्रस्टियों की भावना हुई कि पूज्य आचार्य श्री का उत्कृष्ट साहित्य जनसमुदाय को हमेशा प्राप्त होता रहे, इसके लिये कुछ करना चाहिए.

पूज्य राष्ट्रसंत आचार्य श्री पद्मसागरसूरिजी महाराज को विश्वकल्याण प्रकाशन ट्रस्टमंडल के सदस्यों के निर्णय से अवगत कराया गया. दोनों पूज्य आचार्यश्रीयों की घनिष्ठ मित्रता थी. अन्तिम दिनों में दिवंगत आचार्यश्री ने राष्ट्रसंत आचार्यश्री से मिलने की हार्दिक इच्छा भी व्यक्त की थी. पूज्य आचार्यश्री ने इस कार्य हेतु व्यक्ति, व्यक्तित्व और कृतित्व के आधार पर सहर्ष अपनी सहमती प्रदान की. उनका आशीर्वाद प्राप्त कर कोबातीर्थ के ट्रस्टियों ने इस कार्य को आगे चालू रखने हेतु विश्वकल्याण प्रकाशन ट्रस्ट के सामने प्रस्ताव रखा.

विश्वकल्याण प्रकाशन ट्रस्ट के ट्रस्टियों ने भी कोबातीर्थ के ट्रस्टियों की दिवंगत आचार्यश्री प्रियदर्शन के साहित्य के प्रचार-प्रसार की उत्कृष्ट भावना को ध्यान में लेकर **श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबातीर्थ** को अपने ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित साहित्य के पुनः प्रकाशन का सर्वाधिकार सहर्ष सौंप दिया.

इसके बाद **श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा** ने संस्था द्वारा संचालित **श्रुतसरिता** (जैन बुक स्टॉल) के माध्यम से श्री प्रियदर्शनजी के लोकप्रिय साहित्य के वितरण का कार्य समाज के हित में प्रारम्भ कर दिया.

श्री प्रियदर्शन के अनुपलब्ध साहित्य के पुनः प्रकाशन करने की शृंखला में **प्रीत किये दुःख होय** ग्रंथ को प्रकाशित कर आपके कर कमलों में प्रस्तुत किया जा रहा है.

श्री नमस्कार महामंत्र के अचिन्त्य एवं अनिर्वचनीय प्रभाव को परिस्फुट करने यह दीर्घ कथा सर्वप्रथम 'अरिहंत' (हिन्दी मासिक पत्र) में नवंबर/८९ से दिसंबर/८५ तक 'जीवन है संग्राम' शीर्षक से प्रकाशित हुई थी. अब वह कथा पुस्तक रूप में 'प्रीत किये दुःख होय' शीर्षक से आपके पास पहुंची है.

शेठ श्री संवेगभाई लालभाई के सौजन्य से इस प्रकाशन के लिये **श्री निरंजन नरोत्तमभाई के स्मरणार्थ, हस्ते शेठ श्री नरोत्तमभाई लालभाई परिवार** की ओर से उदारता पूर्वक आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है, इसलिये हम **शेठ श्री नरोत्तमभाई लालभाई परिवार** के ऋणी हैं तथा उनका हार्दिक आभार मानते हैं. आशा है कि भविष्य में भी उनकी ओर से सदैव उदारता पूर्ण सहयोग प्राप्त होता रहेगा.

इस आवृत्ति का प्रूफरिडिंग करने वाले **श्री हेमंतकुमार सिंघ, श्री सुबोधकुमार शर्मा** तथा अंतिम प्रूफ करने हेतु **पंडितवर्य श्री मनोजभाई जैन** का हम हृदय से आभार मानते हैं. संस्था के कम्प्यूटर विभाग में कार्यरत **श्री केतनभाई शाह, श्री संजयभाई गुर्जर व श्री बालसंग ठाकोर** के हम हृदय से आभारी हैं, जिन्होंने इस पुस्तक का सुंदर कम्पोजिंग कर छपाई हेतु बटर प्रिंट निकाला.

आपसे हमारा विनम्र अनुरोध है कि आप अपने मित्रों व स्वजनों में इस प्रेरणादायक सत्साहित्य को वितरित करें. श्रुतज्ञान के प्रचार-प्रसार में आपका लघु योगदान भी आपके लिये लाभदायक सिद्ध होगा.

पुनः प्रकाशन के समय ग्रंथकारश्री के आशय व जिनाज्ञा के विरुद्ध कोई बात रह गयी हो तो मिच्छामि दुक्कड्ढम्. विद्वान पाठकों से निवेदन है कि वे इस ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करें.

अन्त में नये आवरण तथा साज-सज्जा के साथ प्रस्तुत ग्रंथ आपकी जीवनयात्रा का मार्ग प्रशस्त करने में निमित्त बने और विषमताओं में भी समरसता का लाभ कराये ऐसी शुभकामनाओं के साथ...

ट्रस्टीगण

श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा

कथा-परिचय

इस महाकथा का आधार ग्रंथ है- सुरसुंदरी रास. इस रास की रचना पंडितप्रवर श्री वीरविजयजी ने वि. सं. १८५७ में अहमदाबाद में की थी. जैन गुजराती साहित्य में पंडितप्रवर श्री वीरविजयजी का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण एवं असाधारण है. उनकी एक-एक रचना पदलालित्य से परिपूर्ण है. वर्णन शैली भी रोचक एवं बोधगम्य है. सुरसुंदरी रास में उन्होंने साहित्य के नव रसों का प्रयोग बड़े ही सहजता पूर्वक किया है. इस काव्य को पढ़ने से ऐसा आभास होता है कि मानो काव्य की पंक्तियों व शब्दों के सौंदर्य का यौवन निखर रहा हो.

इस रास-काव्य में से कथावस्तु लेकर मैंने प्रस्तुत ग्रंथ वि. सं. २०३७ में धानेरा (गुजरात) के चातुर्मास की अवधि में लिखा है. कथा पढ़ते-पढ़ते आध्यात्मिक रसानुभूति तो होगी ही, साथ ही श्री नवकार महामंत्र के ऊपर अगाध श्रद्धा भी उत्पन्न होगी. सभी इस कथा को पढ़कर अन्तर्मुखी बनें, अनासक्त बनें ऐसी मंगलकामना के साथ.....

- प्रियदर्शन



धर्म कला व श्रुत-साधना का आह्लादक धाम **श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा तीर्थ**

अहमदाबाद-गांधीनगर राजमार्ग पर स्थित साबरमती नदी के समीप सुरम्य वृक्षों की छटाओं से घिरा हुआ यह कोबा तीर्थ प्राकृतिक शान्तिपूर्ण वातावरण का अनुभव कराता है. गच्छाधिपति, महान जैनाचार्य श्रीमत् कैलाससागरसूरीश्वरजी म. सा. की दिव्य कृपा व युगद्रष्टा राष्ट्रसंत आचार्य प्रवर श्रीमत् पद्मसागरसूरीश्वरजी के शुभाशीर्वाद से श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र की स्थापना २६ दिसम्बर १९८० के दिन की गई थी. आचार्यश्री की यह इच्छा थी कि यहाँ पर धर्म, आराधना और ज्ञान-साधना की कोई एकाध प्रवृत्ति ही नहीं वरन् अनेकविध ज्ञान और धर्म-प्रवृत्तियों का महासंगम हो. एतदर्थ आचार्य श्री कैलाससागरसूरीश्वरजी की महान भावनारूप आचार्य श्री कैलाससागरसूरी ज्ञानमंदिर का खास तौर पर निर्माण किया गया.

श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र अनेकविध प्रवृत्तियों में अपनी निम्नलिखित शाखाओं के सत्प्रयासों के साथ धर्मशासन की सेवा में तत्पर है.

(१) महावीरालय : हृदय में अलौकिक धर्मोल्लास जगाने वाला चरम तीर्थकर श्री महावीरस्वामी का शिल्पकला युक्त भव्य प्रासाद 'महावीरालय' दर्शनीय है. प्रथम तल पर गर्भगृह में मूलनायक महावीरस्वामी आदि १३ प्रतिमाओं के दर्शन अलग-अलग देरियों में होते हैं तथा भूमि तल पर आदीश्वर भगवान की भव्य प्रतिमा, माणिभद्रवीर तथा भगवती पद्मावती सहित पांच प्रतिमाओं के दर्शन होते हैं. सभी प्रतिमाएँ इतनी मोहक एवं चुम्बकीय आकर्षण रखती हैं कि लगता है सामने ही बैठे रहें.

मंदिर को परंपरागत शैली में शिल्पांकनों द्वारा रोचक पद्धति से अलंकृत किया गया है, जिससे सीढियों से लेकर शिखर के गुंबज तक तथा रंगमंडप से गर्भगृह का हर प्रदेश जैन शिल्प कला को आधुनिक युग में पुनः जागृत करता दृष्टिगोचर होता है. द्वारों पर उत्कीर्ण भगवान महावीर देव के प्रसंग २४ यक्ष, २४ यक्षिणियों, १६ महाविद्याओं, विविध स्वरूपों में अप्सरा, देव, किन्नर, पशु-पक्षी सहित वेल-वल्लरी आदि इस मंदिर को जैन शिल्प एवं स्थापत्य के क्षेत्र में एक अप्रतिम उदाहरण के रूप में सफलतापूर्वक प्रस्तुत करते हैं.

महावीरालय की विशिष्टता यह है कि आचार्य श्री कैलाससागरसूरीश्वरजी

म.सा. के अन्तिम संस्कार के समय प्रतिवर्ष २२ मई को दुपहर २ बजकर ७ मिनट पर महावीरालय के शिखर में से होकर सूर्य किरणें श्री महावीरस्वामी के ललाट को सूर्यतिलक से देदीप्यमान करे ऐसी अनुपम एवं अद्वितीय व्यवस्था की गई है। प्रति वर्ष इस आह्लादक घटना का दर्शन बड़ी संख्या में जनमेदनी भावविभोर होकर करती है।

(२) आचार्य श्री कैलाससागरसूरि स्मृति मंदिर (गुरु मंदिर) : पूज्य गच्छाधिपति आचार्यदेव प्रशान्तमूर्ति श्रीमत् कैलाससागरसूरीश्वरजी के पुण्य देह के अन्तिम संस्कार स्थल पर पूज्यश्री की पुण्य-स्मृति में संगमरमर का नयनरम्य कलात्मक गुरु मंदिर निर्मित किया गया है। स्फटिक रत्न से निर्मित अनन्तलब्धिनिधान श्री गौतमस्वामीजी की मनोहर मूर्ति तथा स्फटिक से ही निर्मित गुरु चरण-पादुका वास्तव में दर्शनीय हैं।

(३) आचार्य श्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमन्दिर (ज्ञानतीर्थ) : विश्व में जैनधर्म एवं भारतीय संस्कृति के विशालतम अद्यतन साधनों से सुसज्ज शोध संस्थान के रूप में अपना स्थान बना चुका यह ज्ञानतीर्थ श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र की आत्मा है। ज्ञानतीर्थ स्वयं अपने आप में एक लब्धप्रतिष्ठ संस्था है। आचार्य श्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर के अन्तर्गत निम्नलिखित विभाग कार्यरत हैं : **(i) देवद्विगणि क्षमाश्रमण हस्तप्रत भांडागार (ii) आर्य सुधर्मास्वामी श्रुतागार** (मुद्रित पुस्तकों का ग्रंथालय) **(iii) आर्यरक्षितसूरि शोधसागर** (कम्प्यूटर केन्द्र सहित) **(iv) सम्राट सम्प्रति संग्रहालय** : इस कलादीर्घा-म्यूजीयम में पुरातत्त्व-अध्येताओं और जिज्ञासु दर्शकों के लिए प्राचीन भारतीय शिल्प कला परम्परा के गौरवमय दर्शन इस स्थल पर होते हैं। पाषाण व धातु मूर्तियों, ताड़पत्र व कागज पर चित्रित पाण्डुलिपियों, लघुचित्र, पट्ट, विज्ञप्तिपत्र, काष्ठ तथा हस्तिदंत से बनी प्राचीन एवं अर्वाचीन अद्वितीय कलाकृतियों तथा अन्यान्य पुरावस्तुओं को बहुत ही आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक ढंग से धार्मिक व सांस्कृतिक गौरव के अनुरूप प्रदर्शित की गई है। **(v) शहर शाखा** : पूज्य साधु-साध्वीजी भगवंत एवं श्रावक-श्राविकाओं को स्वाध्याय, चिंतन और मनन हेतु जैनधर्म कि पुस्तकें नजदिक में ही उपलब्ध हो सके इसलिए बहुसंख्य जैन बस्तीवाले अहमदाबाद (पालडी-टोलकनगर) विस्तार में आचार्य श्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर की एक शहर शाखा का ई. सं. १९९९ में प्रारंभ किया गया था। जो आज चतुर्विध संघ के श्रुतज्ञान के अध्ययन हेतु निरंतर अपनी सेवाएँ दे रही है।

(४) **आराधना भवन** : आराधक यहाँ धर्माराधना कर सकें इसके लिए आराधना भवन का निर्माण किया गया है. प्राकृतिक हवा एवं रोशनी से भरपूर इस आराधना भवन में मुनि भगवंत स्थिरता कर अपनी संयम आराधना के साथ-साथ विशिष्ट ज्ञानाभ्यास, ध्यान, स्वाध्याय आदि का योग प्राप्त करते हैं.

(५) **धर्मशाला** : इस तीर्थ में आनेवाले यात्रियों एवं महेमानों को ठहरने के लिए आधुनिक सुविधा संपन्न यात्रिकभवन एवं अतिथिभवन का निर्माण किया गया है. धर्मशाला में वातानुकूलित एवं सामान्य मिलकर ४६ कमरे उपलब्ध है.

प्रकृति की गोद में शांत और सुरम्य वातावरण में इस तीर्थ का वर्ष भर में हजारों यात्री लाभ लेते हैं.

(६) **भोजनशाला व अल्पाहार गृह** : तीर्थ में पधारनेवाले श्रावकों, दर्शनार्थियों, मुमुक्षुओं, विद्वानों एवं यात्रियों की सुविधा हेतु जैन सिद्धान्तों के अनुरूप सात्त्विक उपहार उपलब्ध कराने की विशाल भोजनशाला व अल्पाहार गृह में सुन्दर व्यवस्था है.

(७) **श्रुत सरिता** : इस बुक स्टाल में उचित मूल्य पर उत्कृष्ट जैन साहित्य, आराधना सामग्री, धार्मिक उपकरण, कैसेट्स एवं सी.डी. आदि उपलब्ध किये जाते हैं. यहीं पर एस.टी.डी टेलीफोन बूथ भी है.

(८) **विश्वमैत्री धाम - बोरीजतीर्थ, गांधीनगर** : योगनिष्ठ आचार्य श्रीमद् बुद्धिसागरसूरीजी महाराज की साधनास्थली बोरीजतीर्थ का पुनरुद्धार परम पूज्य आचार्यदेव श्री पद्मसागरसूरीश्वरजी म.सा. की प्रेरणा एवं शुभाशीर्वाद से श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र संलग्न विश्वमैत्री धाम के तत्त्वावधान में नवनिर्मित १०८ फीट उँचे विशालतम महालय में ८१.२५ ईंच के पद्मासनस्थ श्री वर्द्धमान स्वामी प्रभु प्रतिष्ठित किये गये हैं. ज्ञातव्य हो कि वर्तमान मन्दिर में इसी स्थान पर जमीन में से निकली भगवान महावीरस्वामी आदि प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा योगनिष्ठ आचार्य श्रीमद् बुद्धिसागरसूरीश्वरजी महाराज द्वारा हुई थी. नवीन मन्दिर स्थापत्य एवं शिल्प दोनों ही दृष्टि से दर्शनीय है. यहाँ पर महिमापुर (पश्चिमबंगाल) में जगत्शेठ श्री माणिकचंदजी द्वारा १८वीं सदी में कसौटी पथर से निर्मित भव्य और ऐतिहासिक जिनालय का पुनरुद्धार किया गया है. वर्तमान में इसे जैनसंघ की ऐतिहासिक धरोहर माना जाता है. निस्संदेह इससे इस तीर्थ परिसर में पूर्व व पश्चिम भारत के जैनशिल्प का अभूतपूर्व संगम हुआ है.

अनुक्रम

१. छोटी-सी बात	१
२. नयी कला - नया अध्ययन	८
३. अपूर्व महामंत्र	१५
४. शिवकुमार	२१
५. जनम-जनम तू ही माँ!	२८
६. काश! मैं राजकुमारी न होती!!	३५
७. पहेलियाँ	४१
८. मन की मुराद	४७
९. कितनी खुशी! कितना हर्ष!	५३
१०. जीवन : एक कल्पवृक्ष	५९
११. कशमकश	६६
१२. माँ का दिल	७३
१३. संबंध जन्म-जन्म का!	८०
१४. आखिर, जो होना था!	८७
१५. पिता मिल गये	९४
१६. फिर सपनों के दीप जले!	१००
१७. समुंदर की गोद में	१०६
१८. फिर वही हादसा	११३
१९. चौराहे पर बिकना पडा!	११९
२०. हँसी के फूल खिले...अरसे के बाद	१२६
२१. सुरसुंदरी सरोवर में डूब गई	१३३
२२. आदमी का रूप एक-सा	१३९
२३. आखिर 'भाई' मिल गया	१४६
२४. नई दुनिया की सैर!	१५३

२५. राज़ को राज़ ही रहने दो	१६०
२६. भाई का घर	१६८
२७. भीतर का शृंगार	१७४
२८. प्रीत किये दुःख होय!	१८५
२९. प्रीत न करियो कोय!	१९१
३०. विदा, मेरे भैया! अलविदा, मेरी बहना	१९८
३१. सवा लाख का पंखा	२०६
३२. राजमहल में	२१३
३३. नया जीवन साथी मिला	२२०
३४. चोर ने मचाया शोर	२२७
३५. राजा भी लुट गया	२३५
३६. चोर का पीछा	२४२
३७. राज्य भी मिला, राजकुमारी भी...!	२४९
३८. सुर और स्वर का सुभग मिलन	२५७
३९. करम का भरम न जाने कोय	२६४
४०. चोर, जो था मन का मोर	२७१
४१. एक अस्तित्व की अनुभूति	२७८
४२. बिदाई की घड़ी आई	२८५
४३. नदिया-सा संसार बहे	२९५
४४. सहचिंतन की ऊर्जा	३०२
४५. किये करम ना छूटे	३०९
४६. आँसुओं में डूबा हुआ परिवार	३१६
४७. संयम राह चले सो शूर	३२३
४८. सभी का मिलन शाश्वत में	३३०

१. छोटी-सी बात

‘सुंदरी, यह मिठाई ले, खा ले, फिर पढ़ाई शुरू करना।’

‘पर यह क्या? किसकी तरफ से आज मुँह मीठा कराया जा रहा है, अमर?’

‘तेरी ओर से!’

‘क्या कहा? मेरी ओर से?’

‘हाँ भाई, हाँ। तेरी ओर से, सुर!’

‘पर मुझे तो इसका कुछ पता भी नहीं। फिर, मेरी ओर से कैसे हो सकता है, अमर?’

‘तेरी ओर से मैंने यह कर दिया!’

‘कैसे?’

‘तेरे आँचल के छोर में सात कौड़ियाँ बँधी हुई थी न?’

‘हां, वह तो थीं।’

‘बस, मैंने वही निकालकर उससे मिठाई मँगवायी... पाठशाला के सभी विद्यार्थियों को दावत दी... तेरा हिस्सा अलग रखा... तू तो सो गयी थी न? अब तू खा ले, फिर पढ़ाई...’

‘अरे वाह!’ उसकी बात को बीच में काटती हुई सुरसुंदरी उबल पड़ी।

‘क्या सेठ-साहूकार का लड़का है...! पराये पैसों से दावत देकर जैसे तूने बड़ा एहसान कर दिया... मुझसे पूछे बगैर मेरे पैसे लिये और मिठाई मँगवाकर सबको बाँट दी... यह तो कह दे, मेरे मेहरबान! ऐसी चोरी करना कहाँ से सीखा? तेरी माँ तो तेरी कितनी तारीफ़ करती है! उस बेचारी को क्या मालूम कि उसका लाड़ला क्या करतूतें करता है? ऐसे धंधे करता है? ऐसा करने से क्या तू अच्छा लगेगा? तेरी इज्जत बढ़ेगी, क्या तू ऐसा समझता है? पर, याद रखना, ऐसे तो तेरी बेइज्जती होगी। पंडितजी तुझे बुद्धिमान, होशियार समझकर काफी महत्त्व देते हैं, इसलिए क्या तू औरों की इस तरह चोरियाँ करता है?... क्यों?’

‘पर सुंदरी, इस छोटी बात का क्यों इतना बतंगड़ बनाये जा रही है? तू तो कितनी खरी-खोटी सुना रही है?’

छोटी सी बात

२

‘तू इस बात को मामूली समझता है...? पर मेरे लिए तो यह काफी महत्वपूर्ण बात है... तू चाहे इसे गंभीरता से न ले।’

‘पर बात तो, सात कौड़ियों की ही है न? मैंने तेरी सात कौड़ियों ले लीं, इससे तू ऐसी लाल-पीली हो रही है... जैसे मैंने तेरा राज्य छीन लिया हो। सात कौड़ियों में क्या तुझे राज्य मिल जानेवाला था? राजकुमारी हुई तो क्या हुआ? इतना घमंड? इतना गरूर?’

‘अरे हाँ! मैं एक बार नहीं, दस बार राजकुमारी हूँ, और सात कौड़ियों का मैं कुछ भी करूँ, तुझे इसमें क्या लेना-देना? मैं राज्य भी ले सकती हूँ... समझा अमरकुमार! सात कौड़ियों में तो राज्य ले लूँ पूरा। तू अपने आपको समझता क्या है? एक तो चोरी करता है और उपर से सफाई पेश करता है! मुझे उपर से उपदेश सुना रहा है?’



‘सुरसुंदरी गुस्से से काँप रही थी। उसका गौर चेहरा गुस्से से लाल हो गया था। उसने अपनी किताबें उठायी और अमरकुमार को बगैर बताये पाठशाल में से चली गयी। दूसरे छात्र-छात्रा सब अमरकुमार और सुरसुंदरी की मैत्री से परिचित थे, इसलिए उन्हें यह बात बिलकुल नामुमकिन जान पड़ती थी कि उन दोनों में ऐसी छोटी-सी बात को लेकर इतनी कटुता पैदा हो जाए। अमरकुमार अपनी जगह पर बैठा हुआ था। उसने अपना सिर पुस्तक में छिपा रखा था।

पंडितजी की अनुपस्थिति में अमरकुमार ही पाठशाला को सभालता था। उसने छात्र-छात्राओं को छुट्टी दे दी। सभी छात्र-छात्राएँ चले गए अपने-अपने घर। फिर भी अमरकुमार अकेला बैठा रहा गुमसुम होकर। उसका तरुण मन बेचैन था। एक पल वह रो देता था, दूसरे ही पल उसे गुस्सा आता था। ‘बस, केवल सात कौड़ियों के लिए सुंदरी ने कितने सारे विद्यार्थियों के बीच मेरा मुँह तोड़ लिया। मेरा अपमान किया... मुझे चोर कहा! मुझे क्या मालूम कि वह इतनी कंजूस होगी। मुझे क्या पता वह सात कौड़ियों के लिए मेरे प्यार को चूरचूर कर देगी... मैं तो उस पर कितना भरोसा रखता था। मुझे तो लगा था कि वह जब जगेगी तो अपने हिस्से की मिठाई देखकर चकित हो जायेगी... मेरी ओर देखती रहेगी आश्चर्य से। मुझसे पूछेगी, तब मैं कह दूँगा... ‘यह तो तेरे पैसों से दावत दी है...’ तब वह हँस देगी... अपने हिस्से में से मुझे

छोटी सी बात

३

खिलाकर फिर खुद खाएगी, और कहेगी... 'अमर, कुछ नहीं, अब तेरी बारी है! तेरी जेब में से सुवर्णमुद्राएँ लेकर मैं दावत दूंगी, ध्यान रखना!'

पर गलती मेरी ही है। राजकुमारी से मैत्री करना ही नहीं चाहिए... राजा लोग तो अंहकारी होते ही है... उनकी राजकुमारियों को तो उनसे भी ज्यादा घमंड होता है। हाँ... मुझे क्या? उसका घमंड उसके पास रहे... मैं तो अब उसके साथ बोलूँगा ही नहीं... उसकी ओर देखूँगा तक नहीं।

उस दिन जब पाठशाला में से निकलकर हम दोनों साथ घर जा रहे थे, तब उसने ही तो मुझसे कहा था : 'अमर, तू कितना अच्छा लड़का है। तूँ मुझे बहुत अच्छा लगता है। पाठशाला में पढ़ते-पढ़ते भी मेरी आँखें तेरी ओर उठती हैं, वहीं ठहर जाती हैं। बस... जैसे तुझे देखती ही रहूँ... अमर, मैं तुझे अच्छी लगती हूँ? तब मैंने उससे कहा था 'सुर, मुझे तू बहुत अच्छी लगती है... अरे... तेरे सिवा और कुछ अच्छा ही नहीं लगता।' वह कितनी शरमा गयी थी? उसने प्यार से मेरा हाथ पकड़ लिया था और टुकुर-टुकुर मेरी ओर देख रही थी। वह कुछ कहना चाहती थी, पर उसका गला भर आया था। फिर हम दोनों खामोश होकर चलते रहे। वह अपने महल में गयी... मैं अपनी हवेली में पहुँचा।

और... उसने आज यह क्या कर दिया? उसकी हिरनी की-सी आँखों में आज प्यार नहीं था... उनसे आज आग बरस रही थी। उस आग ने मुझे झुलसा दिया... मेरे प्यार को जला दिया। शीतल चाँद-सा उसका गोरा मुखड़ा दोपहर के सूरज-सा लाल हो गया था। मैं तो उसकी ओर आँख उठाकर नहीं देख सका। उसके मीठे-मीठे बोल आज ज़हर-से हो गये थे।

नहीं... अब तो मैं उसके साथ कभी न बोलूँगा। और सुंदरी भी अंहकारी है, वह भी शायद मेरे साथ नहीं बोलेगी... चाहे न बोले। मुझे क्या? उसे आवश्यकता होगी, तो आएगी बोलने, मुझे क्या गरज है, जो मैं बोलने जाऊँ उससे? हां, मुझे उससे पूछकर ही उसकी सात कौड़ियां लेनी चाहिए थी। मैंने बिना पूछे ली, यह मेरी गलती हो गयी। पर क्या दोस्ती में भी पूछे बगैर वस्तु नहीं ली जा सकती? क्या वह मुझ से बगैर पूछे मेरी किताब नहीं लेती। मेरी लेखनी नहीं लेती? मैंने तो कभी उससे झगड़ा नहीं किया? मैंने कभी कुछ नहीं कहा।

राजकुमारी होकर सात कौड़ियों के लिए मेरे साथ लड़ने लगी? उसके

छोटी सी बात

४

पिता के पास तो कितना बड़ा राज्य है... पैसे का तो पार नहीं है! वैभव कितना बड़ा है...? पर उसके दिल में ओछापन कितना है! पर मैं उसे छोड़ूँगा नहीं। उसने मेरा जो अपमान किया है, उसका पूरा बदला लूँगा। आज नहीं तो कल... अरे, जिंदगी में कभी भी मौका आने पर मैं भी देखूँगा कि वह किस तरह सात कौड़ियों में राज लेती है? कितनी शेखी बधा रही थी? सात कौड़ियों में राज ले लेती! आयी बड़ी राज लेनेवाली! जबतक मैं अपने अपमान का बदला नहीं लूँगा, तब तक मुझे चैन नहीं आएगा।

अमरकुमार ने पाठशाला के दरवाजे बंद किये। ताला लगाया और चल दिया अपनी हवेली की ओर। किशोर अमर का मन व्यथित था। उसके सुंदर चेहरे पर विषाद की बदली छायी थी। हवेली में पहुँचकर सीधा ही अपने अध्ययन कक्ष में गया और पलंग में औँधा गिर पड़ा।



सुरसुंदरी नाराज़ी, गुस्से और खिन्नता से भरी हुई पहुँची अपने महल में। माता रतिसुंदरी को मिले बगैर ही सीधी अपने शयनकक्ष में जाकर पलंग में गिरी और फफक-फफक कर रोने लगी। आधी घटिका तक वह रोती रही... आँसुओं के साथ-साथ उसके दिल का गुस्सा भी बह गया। उसका दिल हलका हुआ।

‘ओह... आज यह क्या हो गया? मैं कितना बुरा बोल बैठी? उफ, आज मुझे क्या हो गया? अपने अमर को मैंने कितना फटकार दिया? ओह, उसने मुझे पूछे बगैर मेरी सात कौड़ियों लेकर दावत भी दी, तो उसमें मेरा कौन-सा राज्य लुट गया? मेरी हिस्से की मिठाई मुझे देते वक्त वह कितना खुश था। मैंने आज उसको जरा-सी बात के लिए नाराज कर दिया। उसके दिल को तोड़ दिया। सभी छात्रों के बीच उसका अपमान किया। अरे, कैसा भी हो... पर वह पाठशाला का श्रेष्ठ विद्यार्थी है।

उसकी चतुराई पर तो मैं भी गर्व करती हूँ। मुझे उसका बोलना अच्छा लगता है।... उसका चेहरा प्यारा लगता है... उसकी चाल अच्छी लगती है... उसकी हर एक बात मुझे पसंद है। और आज मैंने उसे जहरीले शब्द कह डाले। हाय, धिक्कार है मुझे!

अब? अब क्या वह मुझसे नहीं बोलेगा? मेरी ओर देखेगा भी नहीं। हाँ, नहीं... बोलेगा और न ही मेरी ओर देखेगा।

छोटी सी बात

५

सुरसुंदरी की आँखें छलकने लगी। वह फफक-फफक कर रो दी। मन-ही-मन बोलने लगी।

‘नहीं, नहीं, मैं अमर से माफ़ी माँग लूँगी : उसके पैरों में गिरकर क्षमा माँग लूँगी। वह मेरी ओर न देखे तो मैं जी के भी क्या करूँ? वह मुझसे नहीं बोलेगा तो मैं खाना नहीं खाऊँगी। वह मुझ पर गुस्सा करेगा तो करने दूँगी उसे गुस्सा! वह मुझे लताड़ेगा तो भी मैं सह लूँगी, सुन लूँगी चुपचाप। मेरा अपमान करेगा तो भी कुछ नहीं कहूँगी उससे अब कभी भी। पर अमर के बिना मैं नहीं रह सकती। मैंने तो उसे अपने मनमंदिर का देवता बना रखा है। उसके बिना तो मैं...

मुझे श्रद्धा है मेरे अमर पर। वह मुझे नहीं भूल सकता। मेरी गलती वह भूल जायेगा। वह मुझे जरूर पहले की तरह मुस्कराते हुए बुलायेगा, हमारी मैत्री नहीं टूट सकती। किसी भी कीमत पर मैं नहीं टूटने दूँगी हमारी दोस्ती को। हमारी दोस्ती तो सदा-सदा के लिए है।’



दूसरे दिन जब सुरसुंदरी पाठशाल में आयी तब पढ़ाई शुरू हो गयी थी। पंडितजी सुबुद्धि अध्ययन करवा रहे थे। सुरसुंदरी ने पंडितजी को नमस्कार किया और वह अपनी जगह पर जा बैठी।

उसने अमरकुमार की ओर देखा... और उसके दिल में वेदना की कसक उठी। अमर का चेहरा मुरझाया हुआ था। उसकी आँखें जैसे बहुत रोयी हों, वैसी लग रह थी। उदासी छायी हुई थी उसके चेहरे पर। अमर की नजर पंडितजी की तरफ ही थी। सुरसुंदरी की आँखें भर आयीं, पर तुरंत उसने वस्त्र से आँखें पोंछकर पंडितजी की ओर ध्यान दिया। पर उसका मन और उसके नयन बार-बार अमर की ओर घूम रहे थे। अमर की निगाहें स्थिर थी पंडितजी की तरफ हालाँकि उसके दिल में तो सुरसुंदरी छायी हुई थी, पर उसका संकल्प था सुरसुंदरी की ओर नहीं देखने का। वह बराबर अपनी आँखों को रोक रहा था।

मध्याह्नकालीन अवकाश हुआ। पंडितजी अमरकुमार को पाठशाला सौंपकर चले गये अपने घर। कुछ दिनों से पंडितजी का स्वास्थ्य ठीक नहीं था।

अमरकुमार मौन था। रोज बराबर बातें करनेवाला अमर आज खामोश था। उसकी चुप्पी ने सभी छात्र-छात्राओं को व्यथित कर रखा था। सुरसुंदरी

छोटी सी बात

६

भी अपने स्थान पर मौन बैठी हुई थी। उसे कुछ सूझ नहीं रहा था कि वह अब अमरकुमार को किस तरह बुलाए? शायद वह उसे बुलाए और अमर न बोले तो? शायद वह गुस्सा कर बैठे तो? कहीं स्वयं अपना अपमान सहन न कर पाए तो? अपमान सहन करने की मानसिक तैयारी के साथ आई हुई सुरसुंदरी का विश्वास... अपने आप पर का भरोसा ड़ाँवाडोल गया।

अमर अन्य छात्रों को स्वाध्याय कराता रहा था। हालांकि स्वाध्याय करवाने में न तो अमर को मज़ा आ रहा था... नाही और छात्रों को मज़ा आ रहा था। अमरकुमार को प्रसन्न करने के लिए... उसे खुश करने के लिए अन्य छात्र प्रयत्न करते रहे... पर अमर की खिन्नता दूर नहीं हुई। किसी भी छात्र-छात्रा ने दुपहर का भोजन नहीं किया। सभी के खाने के डिब्बे बंद ही रहे। सुरसुंदरी तो जैसे पूरी पाठशाला में अकेली - सी हो गई थी। कोई भी छात्र या छात्रा उसके साथ बात तक नहीं कर रहा था। चूँकि सबको मालूम था कि अमरकुमार क्यों उदास है। सुरसुंदरी का मन व्यथा से अत्यंत व्याकुल हो उठा।

अमरकुमार ने आज भी पाठशाला जल्दी बंद कर दी। सभी छात्र-छात्रा चले गये। पर सुरसुंदरी अपनी जगह पर बैठी रही। अमरकुमार पाठशाला के दरवाजे पर खड़ा रहा था। उसका मुँह पाठशाला के मैदान की ओर था। सुरसुंदरी चुपचाप अमर के निकट आकर खड़ी रह गयी।

‘अमर’... सुरसुंदरी ने काँपते स्वर में अमर को आवाज दी, पर अमर ने मुँह नहीं घुमाया।

‘अमर, मैं अपनी गलती के लिए क्षमा माँगती हूँ...’ सुरसुंदरी अमरकुमार के सामने जाकर खड़ी रही। उसकी आँखों में से आँसू बहने लगे थे।

‘अमर, मेरे अमर... क्या तू मुझे माफ नहीं करेगा? तू मेरे साथ नहीं बोलेगा? मेरी ओर भी नहीं देखेगा? ...अमर...!!!’

अमरकुमार की आँखे गीली हो उठीं। सुंदरी के साथ नहीं बोलने का... उसकी ओर नहीं देखने का उसका संकल्प अब बरफ बनकर पिघल रहा था। उसने धीरे से आँखे उठायी... उसने सुरसुंदरी की ओर देखा और फिर पलकें गिरा दी।

‘अमर, मैंने तेरा अपमान किया है। तू मुझे जो जी में आये वह सजा दे! मैंने तुझे कटुवचन कहे हैं, तू मुझे शिक्षा दे कर ...अमर,... तू मुझ पर गुस्सा

छोटी सी बात

७

कर... तू मुझे डाँट-फटकार सुना... अब मैं कभी भी ऐसी गलती फिर से नहीं करूँगी ...अमर...'

अमर ने अपने वस्त्र से सुरसुंदरी की आँखों के आँसू पोंछे। सुरसुंदरी का चेहरा चमक उठा। उसकी आँखों में प्रसन्नता छा गयी। उसने अमर का हाथ पकड़ लिया।

'अमर, तू मुझे छोड़ तो नहीं देगा न? मेरी ओर देखेगा न? मुझसे बोलेगा न? तू एक बार हँसकर मुझे जबाब दे...'

'सुर... हम कल की बातें भूल जाएँ।

'हाँ... अमर... भूल जाएँ! अपनी दोस्ती तो सदा की है। है न अमर?'

समय हो चुका था। दोनों का विषाद घुल गया था। पर क्या मनुष्य किसी कटु घटना को भुला सकता है?





सुरसुंदरी ने यौवन की देहरी पर कदम रखे तब तक उसने तरह-तरह की कलाएँ हासिल कर ली थी। उसके कलाचार्य ने आकर राजा रिपुमर्दन से निवेदन किया :

‘महाराज, राजकुमारी ने स्त्रियों की चौसठ कलाएँ प्राप्त कर ली। मेरे पास जितना ज्ञान था, जितनी सूझ थी, मैंने सब सुरसुंदरी को दे दिया है। मेरा कार्य अब समाप्त हुआ है।’

‘तुम्हारी बात सुनकर मुझे काफी संतोष हुआ है पंडितजी! एक दिन राजसभा में मैं राजकुमारी के ज्ञान और बुद्धि की परीक्षा लूँगा। पर एक बात तो बताइए पंडितजी, आपकी पाठशाला में अन्य भी कोई छात्र-छात्राएँ हैं ऐसे, जिन्होंने राजकुमारी के जितना या उससे भी ज्यादा ज्ञान प्राप्त किया हो, जिनकी बुद्धि काफी कुशाग्र हो!’

‘हाँ महाराज, मेरी पाठशाला का श्रेष्ठ विद्यार्थी-छात्र है श्रेष्ठी धनावह का इकलौता बेटा अमरकुमार। तर्कशास्त्र और व्याकरण शास्त्र में वह पारंगत बना है। वैद्यकशास्त्र में तो उसने ‘धन्वतरी-सा ज्ञान प्राप्त किया है। धनुर्विद्या में उसका सानी नहीं है कोई। अश्व-परीक्षा और हाथी को नियंत्रित करने की कला भी उसने सिद्ध की है।’

‘खूब...खूब, पंडितजी। राजसभा में सुरसुंदरी के साथ मैं अमरकुमार के ज्ञान और बुद्धि की भी परख करूँगा।’

‘जब आप हुक्म करेंगे तब आयोजन कर दिया जाएगा।’ राजा रिपुमर्दन ने कलाचार्य को उत्तम वस्त्र... और अलंकार उपहार-स्वरूप देकर उनका उचित सत्कार किया। पंडित सुबुद्धि ने बिदा ली। राजा रिपुमर्दन मंत्रणा-खंड में से निकलकर रानी रतिसुंदरी के पास आये। सुरसुंदरी अपनी माँ के पास ही बैठी थी। माँ-बेटी बातें कर रही थी। दोनों ने खड़े होकर राजा के प्रति आदर व्यक्त किया। रिपुमर्दन भद्रासन पर बैठा। रानी और राजकुमारी भी दोनों उचित स्थान पर बैठीं।

‘बेटी, तेरे कलाचार्य आये थे। अभी ही वे गये। उनके पास तेरा अध्ययन-शिक्षण पूरा हुआ है... उनका वस्त्रालंकारों से सत्कार करके मैंने उन्हें बिदा किया।’

नयी कला-नया अध्ययन

९

‘अब मेरी लाइली को कौन-सा अध्ययन करवाने की सोची है?’ रानी रतिसुंदरी ने पूछा।

‘मैं इसलिए तो, तुम्हारे साथ परामर्श करने के लिए ही यहाँ आया हूँ।

‘मुझे लगता है कि सुंदरी को अब धार्मिक और आध्यात्मिक ज्ञान देना चाहिए। इस ज्ञान के बगैर तो सारी कलाएँ अधूरी हैं।’

‘तुम्हारी बात सही है। सुंदरी यदि धर्म को समझे तो वह उसके जीवन में काफी हद तक उपयोगी हो सकता है। धर्म के मौलिक तत्त्व ही मनुष्य के मन को प्रसन्न रख सकते हैं। आध्यात्मिक विचार धारा से ही इन्सान आत्मतृप्ति-भीतरी संतोष को पा सकता है।’

‘बेटी...’ रानी ने सुंदरी की ओर मुड़ते हुए कहा - ‘हम जो सोच रहे थे उसमें तेरे पिताजी की अनुमति सहज रूप से मिल गयी।’ रानी रतिसुंदरी खुश होकर बोली। उसने राजा से कहा :‘आप यहाँ पधारें, इससे पहले हम माँ-बेटी यही बातें कर रही थी। सुंदरी की इच्छा है धार्मिक ज्ञान प्राप्त करने की, पर यह ज्ञान सुंदरी पाएगी किससे? कौन सुंदरी को ये बातें सिखाएगा?’

‘धर्म का ज्ञान तो धर्ममय जीवन जीनेवाले, साक्षात् जो धर्ममूर्ति हो, वही दे सकते हैं और उन्ही से लेना चाहिए। जिसके जीवन में धर्म न हो... और धर्मतत्त्व का हृदयस्पर्शी बोध न हो, वह फिर चाहे शास्त्रों का पंडित क्यों न हो, उससे शास्त्रज्ञान मिल सकता है, पर जीवंत धर्मतत्त्व का बोध नहीं मिल पाता है! इसलिए, सुंदरी को यदि कोई धर्ममूर्ति साध्वीजी मिल जाए तो अच्छा रहे!’

‘साध्वीजी के पास? पर!’

‘चिन्ता मत करो देवी... तुम्हारी बेटी यदि वैरागी बनकर साध्वी भी हो जाए... तो अपना परम सौभाग्य मानना...! अपनी पुत्री यदि मोक्षमार्ग पर चल देगी, तो शायद कभी हमको भी इस दावानल से झुलसते संसार में से निकाल सकेगी।’ राजा रिपुमर्दन का अंतःकरण बोल रहा था। ‘देवी, निःस्वार्थ... निःस्पृही साध्वीजी जो धर्मबोध देंगी वह सुंदरी की आत्मा को स्पर्श करेगा ही। सुंदरी को ऊँचे-स्तर के संस्कार मिलेंगे। उच्च आत्माओं के आशीर्वाद प्राप्त होंगे। किसी दिव्यतत्त्व की प्राप्ति हो जाएगी।’

‘आप जो कहते हैं, वह बिल्कुल यथार्थ है... मुझे बहुत अच्छी लगी आपकी बातें! अपनी पुत्री का पारलौकिक हित हमें सोचना ही चाहिए। केवल

नयी कला-नया अध्ययन

१०

वर्तमानकालीन जीवन के सुख के विचार नहीं किये जा सकते। आपकी बात सही है।

‘तुम्हें पसंद आयी मेरी बात... सुंदरी को भी तो जँचनी चाहिए... आखिर पढ़ना तो इसे है न, क्यों बेटी?’ राजा ने हँसते-हँसते सुंदरी के सिर पर हाथ रखा।

‘पिताजी, आप मेरे सुख के लिए, मेरे हित के लिए, कितना कुछ करते हैं? आपके उपकारों का बदला तो मैं इस भव में चुकाने से रही! आप और मेरी यह माँ-दोनों जैसे मेरे सुख के लिए जीते हैं। मुझ पर दुःख का साया तक न गिरे, इसके लिए कितनी चिंता करते हैं? पिताजी, मैं जरूर साध्वीजी के पास धर्मबोध प्राप्त करूँगी। मैं तलाश करवाती हूँ कि नगर में ऐसी कोई साध्वीजी है या नहीं?’

‘बेटी, तू अमरकुमार से ही पूछ लेना न! उसकी माँ धनवती को तो मालूम होगा ही। यदि गाँव में साधु या साध्वीजी होते हैं तो वो उनको वंदन किये बगैर पानी तक नहीं पीती।’

माँ के मुँह से अमरकुमार का नाम सुनकर सुरसुंदरी पुलकित हो उठी। राजा ने अमरकुमार का नाम सुनते ही रानी से कहा : ‘हां, अभी पंडितजी भी अमरकुमार की बहुत तारीफ़ कर रहे थे, बेटी, अमरकुमार तुम्हारी पाठशाला में श्रेष्ठ मेधावी विद्यार्थी है, क्यों?’

‘हाँ, पिताजी, पंडितजी की अनुपस्थिति में वह ही सबको पढ़ाता है। उसकी ग्रहणशक्ति और समझाने का ढंग गजब का है। उसका भी अध्ययन अब तो पूरा हो चुका है।’

‘बेटी, एक दिन मैं राजसभा में तेरी और उस अमरकुमार की परीक्षा करूँगा। तुम्हारी बुद्धि और तुम्हारे ज्ञान की कसौटी होगी उस समय।’

सुरसुंदरी तो प्रफुल्लित हो उठी, वह मन-ही-मन अमरकुमार से बतियाने लगी थी।

‘अच्छा, तो माँ, मैं धनावह सेठ के वहां जाकर साध्वीजी के बारे में तलाश कर लूँगी। सुरसुंदरी त्वरा से रानी के खंड में से निकल गयी।



सुरसुंदरी ने सुंदर वस्त्र और अंलकार पहने। रथ में बैठकर वह श्रेष्ठी धनावह की हवेली पर पहुँची। हवेली के झरोके में खड़े अमरकुमार ने

नयी कला-नया अध्ययन

११

सुरसुंदरी को रथ से उतरते देखा। उसे ताज्जुब हुआ... 'अरे, यह तो सुरसुंदरी है! यहां कैसे आयी? अभी, इस वक्त? और फिर आयी भी अकेली लगती है? महारानी तो साथ है ही नहीं। इस तरह पहले तो कभी आयी नहीं, सुरसुंदरी। आज क्या बात है? ओह... माँ को खबर तो कर दूँ।' अमरकुमार तुरंत माँ के पास जाकर बोला! माँ, राजकुमारी आयी है अपनी हवेली में!

धनवती चौंकती हुई खड़ी हुई और उसे लेने के लिए सीढ़ी पर पहुँची और इतने में तो सुरसुंदरी ने धनवती के पैर छुए।

'अरे, बेटा, पर यों यकायक? मुझे कलहाना तो था? मैं रसोई में थी। यह तो अमर ने मुझसे कहा तो मालूम हुआ कि तू आयी है।'

'माताजी, इसमें कहना क्या?' बोलने ही जा रही थी कि 'अमर का घर तो मेरा घर है न?' पर शब्द उसके गले में अटक गये। अमर उसके पास ही आकर खड़ा था। धनवती सुरसुंदरी को अपनी ओर खींचती हुई उसे अपने कमरे में ले गयी। अमर भी दोनों के पीछे-पीछे चला आया कमरे में। धनवती ने राजा - रानी की कुशलता पूछी। दासी आकर दूध के प्याले और मिठाई रख गयी।

'माताजी, मैं आपसे एक बात पूछने आयी हूँ यहाँ। मेरी माँ ने ही मुझे यहाँ भेजा है आपके पास।'

'पूछ न, जो भी पूछना हो...।'

'दरअसल...' सुरसुंदरी को झंपते देखकर अमर ने कहा, 'क्यों कोई गुप्त बात है क्या? तो मैं बाहर चला जाऊँ।'

'नहीं नहीं... ऐसी कोई बात नहीं है... क्या अभी अपने नगर में कोई विदुषी साध्वीजी पधारी हुई है?' प्रश्न पूछकर सुरसुंदरी ने अमरकुमार की ओर देख लिया। उसके चेहरे पर परेशानी और अचरज की रेखाएँ खिंच आयी थीं। सुरसुंदरी मन-ही-मन हँसी।

'क्यों बेटा, साध्वीजी के बारे में पूछ रही है?' धनवती को भी आश्चर्य हो रहा था।

'मुझे उनके पास धर्म का बोध प्राप्त करने जाना है।' साध्वीजी के पास धर्म का ज्ञान प्राप्त करना है।' धनवती के लिए यह दूसरा आश्चर्य था।

'पर बेटा... तूने चौंसठ कलाओं में निपुणता प्राप्त की है... और फिर तू तो राजकुमारी है... तूझे साध्वीजी के पास क्यों?'...

नयी कला-नया अध्ययन

92

‘माँ, शायद इसे दीक्षा-वीक्षा लेने का इरादा जगा होगा?’ अमरकुमार बोला, तीनों हँस पड़े।

‘दीक्षा लेने का भाव जग जाए तो मैं अपना परम सौभाग्य मानूँ। संसार के प्रति वैराग्य आना कोई सरल बात थोड़े-ही है?’ सुरसुंदरी गंभीर होकर बोली।

‘साध्वीजी के पास जाने से और धर्मबोध पाने से दुर्लभ वैराग्य भी सुलभ हो जाएगा।’ अमरकुमार के शब्दों में अभी भी हँसी का लहज़ा था।

‘यदि सुलभ हो गया... तब तो संसार का त्याग करने में विलंब नहीं करूँगी... इस मानव जीवन की सफलता उसी में तो है।’

‘तो फिर इतनी ढेर-सारी कलाएँ क्यों सीखीं? पहले ही से साध्वीजी से शिक्षा ली होती तो ठीक रहता न, अभी तो...’

‘मैं साध्वी होती, यह कहना है न? पर कुछ नहीं... जब से जागे तभी से भोर... अभी तो धर्म का और अध्यात्म का ज्ञान पाना है...। मेरे पिताजी और माँ की यह इच्छा है और यह बात मुझे पसंद है। धर्म की कला यदि नहीं सीखें तो फिर इन सभी कलाओं का करना भी क्या? क्या महत्त्व इनका? धर्म के बिना तो सारी कलाएँ अधूरी है।’

‘बेटी... बिलकुल सही बात है तेरी। धर्म का बोध तो होना ही चाहिए। यह तो संसार है... संसार में सुख और दुःख तो आते-जाते रहते हैं, समुद्र के ज्वार-भाटे की भाँति। उसमें यदि धर्म का बोध हो... अध्यात्म की कुछ जानकारी हो तो हर एक परिस्थिति में आदमी संतुलित रह सकता है। समभाव बनाये रख सकता है। राग-द्वेष और मोह की तीव्रता-सघनता से बच सकता है। आतर्ध्यान और रौद्रध्यान से अपने आपको अलग रख सकता है। प्राप्त करना ही चाहिए बेटी धर्म का समुचित ज्ञान।’

सुरसुंदरी को धनवती की बातें अत्यंत अच्छी लगी। ‘सुरसुंदरी बेटी, अपने नगर में ऐसी साध्वीजी हैं। उनका नाम है, साध्वी सुव्रता। राजमहल से बिल्कुल निकट ही उनका उपाश्रय है। बहुत शांत-प्रशांत और उदार आत्मा है। उनके दर्शन करते ही तू मुग्ध हो उठेगी।’

‘देखना... कहीं दीक्षा मत ले लेना...’ अमरकुमार का स्वर अलबत्ता हँसी से भरा था, फिर भी उसमें कंपन था। वह खड़ा होकर कमरे से बाहर चल दिया। सुरसुंदरी के चेहरे पर हँसी उभरी। धनवती तो हँस पड़ी।

नयी कला-नया अध्ययन

१३

‘तुम लोग पाठशाला में तो नॉकऑक करते ही रहते हो और यहां घर पर तू पहली बार आयी, तो भी यह अमर चुप नहीं रहता।’

सुंदरी... तेरा निर्णय सुनकर मुझे तो बहुत प्रसन्नता हुई है। मैं तो चाहती हूँ : अमर भी कुछ धर्म का अध्ययन करे। मैं आज ही उसके पिता से बात करूँगी। यदि कोई ऐसे गुरुदेव मिल जाए तो अमर को भी अध्ययन करवाना शुरू कर दें।

‘हां माताजी, आप जरूर बात करना। उसे तो मुझ से भी ज्यादा जरूरत है, धर्म के बोध की।’ सुरसुंदरी बड़े ही मासूम अंदाज़ में जान-बूझकर ऊंचे स्वर में बोली।



सुरसुंदरी अपने महल की ओर चली गयी।

सेठ धनावह शाम को भोजन के समय घर पर आ गये। पिता-पुत्र ने साथ बैठकर भोजन किया। धनवती पास में बैठकर दोनों को भोजन करवा रही थी और वहीं उसने बात छोड़ी : ‘अमर का विद्याध्ययन तो पूरा हो चुका है, अनेक कलाएँ उसने सीख ली हैं। अब...’

‘अब उसे पेढ़ी पर ले जाऊँ... ताकि वह व्यापार सीखने समझने लगे।’

‘नहीं... पेढ़ी पर उसकी क्या जरूरत है अभी से? अभी तो उसे एक कला और प्राप्त करनी है।’

‘कौन-सी कला?’ सेठ को आश्चर्य हुआ। अमर भी प्रश्नार्थक दृष्टि से माँ को ताकता रहा।

‘धर्म की कला।’

‘ओह!’ सेठ ने अमर की ओर। अमर की नजर माँ पर थी। वह समझ गया कि यह पराक्रम सुंदरी का ही है।

‘हाँ... हाँ... धर्म की कला तो प्राप्त करनी ही चाहिए। पर सीखेगा किससे?’

‘गुरुदेव से।’

‘क्यों अमर, तेरी क्या इच्छा है?’ सेठ ने अमर से पूछा।

‘आपकी और माँ की जो इच्छा हो वही मेरी इच्छा होगी।’ अमर के प्रत्युत्तर ने धनवती को आनन्द से भर दिया।

भाग्ययोग से दूसरे ही दिन नगर में एक विशिष्ट ज्ञानी आचार्य भगवंत पधारे। धनवती ने वंदना करके कुशल-पृच्छा की और प्रार्थना की : 'गुरुदेव, आप यहां कुछ समय निवास करने की कृपा करें। आपके चरणों में बैठकर मेरा पुत्र अमर धर्मबोध प्राप्त करना चाहता है।'

गुरुदेव ने प्रार्थना स्वीकर कर ली।

अमरकुमार प्रतिदिन गुरुदेव के पास जाने लगा।

जब सुरसुंदरी को धनवती से यह समाचार मिला तब वह आनंद से नाच उठी। और एक दिन हवेली में जा पहुँची।

'क्यों श्रेष्ठीपुत्र, अब दीक्षा का जुलूस कब निकल रहा है?'

'राजकुमारी का अध्ययन पूरा होने पर ही तो उसका जुलूस निकल सकता है।' अमरकुमार ने सलीके से कहा और सारी हवेली किलकारियों से गूँज उठी।



३. अपूर्व महामंत्र

दूसरे ही दिन सुरसुंदरी साध्वीजी सुव्रता के उपाश्रय में पहुँच गयी।

‘मत्थएण वंदामि’ कहकर उसने उपाश्रय में प्रवेश किया और साध्वीजी के चरणों में मस्तक झुकाकर वंदना की।

‘धर्मलाभ!’ साध्वीजी ने दाहिना हाथ ऊंचा करके आशीर्वाद दिया। सुरसुंदरी, साध्वीजी की इजाज़त लेकर विनयपूर्वक अपना परिचय देते हुए बोली :

‘हे पूज्ये, आपके दर्शन से मुझे अतीव आनंद हुआ है। मेरा नाम सुरसुंदरी है। मेरे पिता राजा रिपुमर्दन हैं। मेरी माँ का नाम है रतिसुंदरी। मेरे माता-पिता की प्रेरणा से मैं आपके पास धर्मबोध प्राप्त करने के लिए आयी हूँ। नगरश्रेष्ठी धनावह की धर्मपत्नी धनवती देवी ने मुझे आपका परिचय दिया और आपका स्थान बताया।’

‘हे पुण्यशीले! धन्य हैं तेरे माता-पिता, जो अपनी पुत्री को चौंसठ कलाओं में पारंगत बनाकर भी उसे धर्मबोध देने की इच्छा रखते हैं और धन्य हैं वह पुत्री जो माता-पिता की इच्छा को सहर्ष स्वीकार कर के धर्मबोध पाने को प्रयत्नशील बनती है। पूर्वकृत महान् पुण्यकर्म का उदय हो तभी कहीं ऐसे संस्कारी सुशील और संतानों के आत्महित की चिंता करनेवाले माता-पिता मिलते हैं और श्रेष्ठ पुण्य कर्म का उदय होने पर ऐसी विनीत, विनम्र और बुद्धिशाली संतान मिलती है। सुरसुंदरी, तू यहाँ नियमित आ सकती है। तुझे यहाँ तीर्थकर परमात्मा द्वारा कथित धर्मतत्त्वों का बोध मिलेगा।’

‘परम उपकारी गुरुमाता, आज मैं धन्य हुई। आपकी कृपा से मैं कृतार्थ हुई। आपके पावन चरणों में बैठकर सर्वज्ञ-शासन के तत्त्वों का अवबोध प्राप्त करने के लिए मैं भाग्यशालिनी बन पाऊँगी। आपके इस उपकार को मैं कभी नहीं भूलूँगी। कृपा करके आप मुझे समय का निर्देश दें ताकि आपकी साधना-आराधना में विक्षेप न हो और मेरा अध्ययन हो पायें... आपको अनुकूल हो उस समय मैं रोजाना आ सकूँ।’

साध्वीजी ने उसे दोपहर का समय बताया। भावविभोर होकर पुनः वंदना करके सुरसुंदरी अपने महल की ओर चल दी।

सुंदरी सीधी पहुँची अपनी माता रतिसुंदरी के पास। साध्वीजी के साथ हुए

अपूर्व महामंत्र

१६

प्रथम परिचय की बात हर्ष भरे गद्गद् हृदय से माँ को बतायी। रतिसुंदरी प्रसन्न हो उठी।

‘वत्से, ऐसा समागम मनुष्य के पापों को नष्ट करना है। त्यागी और ज्ञानी आत्माओं के वचन मनुष्य के संतप्त हृदय को परम शांति प्रदान करते हैं। उनसे श्रद्धा से और विनयपूर्वक प्राप्त किया हुआ ज्ञान जीवन की कठिनाइयों में मनुष्य को मेरुवत् निश्चल रखता है।’

‘और माँ, तुझे एक दूसरा समाचार दूँ। मैं कल अमर की हवेली में गई थी और देवी धनवती से मैंने साध्वीजी के बारे में पूछा तो उन्होंने मेरी धर्मबोध पाने की इच्छा जानकर प्रसन्नता व्यक्त की और... अमर को भी किन्हीं साधु-पुरुष के पास धर्मबोध के लिए जाने की प्रेरणा दी।’

‘बहुत अच्छी बात है यह तो! क्या अमर ने मान ली बात!’

‘हां, माँ! अमर उसकी माँ की बात कभी नहीं टालता। पिता की आज्ञा का भी पालन करता है।’

‘लड़का प्रज्ञावान है... कलाओं का ज्ञाता है... साथ ही गुणी भी है... वह यदि धर्मबोध प्राप्त कर लेगा तो उसके गुण चंद्र-सूर्य की भाँति दमक उठेंगे।’

अमरकुमार की प्रशंसा करते हुए और सुनते हुए सुरसुंदरी पुलकित हो उठी। रतिसुंदरी जानती थी अमरकुमार और सुरसुंदरी के मैत्री-संबंध को। उसे तनिक भी आश्चर्य नहीं हुआ सुरसुंदरी को रोमांचित होते देखकर। बल्कि वह मुस्कारा दी।

‘बेटी, जब तेरे पिताजी यह जानेंगे कि उनकी अपनी लाइली ने साध्वीजी के पास शिक्षा के लिए जाना तय कर लिया है, तब उन्हें कितनी खुशी होगी?’

‘माँ, मैं साध्वीजी से सबसे पहले तो श्री नमस्कार महामंत्र का अर्थ, भावार्थ और रहस्य समझूँगी। अपना तो यह महामंत्र है न?’

‘हाँ बेटी... नमस्कार महामंत्र को समझना। पर साध्वीजी से प्रार्थना करना। हठ मत करना। वे जो धर्मबोध दें, उसे ग्रहण करना विनयपूर्वक!’

‘अच्छा माँ!’

इधर उधर की बातों में माँ-बेटी खो गयी।



दूसरे दिन नियत समय पर सुरसुंदरी श्वेत वस्त्रों को धारण करके उपाश्रय

अपूर्व महामंत्र

१७

में जा पहुँची। विधिवत् वंदना करके विनयपूर्वक वह साध्वीजी के समक्ष बैठ गई।

साध्वीजी सुव्रता ने श्री नमस्कार महामंत्र का शुद्ध उच्चार करते हुए मंगल प्रारंभ किया।

‘पुण्यशीले, आज पहले दिन मैं तुझे श्री नवकार महामंत्र की महिमा बताना चाहती हूँ। तुझे अच्छा लगेगा न?’

सुरसुंदरी तो आश्चर्य के सागर में मानों डूब गयी... ‘ओह, गुरुमाता! आपको मेरे मन की इच्छा का कैसे पता लग गया! मैं खुद आपसे यही प्रार्थना करनेवाली थी - ‘आप मुझे सबसे पहले श्री नवकार महामंत्र का स्वरूप समझाने की कृपा करें।’ और आपने खुद यही बात कही!’

‘कितना अच्छा इत्फ़ाक़ रहा! तेरी जिज्ञासा के अनुरूप प्रस्ताव हो गया! तू भलीभाँति महामंत्र के स्वरूप को, उसकी आराधना विधि को ग्रहण कर सकेगी!’

‘आप महान है, गुरुमाता!’

साध्वीजी ने आँखे मूँद ली। पंचपरमेष्ठी भगवंतो का स्मरण किया और अपना कथ्य प्रारंभ किया :

‘हे सुशीले, इस विश्व में पाँच परम आराध्य तत्त्व है : अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु। परम इष्ट मोक्षपद की प्राप्ति करनेवाले - ये पाँच परमेष्ठी हैं। इन पाँच परमेष्ठी को किया हुआ नमस्कार सभी पापों का नाश करता है। यह नमस्कार महामंत्र सभी मंगलों में श्रेष्ठ मंगल है। कोई भी जीवात्मा यदि पाँच समिति के पालन में अनुरत बनकर, तीन गुप्तियों से पवित्र होकर इस महामंत्र का त्रिकाल स्मरण करता है, तो उसके शत्रु भी मित्र बन जाते हैं, जहर भी अमृत में बदल जाता है, शरणरहित अरण्य भी रहने लायक महल में तबदील हो जाता है। अनिष्ट संकेत और अपशुकन भी शुभ फल देनेवाले बनते हैं। दूसरे मंत्र, तंत्र इस महामंत्र को पराजित नहीं कर सकते। डायन परेशान नहीं करती, सर्प कमलदंड हो जाता है। हाथी हिरन-से मासूम हो जाते हैं। राक्षस भी रक्षा करने लगते हैं। भूत विभूति देनेवाले बन जाते हैं। व्यंतर नौकर बन जाते हैं। विपत्तियों में संपत्ति आ मिलती है। दुःख सुख में बदलने लगते हैं।

ज्यों गरुड़ का स्वर सुनकर चंदन का वृक्ष सर्पों के लिपटाव से बरी हो

अपूर्व महामंत्र

१८

जाता है, उस तरह नमस्कार महामंत्र की गंभीर ध्वनि सुनकर मनुष्य के पाप बंधन टूट जाते हैं। महामंत्र में एकाग्र-चित्त जीवों के लिए जल-स्थल श्मशान-पर्वत-दुर्ग वगैरह उपद्रव के स्थान भी उत्सव रूप बन जाते हैं।

विधिपूर्वक पंचपरमेष्ठी नमस्कार मंत्र का ध्यान करने वाले जीव तिर्यंच गति या नरक गति का शिकार नहीं बनते। इस महामंत्र के प्रभाव से बलदेव, वासुदेव, चक्रवर्ती की ऋद्धि प्राप्त होती है। विधिपूर्वक पठित यह मंत्र वशीकरण, स्तंभन आदि कार्यों में सिद्धि देता है। विधिपूर्वक स्मरण किया जाए तो यह महामंत्र पराविद्या को काट डालता है और क्षुद्र देवों के उपद्रवों को ध्वंस करता है।

स्वर्ग, मृत्यु और पाताल-तीनों लोकों में, द्रव्य-क्षेत्रकाल और भाव की अपेक्षा से जो कुछ, आश्चर्यजनक अतिशय दिखायी देता है, वह सब इस नमस्कार महामंत्र की आराधना का ही प्रभाव है, यों समझना। तीनों लोक में जो कुछ संपत्ति नजर आ रही है वह नमस्कार रूप वृक्ष के अंकुर, पल्लव, कली या फूल हैं, यों समझना। नमस्कार रूपी महारथ पर आरूढ़ होकर ही अभी तक तमाम आत्माओं ने परम पद की प्राप्ति की है, यों जानना।

जो मन-वचन-काया की शुद्धि रखते हुए एक लाख नवकार मंत्र का जाप करते हैं वे तीर्थंकर नाम-कर्म का उपार्जन करते हैं।

ऐसे नमस्कार महामंत्र के ध्यान में यदि मन लीन-तल्लीन नहीं बनता है, तो फिर लंबे समय तक किये हुए श्रुतज्ञान या चरित्र धर्म का पालन भी क्या काम का? जो अनंत दुःखों का क्षय करता है, जो इस लोक और परलोक में सुख देने वाली कामधेनु है - कल्पवृक्ष है... उस मंत्राधिराज का जाप क्यों नहीं करना? दिये से, सूरज से या अन्य किसी तेज से जिस अँधेरे का नाश नहीं होता, उसका नाश नमस्कार महामंत्र से होता है।

ज्यों नक्षत्रों में चंद्र चमकता है, वैसे तमाम पुण्यराशियों में भाव नमस्कार शोभित बनता है। विधिपूर्वक आठ करोड़, आठ लाख, आठ हजार, आठ सौ आठ बार इस महामंत्र का जाप यदि किया जाए तो करनेवाली आत्मा तीन जन्मों में मुक्ति प्राप्त करती है।

अतः है भाग्यशीले, तुझे मैं कहती हूँ कि संसार-सागर में जहाज के समान इस महामंत्र का स्मरण जरूर करना। इसमें आलस नहीं करना। भाव-नमस्कार तो अवश्य परम तेज है। स्वर्ग एवं अपवर्ग का रास्ता है। दुर्गति को

अपूर्व महामंत्र

१९

नष्ट करनेवाली अग्नि है। जो भव्य जीवात्मा अंतिम साँस की घड़ी में इस महामंत्र का पाठ करे... इसे गिने... सुने... इसका ध्यान करे उसे भावी जीवन में कल्याण की परंपराएँ प्राप्त होती हैं।

मलयाचल में से निकलते चंदन की भाँति, दही में से निकलते मक्खन की भाँति, आगमों से सारतत्त्व और कल्याण की निधिस्वरूप इस महामंत्र की आराधना करनेवाला व्यक्ति चरितार्थ हो जाता है।

पवित्र शरीर से, पद्मासनस्थ होकर, हाथ को योगमुद्रा में रखकर, संविग्न मनयुक्त होकर, स्पष्ट, गंभीर पर मधुर स्वर में इस नमस्कार महामंत्र का सम्यक् उच्चार करना चाहिए। शारीरिक अस्वास्थ्य वगैरह के कारण यह विधि यदि न हो सके तो 'असिआउसा' इसका जाप करना चाहिए। इस मंत्र का स्मरण भी यदि संभव न हो तो केवल 'ऊँ' का स्मरण करना चाहिए। यह 'ऊँ'कार मोह-हस्ति को बस में करने के लिए अंकुश के समान है।

महामंत्र का स्मरण था श्रवण करते वक्त यों सोचना विचारना चाहिए कि : 'मैं स्वांग अमृत से नहाया हूँ... चूँकि परमपुण्य के लिए कारणरूप परम मंगलमय यह नमस्कार महामंत्र मुझे मिला है! अहो! मुझे दुर्लभ तत्त्व की प्राप्ति हुई। प्रिय की संगति मिली, तत्त्व की ज्योति जली मेरी राह में! सारभूत पदार्थ मुझे प्राप्त हो गया। आज मेरे कष्ट दूर हो गये। पाप दूर हट गये... मैं भवसागर को तैर गयी:'

हे यशस्विनी सुंदरी! समतारस के सागर में नहाते-नहाते उल्लासित मन से नमस्कार मंत्र स्मरण करने वाली आत्मा पापकर्मी को नष्ट करके सद्गति को पाती है। देवत्व को प्राप्त करती है। परंपरा से आठ ही भवों में सिद्धि-मुक्ति को प्राप्त कर लेती है। इसलिए सुरसुंदरी! हमेशा-प्रतिदिन १०८ बार इस महामंत्र का स्मरण करना कभी मत भूलना। जो जीवात्मा हमेशा १०८ बार इस मंत्र का जप करता है, तो कोई अन्यदैवी उपद्रव उसे सताते हैं।

यदि जन्म के वक्त यह महामंत्र सुनने को मिलता है तो जीवन में यह मंत्र ऋद्धि देनेवाला होता है और मृत्यु के वक्त यदि यह महामंत्र सुनाई दे तो सद्गति प्राप्त होती है आत्मा को। विपत्ति या संकट के समय यदि यह मंत्र जपा जाये तो संकट टल जाते हैं। विपत्तियाँ दूर हो जाती हैं। ऋद्धि के समय यदि इसे गिना जाये तो ऋद्धि का विस्तार होता है।

पाँच महाविदेह-क्षेत्र में. कि जहाँ शाश्वत सुखमय समय होता है, वहाँ पर

भी इस नमस्कार महामंत्र का जाप किया जाता है। पाँच ऐरावत और पाँच भरत-क्षेत्रों में भी शाश्वत सुख देनेवाले इस मंत्र को गिना जाता है।

हे आत्मन्, अत्यंत भयानक ऐसे भावशत्रुओं के समुदाय पर विजय प्राप्त करनेवाले अरिहंतों को, कर्ममल से अत्यंत शुद्ध हुए सिद्ध भगवंतों को, आचार का प्रचार-प्रचार एवं पालन करनेवाले आचार्य भगवंतों को, भावश्रुत के दाता उपाध्याय भगवंतों को नमस्कार करने के लिए निरंतर उद्यत रहना। सभी इधर-उधर के विकल्पों को छोड़कर इस नमस्कार महामंत्र के प्रति आदरयुक्त बनना।'

साध्वीजी का धीर-गंभीर वाणी प्रवाह अस्खलित गति से बहता रहा। सुरसुंदरी का अंतस्तल उस प्रवाह से भीगने लगा... सुरसुंदरी बोल उठी।

'गुरुमाता, कितना अद्भुत वर्णन किया आपने! अपूर्व तत्त्व समझाया आपने! ओह! कितना अचिंत्य-प्रभावशाली है, यह नमस्कार महामंत्र! आज मैं सचमुच धन्य हो गई! हे परम उपकारिणी, मुझे प्रतिज्ञा दीजिए, मैं प्रतिदिन १०८ बार इस महामंत्र का जाप करूँगी।

साध्वीजी ने सुरसुंदरी को अनुज्ञा दी।

सुरसुंदरी ने पुनः पुनः वंदना की। कुशलपृच्छा की। अन्य साध्वीवृंद को भावपूर्वक वंदना की और उत्साहित मन से अपने महल में चली आई।

अभी भी उसकी स्मृति में... कल्पना की दुनिया में साध्वीजी की सौम्य-फिर भी भव्य... मुखाकृति तैर रही है अभी भी उसके श्रवणपुटों में साध्वीजी की घंटियों की-सी आवाज गूंज रही है। नवकार महामंत्र का भाव-स्मरण करते-करते वह पंचपरमेष्ठी भगवन्तों के ध्यान में डूब गई।



४. शिवकुमार

साध्वीजी के अमृत वचन सुरसुंदरी के दिल में गूँजते रहें। श्री नमस्कार महामंत्र के प्रति श्रद्धा और ज्यादा मजबूत हुई। निस्वार्थ और निरीह साध्वीजी की बातें उसे पूर्ण रूप से विश्वसनीय लगीं। रात्रि के समय महामंत्र का स्मरण करते-करते ही वह निद्राधीन हुई।

सुबह जब वह जगी तब एकदम प्रफुल्लित थी। उसका हृदय अव्यक्त आनंद की संवेदना से व्याप्त था। उसे अमरकुमार की स्मृति हो आयी... यदि वह मिले, तो उससे मैं श्री नमस्कार महामंत्र के प्रभाव की बात करूँ... वह भी रोज़ाना इस महामंत्र का स्मरण करे। पर आज नहीं, आज तो मैं साध्वीजी से महामंत्र के बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त करूँगी। फिर अमर से मिलूँगी और उससे बातें करूँगी।'

भोजन वगैरह से निवृत्त होकर, मध्याह्न के समय सुरसुंदरी उपाश्रय में साध्वीजी के पास पहुँची वंदना करके विनम्रतापूर्वक बैठ गई। साध्वीजी से कुशलपृच्छा की और कहा : 'गुरुमाता, कल आपने जो बातें बतायी थी... मेरे मन में उन्हीं का चिंतन चलता रहा। रात को एकाग्र मन से महामंत्र का स्मरण करते-करते मैं कब सो गयी... पता ही नहीं चला। क्या आज भी उसी विषय में मुझे और कुछ बताने की कृपा करेंगी?'

'भाग्यशीले, ज़रूर! आज मैं तुझे एक प्राचीन कहानी सुनाऊँगी। यह कहानी, श्री नमस्कार महामंत्र के दिव्य प्रभाव से गूँथी हुई है। सुनकर तेरा मन जरूर आह्लादित होगा।'

'अच्छा... तब तो जरूर सुनाइए...!'

साध्वीजी ने कहानी कहना शुरू किया।

रत्नपुरी नाम का एक नगर था। उसका राजा था दमितारि। उसी नगर में यशोभद्र नाम के एक परमात्मभक्त श्रेष्ठी रहते थे। हमेशा वे एकाग्र मन से श्री पंचपरमेष्ठी नमस्कार महामंत्र का स्मरण किया करते थे।

यशोभद्र श्रेष्ठी का राजा के साथ अच्छे संबंध थे। सेठ का इकलौता लड़का था शिवकुमार। तरुणावस्था से ही वह बुरे दोस्तों की सोहबत में फँस गया था। आवारा लड़कों के साथ घूमना-फिरना उसका रोजाना क्रम बन गया

शिवकुमार

२२

था। जवानी में आते-आते तो वह एक बदनाम जुआरी हो गया। शराब पीने लगा... मांस भक्षण से भी नहीं बच सका और भी कई तरह के पाप उसके जीवन में प्रविष्ट हो गये। पिता यशोभद्र जो कि धार्मिक वृत्ति के भले-भोले व्यक्ति थे, अपने बेटे के इस दुराचरण से काफी व्यथित थे। उन्होंने कई बार शिवकुमार को समझाने की कोशिश की थी, पर शिवकुमार को सुधारने में वे नाकामयाब रहे। श्रेष्ठी स्वयं कर्म सिद्धांत को जाननेवाले थे। वे समझते थे... 'बेचारे के कितने घोर पाप कर्म उदित हुए हैं? और फिर वह नये पाप बाँधे ही जा रहा है। क्या हो सकता है? कर्म परवश आत्मा की यही दुर्दशा होती है।' इस तरह वे अपने मन को ढाढ़स बँधा लेते थे, और तो करते भी क्या युवा पुत्र को ज्यादा कहना भी उचित नहीं था।

यशोभद्र श्रेष्ठी का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। अपने बेटे के भविष्य की चिंता से वे काफी व्याकुल थे। उन्हें लगा 'शायद अब मेरी मौत मुझे बुलावा दे रही है।' एक दिन उन्होंने शिवकुमार को अपने पास बुलाकर एकदम प्यार से उसके सर पर हाथ फेरते हुए कहा :

'वत्स..., अब मैं तो कुछ दिन का... शायद कुछ घंटों का मेहमान हूँ। मेरी मौत निकट है। आज तक मैंने तुझे ज्यादा कुछ नहीं कहा... आज बस..., अंतिम बार एक सलाह दे रहा हूँ... जब भी तू किसी आफत में फँस जाए... कहीं बचने का कोई चारा न हो, तब श्री नमस्कार महामंत्र का एकाग्र मन से स्मरण करना। जरूर करना..., मुझे इतना वचन दे।'

शिवकुमार ने वचन दिया। यशोभद्र श्रेष्ठी ने आँखे मूँद ली। वे स्वयं श्री पंचपरमेष्ठी भगवंतों के ध्यान में लीन हुए। आत्मभाव में डूबे। श्रेष्ठी की मृत्यु हुई। वे मरकर देवलोक में देव हुए।

अब तो शिवकुमार को कौन रोकने-टोकनेवाला था? वह पिता की अपार संपत्ति का दुर्व्यय करने लगा। दो-चार बरस में ही उसने सारी संपत्ति से हाथ धो दिये। वह रास्ते का भटकता भिखारी हो गया।

एक दिन नगर के बाहर शिवकुमार घूम रहा था, तब अचानक उसके सामने एक अघोरी बाबा आकर खड़ा हो गया। अघोरी ने शिवकुमार से कहा :

'लगता है, तू गरीब है।'

'हाँ...'

'बोल, पैसा चाहिए?'

‘हाँ, क्यों नहीं?’

‘मेरा एक काम यदि तू करेगा, तो तुझे ढेर सारा सोना मिलेगा।’

‘जरूर... आप कहेंगे वैसा करूँगा..., कहिए क्या करना है मुझे?’ शिवकुमार तो गिर गया अघोरी के चरणों में!

‘तो चल, मेरे साथ!’ अघोरी शिवकुमार को लेकर पहुँचा श्मशान में।

काली चौदस की डरावनी रात सिर पर थी। शिवकुमार जैसे तो काफी नीडर था पर श्मशान का वातावरण उसमें भय और शंका से कँपकँपी पैदा कर रहा था। अघोरी एक शव को उठा लाया।

‘तू इस मुर्दे के पैरों के तलवे मसलते रहना। घबराना मत, मैं थोड़ी दूर बैठकर मंत्र का जाप करूँगा। तू यहाँ से खड़ा मत होना। यदि खड़ा हो जाएगा तो यह मुर्दा जिन्दा होकर तुझे मार डालेगा, और यदि बिना घबराए बैठा रहेगा, तो तुझे मैं मालामाल कर दूँगा।’

अघोरी ने शिवकुमार को सावधान करते हुए मुर्दे के हाथ में कटारी रखी और खुद थोड़ी दूरी पर बैठकर मंत्र जपने लगा।

शिवकुमार सोचने लगा, लगता है यह अघोरी मुझे मार डालने का पैंतरा सोच रहा है। मुझे शायद मारकर ही उसकी मंत्रसिद्धि होगी। मुझे यहाँ आना ही नहीं चाहिए था। यह कोई मेरा रिश्तेदार थोड़े ही है जो मुझे यों मुफ्त में ही सोना दे देगा? मुझे यहाँ से भाग जाना चाहिए, पर भागूँ तो भी कैसे? यदि अघोरी मुझे भागता देख ले, तो वह मुझे जिन्दा नहीं छोड़ेगा! हाय... मैं यहाँ कैसे फँस गया? अब क्या होगा? मेरे किये पाप आज मुझे मारकर ही रहेंगे... ओह! मेरे इस जन्म के पाप इसी जन्म में प्रगट हो गये।’ उसे अपने पिता की याद आने लगी। इसी के साथ पिता की दी हुई अंतिम सलाह उसके दिमाग में कौंधी! ‘बेटा, जब भी संकट में फँस जाए तब नमस्कार मंत्र का स्मरण करना...’

शिवकुमार ने मृतदेह को दूर रखा और खुद पद्मासन लगाकर एकाग्र मन से श्री नवकार मंत्र का स्मरण करने लगा।

इधर, अघोरी की मंत्रसाधना के कारण मृतदेह में वैताल का प्रवेश होता है और मुर्दा हिलने-डुलने लगता है। खड़ा होने जाता है और गिर जाता है... तीन-तीन बार मुर्दे ने खड़े होने का प्रयत्न किया, पर वह तीनों बार गिर पड़ा।

वैताल मुर्दे के शरीर में प्रविष्ट था। उसने शिवकुमार का घात करने का

शिवकुमार

२४

प्रयत्न किया। पर शिवकुमार तो नमस्कार महामंत्र के ध्यान में लीन था। नमस्कार के अर्चित्य प्रभाव से वैताल को सफलता नहीं मिल पा रही

थी। शिवकुमार के मस्तिष्क के चारों ओर दिव्य आभामंडल हो गया। नमस्कार महामंत्र के अधिष्ठाता देवों ने शिवकुमार के इर्द-गिर्द रक्षा-कवच खड़ा कर दिया था।

वैताल का गुस्सा उबल उठा। वह अघोरी की ओर लपका। उसे तो खून की प्यास लगी थी। उसने खड्ग का प्रहार अघोरी पर ही कर दिया। जैसे ही अघोरी पर खड्ग का प्रहार हुआ... अघोरी का पूरा शरीर सुवर्ण-पुरुष में बदल गया। उसका शरीर सोने का हो गया।

यदि वही प्रहार शिवकुमार पर होता, तो शिवकुमार का शरीर सोने का हो जाता। अघोरी को सुवर्ण-पुरुष की सिद्धि करनी थी। इसलिए वह शिवकुमार को पकड़ लाया था।

शिवकुमार तो सुवर्णपुरुष-अघोरी के शरीर को सोने का बना देखकर ही विस्मित हो उठा। उसकी समझ में आ गया कि यह सारा प्रभाव श्री नमस्कार महामंत्र का है। इस महामंत्र के प्रभाव से ही मैं बच गया और यह सुवर्णपुरुष मुझे मिल गया... पर मैं यदि अभी ही इस सुवर्णपुरुष को अपने घर पर ले जाऊँ तो मुझ पर चोरी का इल्जाम भी आ सकता है... चूँकि इन दिनों मैं निर्धन हूँ... कहीं न कहीं आफत खड़ी होगी। इसके बजाय तो कल मैं महाराजा दमितारि के पास जाकर सारी हकीकत बता दूँगा। फिर यदि महाराजा इज़ाज़त देंगे, तो इस सुवर्णपुरुष को घर ले जाऊँगा। अभी तो यहाँ पर गड्ढा खोदकर गाड़ दिया जाए।

यों सोचकर शिवकुमार मृतदेह के हाथ से खड्ग लेकर उससे गड्ढा खोदने लगा। गड्ढे में सुवर्णपुरुष को गाड़कर वह नगर में आया। सुबह घर पर जाकर स्नान वगैरह से निपटकर राजमहल में गया।

महाराजा दमितारि से मिलकर रात की समग्र घटना कह सुनायी। राजा आश्चर्य से देखने लगा शिवकुमार को उसे लगा कहीं शिवकुमार शराब के नशे में तो नहीं है? आखिर शिवकुमार को साथ में लेकर राजा खुद श्मशान में गया। शिवकुमार की बात का भरोसा हुआ, नज़रोनज़र सुवर्णपुरुष देखकर। उसने शिवकुमार से कहा : 'शिवकुमार, यह सुवर्ण-पुरुष मैं तुझे देता हूँ। श्री नमस्कार महामंत्र के अर्चित्य प्रभाव से यह सोना तुझे मिला है... परंतु अब तू

शिवकुमार

२५

व्यसन आदि बुरी लतें छोड़कर जीवन को सुंदर बनाने का प्रयत्न करना। तेरे पिताजी तो कितना धर्ममय जीवन गुजारते थे?’

शिवकुमार ने पितातुल्य राजा दमितारि की प्रेरणा को स्वीकार किया। सुवर्णपुरुष को अपने घर पर ले गया। कुछ ही दिनों में तो वह बड़ा अमीर हो गया।

एक दिन सदगुरु का सत्संग प्राप्त हुआ। गुरुदेव ने उसको मानव-जीवन को सफल बनाने की धर्मकला बतायी। शिवकुमार ने बारह व्रत अंगीकार किये। सोने का मंदिर बनवाया और रत्न की प्रतिमा निर्मित करके प्रतिष्ठापित की।

एक दिन इस संसार से विरक्त होकर उसने साधुधर्म अंगीकार किया, संयम धर्म का समुचित पालन करके कर्मों को नष्ट किया और अंत में उसकी आत्मा सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो गई।

‘सुरसुंदरी, यह है शिवकुमार की पुरानी कहानी। श्री नमस्कार महामंत्र के ऐसे दिव्य प्रभावों के अनुभव तो आज भी मिलते हैं।’

सुरसुंदरी तो कहानी सुनने में पूरी तरह लयलीन हो गयी थी। जब साध्वीजी ने कहा : ‘आज भी ऐसे दिव्य प्रभाव देखने को मिलते हैं - यह सुनकर सुरसुंदरी ने पूछा : ‘क्या आपने अपने जीवन में कोई ऐसा प्रभाव देखा है? अनुभव किया है? मुझे लगता है कि आपको ज़रूर कोई दिव्य अनुभव हुआ ही होगा। यदि मुझसे कहने में...

‘कोई एतराज नहीं है... सुंदरी तुझे सुनाने में।’ सुन, एक अद्भुत अनुभव की बात तुझे बताती हूँ.

दो साल पहले हम मगध प्रांत में विचरण कर रहे थे। सवेरे का समय था। हम सभी आर्याएँ साथ-साथ ही पदयात्रा कर रहीं थीं। रास्ता पहाड़ी था, विकट भी था। फिर भी एक के पीछे एक... हम चलते हुए रास्ता काट रहीं थीं। इतने में अचानक ही शेर की दहाड़ सुनाई दी। हम सभी आर्याएँ खड़ी रह गयीं। हमारे सामने की ही पहाड़ी पर हमने एक खूँखार शेर को देखा। मैंने सभी साध्वियों से कहा : ‘बैठ जाओ नीचे... आँखें मूँदकर श्री नमस्कार महामंत्र का स्मरण करो।’

मैं स्वयं भी बैठ गयी। श्री नमस्कार महामंत्र के ध्यान में लीनता आने लगी। जब आँखें खोली तो दूर दूर चले जाते हुए शेर को मैंने देखा। मैंने

शिवकुमार

२६

साध्वियों से कहा : 'आँखें खोलो, खड़ी हो... और उस जाते हुए शेर को देखो।' जाओ।

'अद्भुत... वाकई अद्भुत' - सुरसुंदरी बोल उठी। उसने कहा :

'ऐसा कोई दूसरा अनुभव? बस, फिर ज्यादा नहीं पूछूँगी... दूसरा अनुभव सुनकर चली जाऊँगी... फिर आपका समय नहीं लूँगी।'

साध्वीजी के चेहरे पर स्मित तैर आया। राजकुमारी के भोलेपन पर उनका वात्सल्य छलक पडा।

'सुंदरी, तुझे दूसरा स्वानुभव सुनना है न, सुन,

एक समय की बात है। हम मात्र चार साध्वियाँ ही एक गाँव से विहार करके दूसरे गाँव की ओर जा रहीं थीं। रास्ता भूल गयीं। भटक गयीं। सूरज डूब गया... रात घिरने लगी... भयानक जंगल था... अब तो रात जंगल में ही गुज़ारना पड़े, वैसी परिस्थिति पैदा हो गयी। इधर-उधर निगाहें डालीं तो एक झोंपड़ी नज़र आयी। हम गये उस झोंपड़ी के पास... खाली थी झोंपड़ी। पर न तो कोई दरवाज़ा था... न खिड़की थी। मात्र छप्पर था। हमने वहीं पर विश्राम करना तय किया। आवश्यक क्रियाएँ करके हम सभी बैठीं।'

'आपको डर नहीं लगा?' सुरसुंदरी ने बीच में ही सवाल किया।

'डर? दूसरे जीवों को अभय देनेवालों को भय कैसा? डर कैसा? और फिर हमारे हृदय में तो महामंत्र नवकार था... फिर डर किस बात का? अलबत्ता, ऐसी सुनसान जगह पर हमें सोना नहीं था। हम सारी रात जगते रहें और महामंत्र का स्मरण करते रहें।

मध्यरात्रि का समय हुआ... और आठ-दस आदमी बातें करते-करते हमारी झोंपड़ी की तरफ आते दिखें। उनको देखा तो वे डाकू जैसे लग रहे थे। हम सभी श्री नवकार महामंत्र के ध्यान में लीन हो गयीं। डाकू हमारी झोंपड़ी के निकट आ गये थे। हमारे श्वेत वस्त्र देखकर एक डाकू बोला:

'कौन है झोंपड़ी में?' हमने जवाब नहीं दिया। उसने दूसरी बार आवाज लगाई। हम मौन रहे और तीसरी बार उसने पूछा ही था कि इतने में तो तबड़क... तबड़क करते हुए घोड़ों के टाप की आवाज सुनायी दी। दूसरा डाकू बोला : 'अरे... भागो यहाँ से! यह तो घुड़सवार आते लगते हैं...' और डाकू वहाँ से भाग गये।

शिवकुमार

२७

दो घुड़सवार वहाँ आ पहुँचे। हमें देखकर वे घोड़े से नीचे उतरे हमारे पास आकर सिर झुकाकर बोले : 'आपको खोजते-खोजते ही हम यहाँ आये हैं। आपने जब पिछले गाँव से विहार किया, तब हम भी उसी गाँव से निकले थे। जहाँ आपको जाना था, उसी सामनेवाले गाँव में हमको भी जाना था। हम वहाँ पहुँचे। शाम हो गयी... रात होने लगी... पर आप सब न आये तो हमें कुछ डर-सा लगा... हमें हुआ शायद आप रास्ता भूल गयीं होंगी... यह जंगल तो चोर-डाकुओं का इलाका है... इसलिए हम आपको खोजते-खोजते यहाँ आ पहुँचे।'

'आप कौन हैं महानुभाव?' हमने पूछा।

'आपके सेवक...!' यों कहकर वे दोनों घुड़सवार वहाँ से चले गये।

'ओह! यह तो कितना गज़ब का अनुभव है। बस, अब आपको और ज्यादा कष्ट नहीं देना है आज।'

सुरसुंदरी ने वंदना की और अपने महल की ओर लौटी। साध्वीजी वात्सल्य भरी निगाहों से भोली हिरनी-सी सुरसुंदरी को जाती हुई देखती रही।



५. जनम-जनम तू ही माँ!

जितनी तमन्ना और तन्मयता से सुरसुंदरी ने विद्याध्ययन किया था, कलाएँ सीखी थी, उतनी ही तमन्ना और तन्मयता से उसने जैन धर्म के सिद्धान्तों का अध्ययन भी किया था। साध्वी सुव्रता ने वात्सल्य भरे हृदय से उसे अध्ययन करवाया।

विद्यार्थी की विनम्रता और विनय गुरु के दिल में वात्सल्य पैदा करते हैं, करुणा का झरना प्रवाहित करते हैं। गुरु का वात्सल्य और गुरु की करुणा विद्यार्थी में उत्साह एवं उद्यम पैदा करती है।

अमरकुमार ने भी जैनाचार्य कमलसूरिजी के चरणों में बैठकर अध्ययन किया। विनय, नम्रता वगैरह गुणों के साथ उसमें तीव्र बुद्धि भी थी। आत्मवाद का उसने गहरा अध्ययन किया। कर्मवाद का विशद अध्ययन किया। अनेकांतवाद की व्यापक विचारधारा को अंतस्थ बनाया।

सुरसुंदरी को साध्वी सुव्रताजी ने कर्म का सिद्धांत समझा कर पंचपरमेष्ठी के ध्यान की प्रक्रिया समझायी। अध्यात्मयोग की गहन बातें बतलायी। समग्र चौदह राजलोक की समूची व्यवस्था का ज्ञान आत्मसात् करा दिया। मोक्षमार्ग की आराधना का क्रमिक विकास बताया।

एक दिन अमरकुमार आचार्य श्री की वंदना करके उपाश्रय के सोपान उतर रहा था और सुरसुंदरी आचार्य श्री की वंदना करने के लिए उपाश्रय के सोपान चढ़ रही थी। दोनों की आँखें मिलीं।

‘ओह... सुंदरी?’

‘बहुत दिन बाद मिले नहीं, अमर?’

‘हाँ... अब कहाँ हम एक पाठशाला में पढ़ाई करते हैं? अध्ययन करने के स्थान अलग-अलग हो गये, तो मिलना भी इसी तरह अचानक हो, तो हो।’

‘सही बात है तेरी, अमर, पर...’

‘पर क्या, सुंदरी? अध्ययन में तू इतनी डूब गयी होगी कि अमर तो याद भी नहीं आता होगा... है न?’ अमर के चेहरे पर शरारत तैर गई।

‘सच बताऊँ?... अमर, एक भी दिन ऐसा नहीं जाता कि तू याद न आता

जनम जनम तूं ही माँ!

२९

हो। अध्ययन करते-करते भी कभी बढ़िया तत्त्वचर्चा का मौका आ जाए तब तो तू बरबस याद आ ही जाता है। मन होता है... जाकर अमर को यह तत्त्वचर्चा सुनाऊँ... उसे कितना आनंद होगा?’

‘तो फिर मेरी हवेली पर क्यों नहीं आती? अरे! माँ से मिलने के बहाने भी तो आ सकती है तू?’

‘आ तो सकती हूँ... मैंने इरादा भी किया था... पर तेरी माँ की उपस्थिति में तेरे साथ बात करने में मुझे...’

‘शरम आती है। यही कहना है न?’ सुंदरी का चेहरा शरम से लाल-लाल होता चला गया।

‘अमर...’ पैरों से जमीन को कुरेदते हुए बोली, ‘मुझे तेरे साथ ढेर सारी बातें करनी हैं...। साध्वीजी से जो मैंने सुनी है, वे सारी बातें तुझे बतानी हैं... और तुझसे भी मुझे ऐसी कई बातें सुननी भी हैं। जैनधर्म का, सर्वज्ञ शासन का दर्शन मुझे तो बहुत अच्छा लगता है... अमर, तुझे भी यह दर्शन भाता होगा?’

‘सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा की बतायी हुई अनेकांत दृष्टि मुझे बहुत अच्छी लगी...।’

‘मुझे कर्मवाद बहुत अच्छा लगा, अमर!’

दोनों का वार्तालाप अधूरा रहा, चूँकि अन्य दर्शनार्थियों की आवाजाही चालू हो गयी थी। अमरकुमार सोपान उतर गया और सुरसुंदरी ने उपाश्रय में प्रवेश किया। आचार्य श्री को वंदना कर कुशलता पूछी और विनय पूर्वक खड़ी हो गई।

‘क्यों सुरसुंदरी! साध्वीजी अध्ययन कैसा करवाती हैं?’

‘बहुत अच्छा, गुरुदेव। वह गुरुमाता तो कितनी करुणा एवं वत्सलता से अध्ययन करवाती हैं। मुझे तो काफ़ी आनंद मिलता है। दर्शन का ज्ञान भी कितना प्राप्त होता है।’

‘तू पुण्यशालिनी है! तुझे माता तो गुरु मिली ही है, साध्वी भी ऐसे ही गुरु मिली!’

‘आपकी कृपा का फल है, गुरुदेव!’

‘वत्से! ऐसा ज्ञान प्राप्त करना कि चाहे जैसे प्रतिकूल संजोगों में भी तू स्वस्थ बनी रहे। तेरा संतुलन यथावत् रहे। तेरी समता-समाधि टिक सके।

जनम जनम तूं ही माँ!

३०

अनंत-अनंत विषमताओं से भरे इस संसार में एक मात्र सर्वज्ञ वचन ही सच्ची शरणरूप है। वे आत्मशांति प्रदान कर सकते हैं। शांत सुधारस का पान करवा सकते हैं।’

‘आपका कथन यथार्थ है, गुरुदेव।’

‘तेरा आत्म-भाव शांत, प्रशांत और निर्मल बनता चले... यही मेरे आशीर्वाद हैं, वत्से!

सुरसुंदरी हर्षविभोर हो उठी। उसने पुनः पुनः वंदना की और उपाश्रय के बाहर आयी।

सुरसुंदरी अपने महल में चली आयी। उसके विचार आचार्य कमलसूरिजी की वाणी के इर्दगिर्द घूम रहे थे।

आचार्यश्री की करुणा से गीली आँखें... सुधारस-भरी उनकी वाणी... भव्य फिर भी शीतल उनका व्यक्तित्व! सुंदरी की अन्तरात्मा मानो उपशम-रस के सरोवर में तैरने लगी!

उस सरोवर के दूसरे किनारे पर जैसे अमरकुमार खड़ा-खड़ा स्मित विखेर रहा था। वह जा पहुँची अमरकुमार के पास। ‘अमर... कितने अद्भुत हैं ये गुरुदेव! न किसी तरह का स्वार्थ, न कोई विकार।

विचार-निद्रा में से वह जगी।

अमरकुमार से कहाँ और कैसे मिलूँ, यही वह सोचने लगी। वह झरोके में जाकर खड़ी हो गई। ऊपर नील गगन था। रेशमी हवा उसके अंग-अंग में सिहरन पैदा कर रही थी। सामने रहे आम के वृक्ष पर बैठी कोयल कूकने लगी और सुंदरी के दिमाग में एक मधुर विचार कूक उठा।

‘जिस समय अमर आचार्यश्री के पास अध्ययन करने जाता है, मैं भी उसी समय जाऊँगी आचार्यश्री को वन्दन करने के लिए, आचार्यश्री के सान्निध्य में ही तत्वचर्चा छेड़ूँगी।’

उसका मन-मयूर नाच उठा।

महल के आँगन में एक मोर अपने पंख फैलाकर नाचने लगा। सुंदरी मन ही मन बोल उठी : ‘अरे, मोर, क्या तूने मेरे मन की बात जान ली? नाच... तू भी नाच!’

‘सुरसुंदरी भोजनगृह में पहुँची, माता रतिसुंदरी के पास। माता के साथ

जनम जनम तू ही माँ!

३१

बैठकर उसने खाना खाया। भोजन से निपटकर माँ-बेटी दोनों शयनकक्ष में जाकर बैठे।

‘बेटी, अब तेरा अध्ययन कितना बाकी है?’

‘अरे माँ! यह अध्ययन तो कभी पूरा नहीं होगा... सारी ज़िदगी बीत जाए फिर भी इस अध्ययन का पूर्णविराम नहीं आता! यह तो अनंत है, असीम है।’

‘तेरी बात सही है, पर बेटी सर्वज्ञ शासन के मूलभूत सिद्धांतों का तो अध्ययन हो गया है न?’

‘हाँ, माँ, मैंने नव-तत्त्व सीख लिये। सात नये का ज्ञान प्राप्तकर लिया। मैंने चौदह गुणस्थानक जानें। मैंने ध्यान और योग की प्रक्रियाएँ समझी।’

‘अब कौन सा विषय चल रहा है?’

‘अब तो मुझे अनेकांतवाद समझना है।’

‘बहुत अच्छा विषय है यह। एक बार पूज्य आचार्यदेव ने प्रवचन में अनेकांतवाद की इतनी विशद विवेचना की कि मैं तो सुनकर मुग्ध हो उठी। उस दिन मैं तेरे पिताजी के साथ प्रवचन सुनने के लिए गयी थी।

‘माँ, मेरी भी यही इच्छा है कि ‘अनेकांतवाद’ का अध्ययन मैं पूज्य आचार्य भगवंत से करूँ। वे इस विषय के निष्णात हैं।’

‘उन महापुरुष को यदि समय हो, तो विनती करना उनसे! वे तो परमकृपालु हैं। यदि अन्य कोई प्रतिकूलता न हुई तो जरूर वे तुझे अनेकांतवाद समझाएँगे।’

सुरसुंदरी तो जैसे नाच उठी। दोनो हाथ माँ के गले में डालकर उससे लिपट गयी।

‘मुझे तो जनम-जनम तक तू ही माँ के रूप में मिलना।’

‘यानी, मुझे जनम-जनम तक स्त्री का अवतार लेना है क्यों?’ प्यार से पुत्री को सहलाते हुए रतिसुंदरी ने सुंदरी के गालों पर थपकी दी।

‘मेरे लिए तो तुझे स्त्री का अवतार लेना ही होगा माँ!’

‘अच्छा, तुझे मेरी एक बात माननी होगी।’

‘अरे, एक क्या... एक सौ बातें मानूँगी, बोल, फिर?’

‘तुझे चारित्र धर्म अंगीकार करने का!’

‘यानी कि साध्वी हो जाने का... यही न?’

‘हाँ!’

जनम जनम तूं ही माँ!

32

‘ओह, मुझे तो साध्वी जीवन अच्छा लगता ही है।’

‘हाँ, पर अभी साध्वी बनने को नहीं कहती हूँ! यह तो अगले जन्म में यदि मैं तेरी माँ होऊँ और तू मेरी बेटी हो तो!’

‘माँ, मैं तो इस जनम में ही साध्वी हो जाऊँगी। मुझे तो एक दिन ऐसा सपना भी आया था...’

‘यह तो तू रोज़ाना साध्वीजी के पास जाती है- उनके दर्शन करती है... इसलिए, ऐसे सपने कहीं सच नहीं होते।’

‘चाहे, अभी सपना हो यह सपना... इस जीवन में कभी न कभी तो सच होना चाहिए। सच कहती हूँ माँ, कभी-कभी मुझे साध्वी-जीवन के प्रति काफी खिंचाव हो आता है... हालाँकि यह आकर्षण कुछ देर ही होता है... फिर भी आत्मा में गहरे-गहरे तो यह आकर्षण रहेगा ही।’

‘वह तो रहना ही चाहिए। मानव-जीवन की सफलता चरित्रधर्म में ही रही हुई है। परंतु अभी तो मुझे तेरी शादी करनी है...।’

‘देख माँ, हम बात कौन सी कर रहे हैं? संयमशील जीवन की। इसमें फिर शादी की बात कहाँ से आयी? मैं तो चली...’ सुरसुंदरी खड़ी हो गई। रतिसुंदरी ने उसका हाथ पकड़कर अपनी ओर खिंचते हुए कहा :

‘बेटी, अब तू यौवन में है... मैं और तेरे पिताजी यही तो सोच रहे हैं कि तेरे लिए सुयोग्य वर मिल जाए तो...’

सुरसुंदरी माँ का हाथ छुड़ाकर शयनकक्ष के बाहर दौड़ गयी... अपने कक्ष में जाकर बैठ गयी... फिर वापस उठी और माँ के पास आकर बोली :

‘माँ, मैं कल आचार्यदेव के पास जाऊँगी... अनेकांतवाद का अध्ययन करने लिए! जाऊँ न?’

‘ज़रूर जाना बेटी! मैं आचार्यदेव को समाचार भिजवा दूँगी, पर तू साध्वीजी से बात कर लेना कि मैं पूज्य आचार्यदेव के पास अनेकांतवाद का अध्ययन करने जाऊँगी।’

‘वह तो मैं आज ही कह दूँगी। मेरी गुरुमाता भी तेरी तरह मुझे इज़ाजत देंगी ही।’

सुरसुंदरी अपने कक्ष में चली गयी। रतिसुंदरी अपने कक्ष में से निकलकर महाराज के कक्ष की ओर चली।

जनम जनम तूं ही माँ!

३३

महाराजा रिपुमर्दन अपने कक्ष में अकेले ही थे। रतिसुंदरी ने कक्ष में प्रवेश किया और भद्रासन पर बैठ गयी।

‘देवी, सुंदरी का धार्मिक अध्ययन कैसा चल रहा है?’ महाराज ने सीधी सुरसुंदरी की ही बात छोड़ी।

‘मैं अभी उसके पास से ही आ रही हूँ। हम दोनों यही बात कर रही थीं। कुछ समय में तो उसने काफी अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया है... अब ज्यादा अध्ययन...’

‘नहीं करवाना... यहीं न? क्यों? डर लगा क्या?’ कही सुंदरी दीक्षा ले ले तो?’ महाराजा हँस दिये।

‘इतनी मेरी किस्मत कहाँ? वह साध्वी बने, तो मैं रत्नकुक्षि कहलाऊँगी न?’

‘तो फिर क्यों ज्यादा अध्ययन नहीं करवाना?’

‘कब तक पढ़ाएँगे उसे? अब तो उसे ससुराल बिदा करना होगा न? उसे ज़रा ध्यान से देखो तो...’

‘वह यौवन में है, मैं जानता हूँ। उसके अनुरूप राजकुमार की खोज भी चालू है। फिर भी आज तक सफलता नहीं मिली। चाहे जैसे ऐसे-वैसे राजकुमार के साथ तो सुंदरी का ब्याह भी कैसे करें? हमने उसे जितने ऊँचे उम्दा संस्कार दिये हैं... जैसी कलाएँ जानती है तो उसके अनुरूप तो वर मिलना चाहिए न?’

‘आज नहीं तो कल मिलेगा... उसका पुण्य ही खींच लाएगा सुयोग्य वर को।’ रानी ने अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हुए आश्वासन दिया।

‘यह तो अपना माता-पिता का हृदय है, इसलिए चिंता-फिक्र होना स्वाभाविक है, वर्ना तो इस बात में निर्णायक बनते हैं आत्मा के अपने शुभाशुभ कर्म। यह बात मैं कहाँ नहीं जानता हूँ देवी? पर, अपना कर्तव्य भी हमको पूरी जिम्मेदारी के साथ अदा करना है न?’

‘मेरी एक विनती है आप से!’

‘कहो, क्या बात है?’

‘एक दिन आप सुरसुंदरी की ज्ञान की परीक्षा तो कर लें!’

रानी का प्रस्ताव सुनकर राजा सोचने लग गये। उन्होंने रानी के सामने देखा... कुछ सोचा और बोले :

‘परीक्षा कर लूँगा, पर राजसभा में। अकेली सुरसुंदरी की ही नहीं वरन्, साथ ही साथ श्रेष्ठी धनावह के पुत्र अमरकुमार की भी परीक्षा मुझे कर लेनी है। पंडितजी की इच्छा भी यही है... मुझे उन्होंने कई बार कहा है... ‘सुरसुंदरी और अमरकुमार मेरे श्रेष्ठ विद्यार्थी हैं, आप राजसभा में उनकी परीक्षा लें।’ तुमने आज ठीक याद करवाया...।

रानी का मन आश्वस्त हुआ... राजा अपने मन में किसी समस्या का समाधान खोज रहे थे।



६. काश! मैं राजकुमारी न होती!!

सुबह का प्रथम बीत चुका था। सुरसुंदरी प्राभातिक कार्यों से निवृत्त होकर, उपाश्रय में जाने की तैयारी करने लगी। दासी को भेजकर रथ तैयार करवाया और माता की इजाज़त लेकर, रथ में बैठकर वह उपाश्रय पहुँची।

विधिपूर्वक उसने उपाश्रय में प्रवेश किया।

‘मत्थएण वंदामि’ कहकर मस्तक पर अंजलि जोड़कर आचार्यश्री को प्रणाम प्रणिपात करके, पंचांग प्रणिपात करके, उसने विधिवत् वंदना की। आचार्यश्री की अनुमति लेकर, वस्त्रांचल से भूति का प्रमार्जन करके वह विवेकपूर्वक बैठी।

‘तेरी माँ का संदेश मिल गया था। तू योग्य समय पर आई है। अभी अमरकुमार भी आएगा... उसका भी यही समय है अध्ययन के लिये आने का।’

सुरसुंदरी की नज़र द्वार की तरफ गई। अमरकुमार ने उसी समय उपाश्रय में प्रवेश किया... और गुरुदेव को वंदना की...। सुरसुंदरी को प्रणाम किया... सुरसुंदरी ने भी प्रणाम का जवाब प्रणाम कर के दिया। अमरकुमार अपनी जगह पर बैठा।

गुरुदेव ने अमरकुमार से कहा, ‘अमर, आज सुरसुंदरी ‘अनेकांतवाद समझने की जिज्ञासा से आई है। हालाँकि तुझे तो अनेकांतवाद का विशद बोध प्राप्त हो ही चुका है, फिर भी तुझे सुनने में आनंद आयेगा और विषय विशेष रूप से स्पष्ट होगा।’

‘अवश्य गुरुदेव! आपके श्रीमुख से पुनः अनेकांतवाद की विवेचना सुनने में मुझे बहुत आनंद आया। अमरकुमार ने सुरसुंदरी के सामने देखा और कहा।

‘गुरुदेव के मुख से इस विषय को सुनना भी एक अनूठा आनंद है, सुंदरी!’

‘गुरुदेव की कृपा से मैं इस विषय को भलीभाँति समझ पाऊँगी। मुझे अत्यंत आह्लाद हो रहा है!’

दोनों की निगाहें आचार्यदेव की ओर स्थिर हुईं। आचार्यदेव ने विषय का प्रारंभ धीर-गंभीर स्वर में किया :

‘इस विश्व में दो तत्त्व हैं। जीव और जड़। जीव अनंत हैं, तो जड़ द्रव्य भी

काश! मैं राजकुमारी न होती!!

३६

अनंत हैं। हर एक द्रव्य के अनेक गुण और अनेक पर्याय होते हैं, यानी द्रव्य की परिभाषा ही 'गुणपर्यायवद् द्रव्यम्' की गई है। गुण-पर्याय के बगैर कोई द्रव्य हो ही नहीं सकता!

'गुरुदेव, गुण और पर्याय के बीच भेद क्या होता है?' सुरसुंदरी ने पूछा।

'गुण द्रव्य के सहभाव होते हैं, जबकि पर्याय क्रमभावी होते हैं। गुण द्रव्य में ही होते हैं, जबकि पर्याय में उत्पत्ति और विनाश का क्रम चलता ही रहता है। इस तरह हर एक द्रव्य के अनंत धर्मात्मक पर्याय होता है। परस्पर विरोधी दिखनेवाले पर्याय-गुण में होते हैं... हालाँकि, उनकी अपनी-अपनी अपेक्षाएँ-विभावनाएँ समझ ली जाएँ, तो फिर उनमें विरोध नहीं रहता है। देखो... एक उदाहरण देकर मैं यह बात और स्पष्ट करता हूँ :

एक पुरुष है। एक युवक आकर उसे 'पिता' कहकर बुलाता है। दूसरा लड़का आकर उसे 'चाचा' कहकर पुकारता है। तीसरा युवक उसे 'मामा' कहकर पुकारता है। एक स्त्री आकर उसे 'स्वामी' शब्द से संबोधित करती है और एक वृद्धा आकर उसे 'बेटा' कहकर बुलाती है।

पुरुष तो एक ही है... फिर भी जैसे उसमें पितृत्व..है... वैसे पुत्रत्व भी है...उसमें चाचापन भी है...मामापन भी है...और पतित्व भी है! संसार के व्यवहार ने इस वास्तविकता को स्वीकार किया है, यानी कोई आपत्ति नहीं उठाता है कि 'नहीं, यह तो प्रिया ही है... पुत्र नहीं है...!' पुत्र समझता है कि मेरी अपेक्षया यह मेरा पिता है, परंतु उनके पिता की अपेक्षया से वे पुत्र है। पत्नी समझती है, मेरी अपेक्षया यह मेरे पति हैं... पर बेटे की अपेक्षया वे पिता हैं। बहन की नज़र में वे भाई हैं। यानी कि एक ही व्यक्ति को लेकर पत्नी और पुत्र झगड़ा नहीं करते। वे एक-दूसरे का दृष्टिकोण समझते हैं और मानकर चलते हैं।...

अपेक्षाएँ, अलबत्ता, सही होनी चाहिए। पत्नी यदि अपने पति को 'पिता' कहे तो वह गलत होगा! पुत्री भी अपने पिता को 'पति' कहे तो वह झूठ है!

इसलिए, यों नहीं कहा जा सकता कि यह पुरुष एकान्तरूप से पिता ही है... या फिर यह पुरुष तो केवल पुत्र ही है! हाँ, यों ज़रूर कहा जा सकता है कि यह पुरुष पिता भी है, पुत्र भी है, पति भी है! इसी का नाम है, अनेकांत दृष्टि! इसी का नाम है स्याद्वाद! एक वस्तु या व्यक्ति को उसके अनेक पहलुओं के साथ स्वीकार करना... किसी भी पहलू को नकारना नहीं, यही तो है स्याद्वाद! 'ही' की भाषा में एकान्त है... 'भी' की भाषा में अनेकांत है।

काश! मैं राजकुमारी न होती!!

३७

यह तो मैंने सांसारिक संबंध का उदाहरण देकर समझाया। अब आत्मा को लक्ष्य करके समझाता हूँ।

आत्मा नित्य भी है अनित्य भी है।

हाँ, परस्पर विरोधी लगने वाले धर्म भी नित्यत्व और अनित्यत्व एक ही आत्मा में रहते हैं! द्रव्यदृष्टि से आत्मा नित्य है। पर्याय-दृष्टि से आत्मा अनित्य है। आत्मद्रव्य का कभी नाश नहीं होता। आत्मद्रव्य कभी उत्पन्न नहीं होता है।

‘तो फिर जो जन्म और मृत्यु दिखायी देते हैं वे किस के?’ सुरसुंदरी ने पूछा।

‘आत्मा के पर्याय के! एक आत्मा यदि मनुष्य है, तो मनुष्यत्व उस आत्मा का एक पर्याय है। आदमी मरा... इसका मतलब, आत्मा का मनुष्य रूप जो पर्याय था, वह नष्ट हुआ। वह मरकर देवगति में पैदा हुआ, इसका अर्थ देवत्व-पर्याय की उत्पत्ति हुई, यों हो सकता है। देवत्व आत्मा का ही एक पर्याय है। पशुत्व और नारकत्व भी आत्मा के पर्याय ही हैं।

पर्याय को अवस्था भी कह सकते हैं।

बाल्यावस्था बीती और युवावस्था का जन्म हुआ। युवावस्था गुजरी और वृद्धावस्था का जन्म हुआ। नीरोग अवस्था नष्ट हुई... रोगी अवस्था पैदा हुई। धनवान अवस्था नष्ट हुई... गरीबी का जन्म हुआ। यों अवस्थाएँ बदलती रहती हैं... पर आत्मा तो स्थायी रहती है। यह है आत्मा की नित्यता।

यानी, यों नहीं कहा जा सकता कि ‘आत्मा नित्य ही है’... या ‘आत्मा अनित्य ही है’। पर यों कहा जाएगा कि ‘आत्मा नित्य भी है... आत्मा अनित्य भी है।’ द्रव्य की अपेक्षया आत्मा नित्य है... पर्याय की अपेक्षया आत्मा अनित्य है। इसका नाम है अनेकांतवाद। यही है सापेक्षवाद।

इसलिये, जीवन में हमेशा कहनेवाले की अपेक्षा, उसके पहलू को समझने की कोशिश करनी चाहिए। ‘यह किस अपेक्षा से बात कर रहा है।’ यह समझने वाला मनुष्य समाधान पा लेता है। अपेक्षा समझने वाला समता प्राप्त कर सकता है। अपेक्षा को समझने वाला मनुष्य ही सर्वज्ञ-शासन के तत्त्वों की यथार्थता पहचान सकता है।

आचार्यदेव ने सुरसुंदरी के सामने देखकर पूछा : ‘क्यों अनेकांतवाद की यह बुनियादी बात तेरी समझ में आ गयी न?’

‘जी हाँ, गुरुदेव! एकदम साफ-साफ समझ में आ गयी सारी बातें। आपका कहना मैं भली-भाँति समझ सकी हूँ।

काश! मैं राजकुमारी न होती!!

३८

‘इस अनेकांतवाद को जीवन में स्थान देना चाहिए। जीवनव्यवहार को सरस एवं सरल बनाने के लिए, कषायों से बचने के लिए यह विचारधारा काफी हद तक उपयोगी बनती है। सैद्धांतिक मतभेदों को भी इस विचारधारा के माध्यम से दूर किया जा सकता है। विवाद हमेशा पैदा होते हैं : एकांतवाद से। आग्रही बने रहने से। अनेकांतवाद में कोई आग्रह नहीं होता।

अब तो तुम्हारे दोनों का धार्मिक अध्ययन भी करीब-करीब पुरा हुआ, वैसा कहा जा सकता है... हालाँकि शास्त्रज्ञान तो अपार है... उसका कहीं अंत नहीं है, फिर भी जीवन में अत्यंत उपयोगी तत्त्वज्ञान तुमने प्राप्त कर लिया है। उस तत्त्वज्ञान का दिया बुझ न जाए... इसकी सावधानी रखना। संसार में विषय-कषाय की आँधियाँ चलती रहती हैं। यदि सावधान न रहें तो ज्ञान का दिया बुझ भी सकता है।

तुम में सत्त्व है... समझ है... मानव-जीवन को सफल बनाने के लिए जीवन में धर्म पुरुषार्थ को समुचित स्थान देना। अर्थ-पुरुषार्थ व काम-पुरुषार्थ तो मात्र साधन के रूप में ही सीमित रहने चाहिए। साध्य बनाना धर्म-पुरुषार्थ को! धर्म-पुरुषार्थ का लक्ष बनाना मोक्ष-दशा को। आत्मा के शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करने का ध्येय चूकना मत।

तुम में रूप, संपत्ति और यौवन का सुभग मिलन हुआ है... इसलिए तो तुम्हें ज्यादा जाग्रत रहना होगा। ये तीन तत्त्व अज्ञानी और प्रमादी आत्माओं को दुर्गति में खींच ले जाते हैं। ज्ञानी एवं जाग्रत आत्माएँ इन तीन तत्त्वों का सहारा लेकर उन्नति भी कर लेते हैं। उनके लिए रूप, जवानी और दौलत आशीर्वाद रूप बन जाते हैं।

अमरकुमार व सुरसुंदरी ने अहोभाव जताते हुए आचार्यदेव की प्रेरणा सुनी। उसे स्वीकार किया। पुनः पुनः वंदना की.. कुशलता पूछी और बिदा ली।

दोनों उपाश्रय के बाहर निकले। अमरकुमार ने सुरसुंदरी से पुछा :

‘तुझे मालूम है... राजसभा में अपनी परीक्षा होनेवाली है?’

‘नहीं तो... किसने कहा? मुझे तो तनिक भी पता नहीं है?’

‘कल तेरे पिताजी ने मेरे पिताजी से कहा होगा। मुझे तो आज सुबह मेरे पिताजी ने कहा।’

‘क्या कहा?’

‘तेरे पिताजी हम दोनों की परीक्षा राजसभा में लेना चाहते हैं।’

काश! मैं राजकुमारी न होती!!

३९

‘पर परीक्षा किस बात की?’

‘यह तू जान लेना न?’

सुरसुंदरी विचार में डूब गयी... उसे यह बात न तो माँ ने कही थी, और न पिता ने ही।

‘क्यों क्या सोचने लगी? डर लग रहा है क्या?’

‘ऊँहूँ... डर किस बात का? मैं तो यह सोच रही थी कि मुझे तो मेरे पिता ने अथवा माँ ने इस बारे में कुछ कहा भी नहीं है।

‘शायद अब कहेंगे।’

‘तो हम तैयार हैं परीक्षा देने के लिए।’

‘अच्छा, तुझे कोई विशेष-नई बात जानने को मिले, तो मुझे इत्तला देगी न?’

‘पर कैसे दूँ इत्तला?’

‘तू मेरी माँ से मिलने के बहाने चली आना हवेली पर! माँ तुझे याद भी करती है। ऐसा हो तो, मेरी माँ तुझे बुलावा भी भेज देगी।’

‘हाँ, तब तो मैं आ सकती हूँ।’

अमरकुमार हवेली की ओर चला। सुरसुंदरी रथ में बैठकर राजमहल की तरफ चली। महल में पहुँचकर कपड़े वगैरह बदलकर वह सीधे ही पहुँची रानी रतिसुंदरी के पास। उनका मन इंतजार कर रहा था अमरकुमार की कही हुई बात का तथ्य जानने का।

‘बेटी, उपाश्रय हो आयी!’

‘हाँ, माँ!’

‘अरे माँ! इतना मज़ा आया कि बस! गुरुदेव ने कितना विशद विवेचन करके मुझे समझाया अनेकांतवाद के बारे में!’

‘अच्छा तो अब तू मुझे समझाएगी न?’

‘बाद में, माँ... अभी तो हम भोजन कर लें... जोरों की भूख लगी है!’

भोजन करते-करते रानी ने बात छोड़ी। ‘तेरे पिताजी आज कह रहे थे कि मुझे सुंदरी के बुद्धि-वैभव की परीक्षा करनी है!’

‘अच्छा? मैं तो तैयार हूँ! पर कब और कहाँ?’

‘दो-चार दिन में ही और राजसभा में।’

‘ठीक है, मैं आज पिताजी से मिलूँगी!’

‘आज तू उपाश्रय गयी तब बाद में तेरे पिताजी ने धनावह श्रेष्ठी को यहाँ राजमहल में बुलवाया था।

क्यों?’

यह तो मैं नहीं जानती... पर उन्होंने कल श्रेष्ठी से बात की थी कि एक दिन मैं अमरकुमार और सुरसुंदरी की परीक्षा राजसभा में करना चाहता हूँ। शायद बात तय करने के लिए ही आज श्रेष्ठी को यहाँ बुलवाया होगा। श्रेष्ठी ने अमरकुमार से पूछ भी लिया होगा।’

सुरसुंदरी को अमरकुमार की बात सही लगी। वह ख्रामोश रही। उसे एक बात समझ में नहीं आ रही थी ‘पिताजी क्यों हम दोनों की परीक्षा राजसभा में करने का इरादा रखते हैं? मेरी परीक्षा तो ठीक, पर अमरकुमार की परीक्षा लेने का क्या मतलब? इसका क्या कारण?’

भोजन करके वह अपने शयनखंड में पहुँच गयी।

सुरसुंदरी के दिल में अमरकुमार के प्रति प्रेम दिन-ब-दिन बढ़ रहा था। गहरा हुआ जा रहा था। अमरकुमार के प्रति उसका खिंचाव बढ़ता ही जा रहा था। हालाँकि कभी भी दोनों में से किसी ने मर्यादा-रेखा का उलंघन नहीं किया था।

अमरकुमार के दिल में भी सुरसुंदरी बसी हुई थी। पर वह समझता था कि ‘सुरसुंदरी तो राजकुमारी है और मैं रहा श्रेष्ठीपुत्र! हम दोनों की शादी संभव ही नहीं है। सुरसुंदरी की शादी किसी राजकुमार से होगी।’

सुरसुंदरी के दिल में भी यही कल्पना थी - मैं अमर को कितना भी चाहूँ... पर मेरी शादी तो आखिर किसी राजकुमार से ही होगी। राजकुमारी भला एक श्रेष्ठीपुत्र से कैसे विवाह कर सकती है? ओह, भगवान! आज यदि मैं किसी श्रेष्ठी की कन्या होती तो मेरा सपना साकार बन पाता... हाय! पर आखिरी निर्णायक मेरे अपने पूर्वजन्म के उपार्जित अशुभ-शुभ कर्म ही होंगे न!’

विचारों में खोयी-खोयी सुरसुंदरी न जाने कब नींद के पंख लगाकर सपनों की दुनिया में पहुँच गयी।



७. पहेलियाँ

अंगदेश की राजधानी थी चंपानगरी।

चंपानगरी सुंदर थी और समृद्ध भी।

राजा रिपुमर्दन ने चंपा को सजाया-सँवारा था। चंपा की प्रजा में शिक्षण एवं संस्कार सींचे थे। राजा स्वयं आर्हत्-धर्म का उपासक था। फिर भी अन्य धर्मों के प्रति वह सहिष्णु था। राजा में न्यायनिष्ठा थी, प्रजा भी राजा के प्रति राजा को वत्सलता थी तो प्रजा के प्रति वफादार थी।

आज राजा रिपुमर्दन की राजसभा नागरिकों से खचाखच भरी हुई थी। चूँकि आज राजकुमारी सुरसुंदरी एवं श्रेष्ठीपुत्र अमरकुमार के बुद्धि-कौशल की परीक्षा होनेवाली थी।

राजसिंहासन पर महाराजा रिपुमर्दन विराजमान थे। उनके समीप के आसन पर श्रेष्ठीवर्य धनावह सुंदर एवं मूल्यवान अलंकार पहने हुए बैठे थे। महाराजा की दूसरी ओर पंडित श्री सुबुद्धि बिराजमान थे।

सुरसुंदरी ने श्रेष्ठ वस्त्रों को परिधान किया था। गले में कीमती रत्नों का हार, कानों में कुंडल, दोनो हाथों में मोती जड़े कंगन और पैरों में नूपुर धारण किये हुए थी। आँखें में काजल था और होंठ तांबूल की रक्तिमा से युक्त थे। हज़ारों की आँखें उसकी ओर बंधी हुई थी।

अमरकुमार ने भी अपने वैभव के अनुरूप वस्त्रालंकर धारण किये थे। उसका शरीर स्वस्थ-पुष्ट था। उसकी कांति देदीप्यमान थी। उसकी आँखों में चमक थी। उसके ललाट पर तेजस्विता झलक रही थी।

राजसभा का प्रारंभ माँ सरस्वती की मंगल प्रार्थना से हुआ।

महाराजा रिपुमर्दन ने राजसभा को संबोधित करते हुए कहा :

‘प्यारे सभासदों एवं नगरजनों! आज का यह अवसर अपने सब के लिए खुशी का प्रसंग है। आज कुमारी सुरसुंदरी के बुद्धि-कौशल्य की और श्रेष्ठी श्री धनावह पुत्र अमरकुमार के बुद्धि-वैभव की परीक्षा होगी। इन दोनों ने महापंडित श्री सुबुद्धि की पाठशाला में अध्ययन किया है। विविध कलाओं में दोनों पारंगत हुए हैं। अनेक विषयों का श्रेष्ठ अध्ययन इन्होंने किया है। आर्हत्-धर्म के सिद्धांतों की भी उच्च शिक्षा प्राप्त की है।

पहेलियाँ

४२

आज यहाँ, सब से पहले अमरकुमार कोई बौद्धिक समस्या प्रस्तुत करेगा और राजकुमारी उस समस्या को अपनी बुद्धि की कुशलता से सुलझायेगी। अमरकुमार तीन समस्याएँ रखेगा सुरसुंदरी के आगे। सुरसुंदरी उसका जवाब देगी। इसके बाद कुमारी तीन समस्याएँ रखेगी अमरकुमार के समक्ष और अमरकुमार को उसका जवाब देना होगा। आखिर में मैं एक-एक समस्या अमरकुमार और सुंदरी दोनों से पूछूँगा। उसका जवाब अमरकुमार और सुरसुंदरी देंगे। इस ढंग से आज का कार्यक्रम होगा।'

राजसभा में हर्षध्वनि हुई। सभी ने प्रसन्न मन से राजा के प्रस्ताव को स्वीकार किया।

अमरकुमार ने खड़े होकर सर्वप्रथम महाराजा को प्रणाम किया। बाद में पंडितजी के चरणों की वंदना की और बाद में पिता का आशीर्वाद ग्रहण किया। अमरकुमार ने अपनी पहेली - समस्या पेश की।

'तीन अक्षर का एक शब्द है। उस शब्द का यदि पहला अक्षर निकाल दें, तो बाकी दो अक्षरों से जो शब्द बनता है उसे किसी भी व्यक्ति को नहीं करना चाहिए। तीन अक्षर के उस शब्द में से दूसरा अक्षर निकाल दें, तो जो शब्द बनेगा वह शब्द किसी को बोलना नहीं चाहिए। तीन अक्षर में से अंतिम अक्षर निकाल दें, तो बचे हुए अक्षर का अर्थ होगा लक्ष्मीपति! तीन अक्षर का यह संपूर्ण शब्द, तुम्हारी आँखों की उपमा देने योग्य है।'

सुरसुंदरी एकाग्र मन से समस्या सुन रही थी। वह खड़ी हुई। महाराजा और पंडितजी के चरणों में प्रणाम किये और जवाब दिया :

'तीन अक्षर का वह शब्द है **'हरिण'**।'

'ह' को काट दें तो **'रिण'** बचेगा। रिण का अर्थ है कर्जा। यह किसी के भी नहीं करना चाहिए। 'रि' को यदि निकाल दें तो 'हण' रहेगा यह शब्द हिंसा की आज्ञा करता है। अतः किसी भी को नहीं बोलना चाहिए। 'ण' के बिना जो शब्द बनेगा वह होगा 'हरि' यानि कृष्ण, वे लक्ष्मीपति हैं हीं! वैसे ही युवती स्त्रियों के नेत्रों को हरिण की उपमा मृगनयनी, हरिणाक्षी के रूप में दी जाती है।

सभाजनों ने प्रसन्न होते हुए तालियाँ बजा-बजा कर सुंदरी को बधाई दी। अमरकुमार ने दूसरी पहेली पूछी :

तीन अक्षर के शब्द में से पहला अक्षर निकालने पर बाकी बचा शब्द सफेद पृथ्वीकाय का परिचायक है। दूसरे अक्षर से रहित जो शब्द बनेगा वह किसी

पहेलियाँ

४३

पक्षिणी का सूचक है। तीसरा अक्षर अलग करने पर जो शब्द बनेगा उसे सभी चाहते हैं।

सुरसुंदरी ने तुरंत उत्तर दिया:

वह शब्द है 'सुखड़ी'! प्रथम अक्षर निकालने से 'खड़ी' शब्द बनेगा जो कि स्फेद पृथ्वीकाय है। दूसरा अक्षर निकालने पर 'सूड़ी' शब्द बनेगा जो कि एक पक्षिणी (मैना) है। तीसरा अक्षर छोड़ दें तो होगा 'सुख' जिसे सभी चाहते हैं।'

सभा आनंद से झूम उठी।

अमरकुमार ने तीसरी समस्या रखी।

'चार अक्षर का एक ऐसा शब्द है जिसको जपने से पाप नष्ट हो जाते हैं और वह जिनशासन का सार है। उन चार अक्षरों में से यदि पहले अक्षर को निकाल दें तो जो शब्द बनेगा वह पेट के शल्य को सूचित करता है। दूसरा अक्षर छोड़ देने से जो शब्द बनता है वह बोलने जैसा नहीं है। तीसरा अक्षर निकालकर यदि पढ़े तो उस से युक्त होकर रहना किसी के लिए अच्छा नहीं है। चौथा अक्षर छोड़ देने से जो शब्द बनता है उसके जैसी आचार्य भगवंत की वाणी होगी। कहो, वह क्या है?'

सुरसुंदरी ने अविलंब जवाब देते हुए कहा :

'वह चार अक्षर का शब्द है, **नवकार!**

न- अक्षर शब्द बनेगा '**वकार**' यानी विकार यह पेट में उठने वाला दर्द होता है। वह शल्य है। व को निकालने से शब्द बनेगा **नकार** - यानि इन्कार, जो किसी को भी अच्छा काम करते हुए नहीं कहना चाहिए। तीसरा अक्षर निकालने से बने हुए शब्द नवर यानी निठल्ले बैठे रहना, किसी के भी लिए अच्छा नहीं है। '**र**' के बगैर शब्द बनेगा '**नवका**' यानि नौका। आचार्यदेव की वाणी संसार-सागर में डुबते हुए जीवात्माओं को तिराने के लिए नौका-जहाज समान होती है। यह नवकार जिनशासन का सार तो है ही।'

तीनों समस्यायों के बिल्कुल सही जवाब सुरसुंदरी ने दिये। राजा-रानी और सभी सभाजनों ने सुरसुंदरी को लाख-लाख धन्यवाद दिये।

अब सुरसुंदरी के पूछने की बारी थी।

'तीन अक्षर का एक शब्द है। पहला अक्षर छोड़ देने से जो शब्द बनता है - उसे दिल में से निकालकर कर देह को पवित्र बनाना चाहिए। दूसरा अक्षर

पहेलियाँ

४४

निकालने से बननेवाला शब्द बल-ताकत से भी ज्यादा है और सभी का दिल जीता जा सकता है। तीसरा अक्षर दूर करने से जो शब्द बनेगा वह अपना-अपना हो तो सब को प्यारा लगता है। और, इन अक्षर से बनने वाला पूरा शब्द एक फूल का नाम है, और तुम्हारे वदन की उपमा के लायक है।

अमरकुमार ने तुरंत जवाब दिया :

‘तीन अक्षर का वह शब्द है : **कमल**।’

क-जाने से मल शब्द बनेगा, मल यानी **मल**। उसे दिल में से दूर करने से मन स्वच्छ बनता है और शरीर भी निर्मल होता है। म-जाने से ‘**कल**’ शब्द बनता है। कल यानी कला। बल से न जीते जानेवाले लोगों को कल-कला से जीते जा सकते हैं, इसलिए यह बल से बढ़कर है। ल-जाने से ‘**कम**’ शब्द बनता है। उसका अर्थ है काम। काम तो सब को अपना-अपना ही अच्छा लगता है न! वह है, कमल का फूल जो कि चेहरे की उपमा के लिए चुनते हैं-यह तो सभी जानते ही हैं।

राजसभा में आनंद के स्वर गूँजे।

सुरसुंदरी ने दूसरी समस्या पेश की :

‘तीन अक्षर का एक शब्द है। पहला अक्षर जाने से जो शब्द बनेगा उसका अर्थ होगा ‘खड़ी’ रही हुई।’ दूसरा अक्षर निकालने से जो शब्द होगा उसका मतलब होगा विधवा। तीसरा अक्षर दूर करने से जो शब्द बनेगा वह चीज अनाज में डालने से अनाज का रक्षण होता है।

अमरकुमार ने जवाब दिया :

‘वह तीन अक्षर का शब्द है ‘**राखड़ी**’।’

रा जाने से **खड़ी** बचेगा। जिसका अर्थ होगा खड़ी हुई। ‘**ख**’ निकालने से ‘**राड़ी**’ शब्द बनेगा यानि विधवा (गुजराती भाषा में राड़ीउराँड़ेली का अर्थ होता है विधवा)। राख अनाज में डालने से अनाज की सुरक्षा होती है।

लोग तालियाँ बजाने लगे।

सुरसुंदरी ने तीसरी पहेली पूछी :

‘तीन अक्षर का एक शब्द है। उसका पहला अक्षर जाने से जो शब्द बनेगा उसका प्रयोग विवाह-शादी के समय सबसे पहले किया जाता है। दूसरा अक्षर जाने से जो शब्द बनेगा वह यदि घर के आँगन में हो तो घी-दूध की चिंता नहीं रहती है। तीसरा अक्षर दूर करने से जो शब्द बनेगा वह करने से दुर्गति

में जाना पड़ता है और पूरे शब्द के अर्थ की वस्तु तुम्हारे चरणों में देखी जा सकती है।’

कुमार ने पल भर की देरी किये बगैर कहा :

‘वह तीन अक्षर का शब्द है ‘पावड़ी’।

पा-जाने से ‘वड़ी’ शब्द बनता है, जिसका प्रयोग शादी के समय होता है। व-निकाल दें तो ‘पाड़ी’ बनेगा यदि घर में ‘पाड़ी’ हो तो दूध-घी की सुविधा रहती है। डी-जाने से ‘पाव’ शब्द बनता है, उसका अर्थ है पाप। पाप करने से दुर्गति मिलती है, और पावड़ी तो पैरों में पहनी जाती है-यह तो सभी जानते ही हैं।

सभागृह आनंद से नाच उठा। लोगों ने अमरकुमार का हार्दिक अभिनंदन किया। राजा ने भी दोनों को धन्यवाद दिया और कहा :

‘अब मैं सवाल पूछता हूँ। पहले अमरकुमार को जवाब देना होगा।

‘सरोवर का सार क्या? दानव-वंश का विख्यात राजा कौन? सदा सौभाग्यवती नारी कौन-सी? और मारवाड़ के आदमी किस वेशभूषा से पहचाने जाते हैं?’

अमरकुमार ने पलभर सोचकर कहा ; ‘महाराजा, उसका प्रत्युत्तर है : ‘कंबलिवेशा!’

* ‘क’ का अर्थ है पानी। और पानी ही सरोवर का सार है।

* ‘बलि’ नामक दानव-वंश का विख्यात राजा हो गया है।

* ‘वेशा’ यानी ‘वेश्या’ वही सदा सौभाग्यवती नारी है।

* मारवाड़ के लोग कंबली से पहचाने जाते हैं। इस लिए उन्हें ‘कंबलिवेशा’ कहा जाता है।

राजा ने कहा : बिलकुल सत्य है तुम्हारा जवाब!

राजसभा में ‘धन्य’ ‘धन्य’ की आवाजें गूँजी। राजा ने सुरसुंदरी से सवाल पूछा :

‘काव्य का सच्चा रास कौन-सा होना चाहिए? चक्रवाक को दुःख कौन देता है? असती एवं वेश्या को कौन पुरुष प्रिय होता है? इन सवालों का जवाब एक ही शब्द में देना।’

सुरसुंदरी ने कहा : ‘अत्यमंत’

* अत्यमंत यानि अर्थयुक्त। जो काव्य अर्थ बिना का हो, वह काव्य नहीं है। यानी काव्य का रस उसका अर्थ है।

* **अत्यमंत** का अर्थ 'डूबता हुआ' 'अस्त होता हुआ' भी होता है। अस्त होता हुआ सूरज चक्रवाक के लिए दुःखद होता है। चूँकि सूर्य अस्त होने पर चक्रवाक-चक्रवाकी का वियोग हो जाता है।

* '**अत्यमंत**' यानी अर्थवान्-धनवान्! धनवान् पुरुष ही असती एवं वेश्या को पसंद होता है।'

राजसभा में आनंद की लहर उठी।

महाराजा ने अमरकुमार को कीमती रत्नों से जड़ा हुआ हार भेंट किया। सुरसुंदरी को रत्नजड़ित कंगन दिये।

पंडित सुबुद्धि को भी कीमती वस्त्रालंकारों से सन्मानित किया। श्रेष्ठी धनावह ने खड़े होकर सुरसुंदरी के मस्तक पर हीरे-माणिक से खचित मुकुट रखा। अमरकुमार को रत्नजड़ित खड़ग भेंट किया। पंडितजी को सोने के सिक्कों से भरी हुई थैली अर्पित की।

महाराजा ने गद्गद् स्वर से निवेदन किया।

'आज मेरा मन संतुष्ट हुआ है। अमरकुमार और राजकुमारी का बुद्धि-वैभव अद्भुत है। उनकी बुद्धि और उनका ज्ञान उनकी जीवनयात्रा में उन्हें उपयोगी सिद्ध होगा। धर्म-पुरुषार्थ में सहायक सिद्ध होगा। परमार्थ और पर उपकार के कार्यों में उपयोगी होगा। मैं इन दोनों पर प्रसन्न हुआ हूँ। यह सारा यश मिलता है पंडित श्री सुबुद्धि को। उन्होंने पूरी लगन और निष्ठा से छात्र-छात्राओं को अत्यंत सुन्दर अध्ययन करवाया है। मैं उन्हें राजसभा में हमेशा का सम्मान का पद देता हूँ और 'राजरत्न' की पदवी प्रदान करता हूँ।

सभा का विसर्जन हुआ।

सभी सदस्य और नगर-जन, अमरकुमार एवं सुरसुंदरी की प्रशंसा करते-करते बिखरने लगे।

श्रेष्ठी धनावह अमरकुमार के साथ रथ में बैठकर अपनी हवेली में पहुँचे। महाराजा राज-परिवार के साथ सुरसुंदरी को लेकर रथारूढ़ बनकर राजमहल में पहुँचे।

राजा के मन में अब सुरसुंदरी के भावी जीवन के विचार गतिशील हो रहे थे। निकट भविष्य में ही, सुरसुंदरी के हाथ पीले करने का उन्होंने निर्णय किया।



८. मन की मुराद

महाराजा रिपुमर्दन का शयन-कक्ष रत्नदीपकों से झिलमिला रहा था।

शयनगृह सुंदर था... सुशोभित था।

रात का पहला प्रहर चल रहा था।

महाराजा रिपुमर्दन सोने के, रत्नजड़ित पलंग पर लेटे हुए थे। महारानी रतिसुंदरी पास ही के भद्रासन पर बैठी हुई थी। दोनों के चेहरे पर चिंता की रेखाएँ अंकित थी। लग रहा था कि हवा के साथ-साथ दीये की हिलती-डुलती लौ, राजा-रानी के चंचल चित्त की मानो चुगली कर रही है।

एक लाइली बेटी सुरसुंदरी के भावी सुख का विचार दोनों माता-पिता कर रहे थे। पुत्री पर दोनों को अगाध प्यार था। इसलिए पुत्री दुःखी न हो... इसकी चिंता सभी माता-पिता को होती ही है! रिपुमर्दन ने आस-पास के नगरों में - राज्यों में और दूर-दूर तक के प्रदेशों में अपने निपुण दूत भेजे थे, सुरसुंदरी के लिए सुयोग्य राजकुमार की तलाश के लिए। दूत राजकुमारों के चित्र एवं उनके परिचय लेकर वापस लौटे थे। राजा के सामने उन्होंने वह सब प्रस्तुत किया था... पर राजा को एक भी राजकुमार पसंद नहीं आ रहा था, सुरसुंदरी के भावी पति के रूप में।

कोई राजकुमार खूबसूरत था, तो गुणवान नहीं था!

यदि कोई गुणवान था, तो सुंदरता से रहित था!

कोई रूप-गुण से युक्त था, पर पराक्रमी नहीं था!

यदि कोई पराक्रमी था, तो जिनधर्म का अनुयायी नहीं था!

कोई जिनधर्म में आस्थावान था, तो सौन्दर्य नहीं था उसमें!

यदि कोई धर्मात्मा था, तो कुल की दृष्टि से ऊँचा नहीं था!

राजा तो अपनी लाइली बेटी के लिए ऐसा दूल्हा खोजना चाहता था, जो कि रूप-गुण-पराक्रम-कुल और धर्म से युक्त हो। जो-जो विशेषताएँ सुरसुंदरी में थी, वे सब विशेषताएँ जिसमें हो, ऐसा राजकुमार उन्हें चाहिए था। चूँकि राजा मानता था कि पति और पत्नी में रूप-गुण की समानता के साथ-साथ धर्म, शील और स्वभाव की समानता भी होना ज़रूरी है, तब ही उनका घर-

मन की मुराद

४८

गृहस्थी सुखी हो सकती है। उनका धर्म-पुरुषार्थ निर्विघ्न होता है और जीवन-यात्रा निरापद बनी रहती है।

रिपुमर्दन और रानी रतिसुंदरी में ये सारी विशेषताएँ समान रूप से थी, इसलिए उनका गार्हस्थ्य जीवन निरापद था। उनका धर्म-पुरुषार्थ निर्विघ्न था और सुरसुंदरी के आंतर-बाह्य व्यक्तित्व का विकास भी वे उच्चस्तरीय कर सके थे।

आज ये दंपति चिंतामग्न बने हुए थे। अब वे सुरसुंदरी की शादी में विलंब नहीं करना चाहते थे। सुरसुंदरी की उम्र तो शादी के लिए योग्य थी ही... पर उसकी जवानी उसकी उम्र से भी ज्यादा मुखरित हो उठी थी। ऐसी युवावस्था में प्रविष्ट पुत्री पितृगृह में ही रहे, यह उचित नहीं है -यह बात राजा-रानी भली-भाँति जानते थे। पर श्वसुरगृह मिलना भी चाहिए न?

‘स्वामिन्, आप चाहते हैं, वैसी सभी योग्यतावाला वर न मिलता हो, फिर एकाध बात कम हो... पर अन्य योग्यताएँ हों, वैसा कुमार पसंद करें तो?’

‘तो सुंदरी दुःखी होगी! किस योग्यता की कमी को स्वीकार लेना, यही मेरी समझ में नहीं आता!, ‘पर आखिर सुख-दुःख का आधार तो जीवात्मा के अपने ही शुभाशुभ कर्म पर निर्भर है न?’

‘तुम्हारी बात सही है देवी, फिर भी बेटी को उसके प्रारब्ध के भरोसे छोड़ा तो नहीं जा सकता न? हमसे हो सके, उतने प्रयत्न तो करने ही चाहिए न?’

‘पर, ऐसा वर यदि मिलता ही न हो तो?’ रतिसुंदरी के स्वर में दर्द था।

‘मिलता है, ऐसा एक सुयोग्य वर है।’

‘कौन?’

‘पर वह राजकुमार नहीं है... राजवंशीय नहीं है।’

‘तो फिर?’

‘वह है श्रेष्ठीपुत्र... वणिक-वंशीय।’

रतिसुंदरी विचार में डूब गयी। उसने राजा के सामने देखा और पूछा :

‘आप जो चाहते हैं वे सारी योग्यताएँ उसमें है?’

‘हाँ... उसमें सभी योग्यताओं का सुभग समन्वय है... और मैंने तो उसे नज़रोनज़र देखा ही है, तुम भी उससे परिचित हो। और सुंदरी भी उसे भली-भाँति जानती है...’

‘कौन?’

‘अमरकुमार!’

‘श्रेष्ठी धनावह का पुत्र अमर?’

‘हाँ, सुरसुंदरी और अमर दोनों एक ही पाठशाला में साथ-साथ पढ़े हुए हैं... एक-दूसरे को पहचानते हैं और मैंने तो राजसभा में परीक्षा के दौरान इसी दृष्टिकोण से उसे परखने का प्रयत्न किया था कि उसमें मेरी पुत्री के लिए योग्य वर बनने की योग्यता है या नहीं, और मेरी निगाहें उस पर जड़ी हैं... बस, सवाल यही है कि वह राजकुमार नहीं है।’

‘मैं अमर की माँ धनवती को बहुत निकट से जानती हूँ... कई बार वह मुझसे मिलने आई है। सुशील एवं संस्कार-युक्त सन्नारी है। उसने अमर को संस्कार श्रेष्ठ ही दिये होंगे।’

‘इधर पाठशाला के पंडित सुबुद्धि भी अमर की बुद्धि की..., उसके ज्ञान की प्रशंसा करते हुए थकते नहीं हैं। आज राजसभा में भी वह रत्न की भाँति चमक रहा था। सेठ धनावह के पास ढेर सारी संपत्ति है...। नगर में लोकप्रिय, गणमान्य और धर्मनिष्ठ श्रेष्ठी के रूप में प्रसिद्ध हैं। उनका कुल भी ऊँचा है। उनकी सातों पीढ़ियों की कुलीनता प्रसिद्ध है। राज्य के साथ उनके संबंध भी धनिष्ठ हैं... इसलिए, सभी ढंग से सोचते हुए... मुझे उसमें कोई कमी दिखायी नहीं देती... अलबत्ता, वह राजकुमार नहीं है... राजपरिवार का नहीं है...।’

‘इससे क्या? यदि बेटी सुखी होती हो, तो...’

‘पर, रिश्तेदार राजा लोग हँसी उड़ायेंगे... क्या कोई राजकुमार नहीं मिला... जो एक सेठ के लड़के के साथ राजकुमारी की शादी की...। ऐसा-वैसा बोलेंगे...’

‘बोलने दें उन्हें... बोलनेवाले तो बोलेंगे ही, हमें तो सुरसुंदरी का हित पहले देखना है।’ रतिसुंदरी को अमरकुमार के साथ सुंदरी का विवाह हो, यह बात पसंद आ गयी।

‘यदि तुम्हें यह बात पसंद हो तो मैं संबंध तय कर लूँ।’

‘मुझे तो पसंद है... पर आपको...’

‘नहीं, बेटी के बारे में माँ का निर्णय ज्यादा अहमियत रखता है, वही मान्य होना चाहिए।’

‘मेरी तरफ से तो आपका निर्णय ही मेरा निर्णय है। मेरे से ज्यादा आप अच्छी तरह सोच सकते हैं... मुझमें इतनी बुद्धि है कहाँ?’

‘यदि बुद्धि न होती तो अपनी गृहस्थी इतनी सुखी नहीं होती, देवी! राजा-रानी ने निर्णय कर लिया।’

सुरसुंदरी तो निद्रा की गोद में सो चुकी थी।

अमरकुमार के लिए यह बात, कल्पना में आना भी सम्भव नहीं था।

श्रेष्ठी धनावह और सेठानी धनवती तो सपना भी नहीं देख सकते थे कि सुरसुंदरी उनके घर में पुत्रवधू बनकर आ सकती है।

जब पुण्यकर्म का उदय होता है, तब अकल्पित-सुख मनुष्य को आ मिलता है। जब पाप-कर्म उदय में आते हैं, तब अकल्पित-दुःख आता है मनुष्य के सिर पर।

दूसरे दिन सुबह जब श्रेष्ठी धनावह प्राभातिक कार्यों से निपट कर उपाश्रय में धर्म-प्रवचन सुनने के लिए जाने की तैयारी कर ही रहे थे कि हवेली के प्रांगण में रथ आकर खड़ा हो गया। रथ में से महामंत्री उतरे और हवेली की सोपान-पंक्तियाँ चढ़ने लगे।

श्रेष्ठी महामंत्री का स्वागत करने के लिए सामने दौड़े। महामंत्री का हाथ पकड़कर मंत्रणा-गृह में ले आये। महामंत्री का उचित स्वागत करके पूछा :

‘आज क्या बात है? इस झोंपड़ी को पावन किया? मेरे योग्य सेवाकार्य हो तो फ़रमाइए।’

श्रेष्ठी धनावह ने अपनी सहज मीठी ज़बान में बात की।

‘धनावह सेठ! मैं आपको लेने आया हूँ... महाराजा ने भेजा है मुझे। आपको लिवा लाने के लिए... आप कृपा करके रथ में बैठें।

धनावह सेठ सोच में डूबे। महामंत्री ने कहा : ‘चिंता मत करें... सेठ... यहाँ आने को निकला तब शकुन शुभ हुए हैं।’ सेठ का हाथ पकड़कर महामंत्री मंत्रणा-गृह के बाहर आये। सेठ ने अमरकुमार से कहा : ‘वत्स, मैं राजमहल में जा रहा हूँ... महाराजा ने मुझे याद फ़रमाया है।’

महामंत्री के साथ सेठ रथ में बैठ गये। रथ राजमहल की ओर दौड़ने लगा। दौड़ते हुए रथ को अमरकुमार देखता ही रहा।

उसे कहाँ पता था कि उस रथ के दौड़ने के साथ-साथ उसकी किस्मत भी दौड़ रही है। उसकी मनोकामना को साकार करने के लिए उसका नसीब सेठ को राजमहल की ओर लिये जा रहा है!

श्रेष्ठी धनावह को लेकर महामंत्री राजमहल में पहुँचे। रथ से उतरकर दोनों महानुभाव महाराजा के मंत्रणा-गृह में प्रविष्ट हुए।

‘पधारिए, श्रेष्ठिवर्य!’ महाराजा ने खुद खड़े होकर धनावह सेठ का स्वागत किया और आग्रह कर के अपने पास ही बिठाया। महामंत्री महाराजा की अनुमति लेकर वहाँ से चले गये।

‘आज्ञा करें राजन्, सेवक को क्यों याद किया।’

‘मुझे एक बात करनी है तुमसे... यदि तुम्हें अच्छी लगे तो मेरी बात को स्वीकार करना।’

‘महाराजा, आप तो हमारे मालिक हैं... सर्वस्व हैं... प्रजावत्सल हैं... आप जो भी कहेंगे वह मेरे हित के लिए ही होगा... इसकी मुझे श्रद्धा है... विश्वास है। आप आज्ञा प्रदान करें।’

‘मैं आज्ञा नहीं बल्कि एक याचना कर रहा हूँ।’

‘आप मुझे शर्मिदा मत करें। इस तुच्छ सेवक के पास आपको याचना करनी होती है क्या? आपको आज्ञा करनी है।’

‘धनावह सेठ, मैं अपनी बेटी सुरसुंदरी के लिए तुम्हारे सुपुत्र अमरकुमार की मँगनी करता हूँ... अमरकुमार को मैंने कल राजसभा में देखा है... परखा है, सुरसुंदरी के लिए वह सुयोग्य वर है... कहो तुम्हें मेरा प्रस्ताव कैसा लगा? मैंने तुम्हें इसीलिए यहाँ बुलवाया है... अभी।’

‘ओ मेरे मालिक! आपके मुँह में घी-शक्कर! आपके इस प्रस्ताव पर मुझे ज़रा भी सोचना नहीं है... आपका प्रस्ताव मैं सहर्ष स्वीकार कर लेता हूँ... सुरसुंदरी मेरी पुत्रवधू बनकर मेरी हवेली में आएगी। मेरी हवेली को उजागर करेगी। कल मैंने भी राजसभा में सुरसुंदरी को देखा है... रूप-गुण-कला और विनय, विवेक उसका श्रृंगार है।’

‘सेठ, तुमने मेरी बात स्वीकार की... मैं अत्यंत प्रसन्न हूँ। तुम यहाँ बैठो, मैं सुरसुंदरी की माँ को यह शुभ समाचार दे आऊँ। वह यह समाचार सुनकर हर्ष-विभोर हो उठेगी।’

महाराजा त्वरा से रतिसुंदरी के कक्ष में पहुँचे और प्रसन्न मन से... प्रसन्न मुख से बोले :

‘देवी, धनावह सेठ ने मेरी बात को सहर्ष स्वीकार कर लिया है! मैंने वचन दे दिया है। अमरकुमार अब अपना दामाद बनता है।’

‘बहुत उत्तम कार्य हो गया... स्वामिन्! सभी चिन्ताएँ दूर हो गयी... मुझे तो जैसे स्वर्ग का सुख मिला!’

‘तो मैं जा रहा हूँ... सेठ बैठे हैं... यह तो मैं तुम्हें शुभ समाचार सुनाने के इरादे से दौड़ आया था।’

‘पधारिए, आप... मैं भी सुरसुंदरी को समाचार सुना दूँ।’

कितनी खुशी, कितना हर्ष!

५२

महाराजा सेठ के पास आये।

‘सेठ! महारानी यह समाचार सुनकर अत्यन्त आनन्दित हो उठी है।’

‘महाराजा, तो फिर अब शादी में विलंब नहीं करनी चाहिए।’

‘सही बात है... राजपुरोहित को बुलाकर शादी का मुहूर्त निकलवा दें।’

‘जी हाँ, ‘शुभस्य शीघ्रम्!’ शुभ कार्य में विलंब नहीं करना चाहिए...।’

‘तो कल आप इसी समय यहाँ पधार जाना, मैं राजपुरोहित को बुलवा लूँगा।’

‘जैसी आपकी आज्ञा! अब मैं इजाज़त चाहूँगा...। घर पर जाकर अमर की

माता को यह समाचार दूँगा, तब वह उत्थंत हर्ष विभोर हो उठेगी।

‘हाँ, आप घर जाइए पर रथ में ही जाना... रथ बाहर ही खड़ा है... अब तो आप हमारे समधी हो गये!’

महाराजा ने हँसते-हँसते दरवाज़े तक जाकर सेठ को बिदा किया। सेठ रथ में बैठकर घर की ओर चले गये।

‘कितने सरल विनम्र और विवेकी सेठ हैं।’ राजा मन-ही-मन बोले और जाते हुए रथ को देखते रहे। रथ के ओझल होते ही महाराजा महल में आये। वे रतिसुंदरी के कक्ष में पहुँचे। वहाँ रतिसुंदरी एवं सुरसुंदरी दोनों बातें कर रही थी। सुरसुंदरी माँ के गले में बाँहे डालकर माँ से लिपटी हुई कुछ बोल रही थी... रतिसुंदरी उसकी पीठ पर हाथ फेरती हुई मुस्करा रही थी। राजा के आते ही दोनों खड़ी हो गयी।

‘क्यों बेटी... अपनी माँ को ही प्यार करोगी... हमें नहीं?’

‘ओह... बापू...’ और सुरसुंदरी महाराजा के कदमों में झुक गयी।

राजा ने उसको उठाकर अपने पास बिठाते हुए कहा...

‘सेठ को महल के दरवाज़े तक पहुँचाकर आया।’

‘समधी का आदर तो करना ही चाहिए न!’ रतिसुंदरी ने कहा।

‘हमें’ एक उत्तम और सच्चा स्नेही स्वजन परिवार मिला, देवी। धनावह श्रेष्ठी वास्तव में उत्तम पुरुष हैं।’

‘और अमरकुमार?’ रतिसुंदरी सुरसुंदरी के सामने देखकर हँस दी!’

सुरसुंदरी मुँह में दाँतों के बीच आंचल का छोर दबाये हुए वहाँ से भाग गयी।

राजा-रानी दोनों मुक्त मन से खिलखिला उठे।





जब इन्सान की कोई इंद्रधनुषी मधुर कल्पना साकार हो उठती है, तब वह खुशी से झूम उठता है। आनंद के पंख लगाये वह उड़ने लगता है, कल्पनाओं के अनंत आकाश में। यह धरती उसे स्वर्ग से ज्यादा खूबसूरत नज़र आती है।

रानी रतिसुंदरी ने जब पुत्री को बधाई दी कि 'अमरकुमार के साथ तेरा विवाह तय हो गया है', तब पल-दो-पल तो सुरसुंदरी अविश्वास से माँ की ओर निहारती रही... उसे लगा... 'शायद माँ मेरे मन की बात जानकर मेरा उपहास कर रही है।' पर जब रतिसुंदरी ने उसे विश्वास दिलाया, तब मानो सुरसुंदरी को विश्व का श्रेष्ठ सुख मिल गया। पर उसने अपनी खुशी माँ के समक्ष प्रकट न होने दी। ऐसी खुशी के फूल तो सहेलियों के बीच बिखरने के होते हैं न?

प्रिय के मिलन की कल्पना तो जैसे अफ्रीम के नशे-सी है...। दिल का दरिया उफन-उफनकर बरसों से जिस पर छलक रहा हो... हृदय के उस देव का सान्निध्य... साहचर्य प्राप्त होने की शहनाई जब मन के आँगन में गूँजने लगती है, तब मोह का नशा चढ़ेगा ही।

सुरसुंदरी को लगा-वह जमीन पर खड़ी नहीं रह सकेगी। वह दौड़ गयी अपने शयनकक्ष में। दरवाज़ा बंद किया और पलंग पर लोटने-पोटने लगी। 'अमर... अमर...' उसका मन पुकार उठा... उसका दिल पागल हो उठा।

न सोचा हुआ सुख उसके दरवाज़े पर दस्तक दे रहा था। अकल्प्य शुभ कर्मों ने उस पर मुहर लगा दी। वह अमर के साथ भावी सहजीवन की कल्पनाओं में डूब गयी।

उसका श्रद्धा से भरा दिल बोल उठा : 'सुंदरी तेरी परमात्म भक्ति का यह तो पहला पारितोषिक है। अभी तो तुझे इससे भी बढ़-चढ़कर सुख मिलनेवाले हैं।'

उसका आश्वस्त मन बतियाने लगा : 'सुंदरी, पुण्यकर्म का उदय जब होता है तब सुख के सागर में ज्वार आता है, पर वह उदय शाश्वत नहीं होता... क्षणिक होता है।'

वह पलंग पर से नीचे उतरी, उसने वस्त्र परिवर्तन किया। द्वार खोलकर

कितनी खुशी, कितना हर्ष!

५४

वह बाहर आयी। माँ के पास पहुँची। माँ! मुझे सोने के थाल में उत्तम फल रखकर दे..., अच्छी मिठाई रखकर दे..., मैं परमात्मा के मंदिर में जाऊँगी।'

'लौटते वक्त बेटी, गुरुदेव के उपाश्रय में भी जाना। गुरुदेव को वंदना कर आना।'

'और वहाँ से साध्वीजी सुव्रताजी के उपाश्रय में जाकर लौटूँगी।'

रतिसुंदरी ने थाल तैयार किया। दासी को साथ में जाने की आज्ञा की। सुरसुंदरी थाल लेकर दासी के साथ रथ में बैठकर जिनमंदिर पहुँची।

वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा के दर्शन करते-करते वह गद्गद् हो उठी। उसका रोयाँ- रोयाँ पुलकित हो उठा। उसकी पलकों पर हर्ष के आँसू मोती की भाँति दमकने लगे। उसने मधुर-स्वर से स्तवना की। परमात्मा के समक्ष फल और नैवेद्य समर्पित किये।

हृदय में श्रद्धा एवं भक्ति का अमृत भर के सुरसुंदरी गुरुदेव के उपाश्रय में पहुँची। उसने विधिपूर्वक वंदना की। गुरुदेव ने धर्मलाभ का आशीर्वाद दिया। सुरसुंदरी नतमस्तक होकर खड़ी रही। गुरुदेव बोले : 'मुझे समाचार मिल गये हैं, वत्से! जिनशासन को तुम दोनों ने पाया है... समझा है, परखा है, इस तरह जीना कि जिससे स्व-पर का कल्याण हो... और जिनशासन की अपूर्व प्रभावना हो। तू सुज्ञ है... ज्यादा तो तुझसे क्या कहूँ? संसार-दावानल की ज्वालाएँ तुझे जलायें नहीं... इसके लिए अनित्य, अशरण, एकत्व और अन्यत्व इन चारों भावनाओं से अनुप्राणित बनना। शील का कवच सदा पहने रखना। श्री नवकार मंत्र का गुंजन हमेशा दिल में रखना।'

सुरसुंदरी की आँखों से आँसू टपकने लगे, भाव-विभोर होकर उसने पुनः पंचांग प्रणिपात किया। उत्तरीय वस्त्र के छोर से आँखें पोछकर वह बोली :

'गुरुदेव, आपकी इस प्रेरणा को मैं अपने दिल के भीतर सुरक्षित रखूँगी। मेरी आपसे एक विनती है : परोक्ष रूप से भी आपके आशीर्वाद मुझे मिलते रहें... वैसी कृपा करें!'

सुरसुंदरी वहाँ से निकलकर साध्वीजी के उपाश्रय में पहुँची। साध्वीजी की वंदना करके उनके चरणों में अपना सर रख दिया। साध्वीजी ने उसके सिर पर अपना पवित्र हाथ रखा और आशीर्वाद दिये।

'सुंदरी, अभी कुछ देर पहले ही सेठानी धनवती यहाँ आयी थी। तेरी जैसी पुत्रवधू पाने का उनका आनंद असीम है...! पितृगृह को अपने गुण और

कितनी खुशी, कितना हर्ष!

५५

संस्कारों से उजागर करनेवाली तू, पतिगृह को भी उज्ज्वल बनाएगी। तेरा सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन एवं सम्यक्-चारित्र, तेरी आत्मा का कल्याण करनेवाले होंगे। श्री नमस्कार महामंत्र तेरी रक्षा करेगा और तेरे शील के प्रभाव से देवलोक के देव भी तेरा सान्निध्य स्वीकार करेंगे।

साध्वी के हृदय में वात्सल्य और करुणा का झरना बह रहा था। उस झरने में सुरसुंदरी नहाने लगी... उसका दिल अपूर्व शीतलता महसूस करने लगा।

साध्वीजी को पुनः-पुनः वंदना कर के वह उपाश्रय के बाहर आयी। रथ में बैठकर राजमहल पहुँची।

राजमहल में सैकड़ों लोगों की आवाजाही चालू हो चुकी थी। महामंत्री अलग-अलग आदमियों को तरह-तरह के कार्य सोंपें जा रहे थे। इकलौती राजकुमारी की शादी थी। मात्र राजमहल ही नहीं, अपितु सारी चंपानगरी को सजाने-सँवाने का आदेश दिया था, महाराजा रिपुमर्दन ने। कारागृह में से कैदी मुक्त कर दिये गये थे। दूर-दूर के राज्यों में से श्रेष्ठ कारीगरों एवं कलाकारों को बुलाये गये थे।

राजपुरोहित ने शादी का मुहूर्त एक महिने के बाद का दिया था। एक महिने में राजमहल का रूप-रंग बदल देना था। चंपानगरी के यौवन को सजाना था।

चंपानगरी की गली-गली और हर मुहल्ले में सुरसुंदरी की शादी की बातें होने लगी थी।

‘महाराजा ने सुरसुंदरी के लिए वर तो श्रेष्ठ खोजा।’

‘सुरसुंदरी के पुण्य भी तो ऐसे हैं! वरना, ऐसा दूल्हा मिलता कहाँ?’

‘तो क्या अमरकुमार के पुण्य ऐसे नहीं? अरे, उसे भी तो रूप-गुण संपन्न पत्नी जो मिल रही है।’

‘भाई, यह तो विधाता ने बराबर की जोड़ी रची है।’

‘बिलकुल ठीक, अपने को तो जलन होती है।’

हजारों लोक तरह-तरह की बातें करने लगे, सभी के होठों पर दोनों की प्रशंसा के फूल खिले जा रहे हैं।

चंपानगरी मानो हर्ष के सागर में डूब गयी जा!



कितनी खुशी, कितना हर्ष!

५६

श्रेष्ठी धनावह की गगनचुंबी हवेली भी आनंद के हिलकोरे से झूम रही थी। नगर के अनेक श्रेष्ठी धनावह सेठ को धन्यवाद देने के लिए आ-जा रहे थे।

अमरकुमार को उसके अनेक मित्रों ने घेर लिया। बचपन के सहपाठी मित्र बचपन की घटनाएँ याद कर-कर के हँसी-मजाक कर रहे थे। अमरकुमार के दिल में हर्ष का सागर उमड़ रहा था।

जिसकी चाह थी, पर जिसकी पूर्ति, आशा नहीं थी, ऐसा सुख उसे मिल चुका था, फिर क्यों न आनंद उमड़े? आशातीत वस्तु की सहज प्राप्ति, बिना प्रयत्न किये हुए प्राप्ति, मनुष्य को हर्ष से गद्गद् बना डालती है।

भोजन का समय हो चुका था। माता ने अमरकुमार को भोजन के लिए आवाज दी। पिता-पुत्र दोनों को सेठानी धनवती ने पास में बिठाकर भोजन करवाते हुए कहा :

‘अरिहंत परमात्मा की और गुरुजनों की अर्चित्य कृपा के बिना ऐसा नहीं हो सकता! राजकुमारी जैसी राजकुमारी अपने घर में बहू बनकर आए, यह क्या साधारण बात है?’

‘सही कहना है तुम्हारा! चंपानगरी के इतिहास में ऐसी घटना पहली है कि राजपरिवार की लड़की वणिक कुल में पुत्रवधू बनकर आए। महाराज ने जब मुझे महल में बुलाकर यह बात कही, तब पहले तो मैं हक्काबक्का-सा रह गया।’

‘सचमुच, सुरसुंदरी तो सुरसुंदरी है! सारी चंपानगरी में ऐसी कन्या देखने में नहीं आती।’

चंपा में ही नहीं, समूचे अपने राज्य में ऐसी कन्या मिलना कठिन है।’

सेठ-सेठानी उछलते दिल से बातें कर रहे हैं। अमरकुमार मौन है, भोजन कर रहा है, पर उसका मन तो सुरसुंदरी के विचारों में खोया-खोया पर पुलकित हो रहा है। उसने ज्यों-त्यों दो-चार कौर निगले-न-निगले और वह अपने शयनखंड में पहुँच गया। सुरसुंदरी की कल्पनामूर्ति उसके समक्ष साकार हुई। वह उससे बतियाने लगा। मन-ही-मन अपने नसीब को अभिनंदित करने लगा। भावी जीवन की सुखद कल्पनाओं की इंटें रख-रखकर सपनों के प्रासाद का निर्माण करने लगा।

श्रेष्ठी धनावह ने शादी के प्रसंग को पूरी धूमधाम से मनाने के लिए कई तरह की योजनाएँ बना दी। अपने एकलौते बेटे की शादी वह ज़ोर-शोर से और शानदार उत्सव के साथ करने के अभिलाषी थे, और ऐसी इच्छा एक प्यार भरे एवं उदार पिता के दिल में जागे, यह स्वाभाविक ही था। जिस पर

कितनी खुशी, कितना हर्ष!

५७

यह तो राजपरिवार मिला था, समधी के रूप में! खुद के पास भी अपार संपत्ति थी! फिर वह कसर रखे भी क्यों!

भव्य और विशाल हवेली में अमरकुमार व सुरसुंदरी के लिए शानदार और कलात्मक कक्ष तैयार किये गये। श्रेष्ठ तरह की कलाकृतियों से उन कमरों को सजाया गया। राजकुमारी को राजमहल से भी ज्यादा प्रिय लगे वैसी साज-सज्जा की गयी।

धनावह श्रेष्ठी ने सुरसुंदरी के लिए, राज्य के जानेमाने सुवर्णकरों को हवेली में निमंत्रित करके आभूषण तैयार करवाये। हीरे-मोती व पन्नों के कीमती नग उन आभूषणों में जड़वाये। अमरकुमार के लिए भी उसके मनपसंद अलंकार बनाये गये।

राजमहल और हवेली में निमंत्रित मेहमान आने लगे। शादी का दिन निकट आ गया। शादी की सारी रीति-रस्मे पूरी होने लगी।

शुभ दिन एवं शुभ मुहूर्त में आनंदोत्सव के साथ अमरकुमार और सुरसुंदरी की शादी हो गयी।

सुरसुंदरी को आँसू बरसती आँखों से राजा-रानी ने बिदा किया। रानी रतिसुंदरी ने सिसकती आवाज़ में कहा : 'बेटी, पति की छाया बनकर रहना।'

सुरसुंदरी फफक-फफककर रो दी। अमरकुमार के साथ रथ में वह श्वसुरगृह को बिदा हुई। अमरकुमार ने वस्त्रांचल के छोर से सुरसुंदरी के आँसू पोंछे। सुरसुंदरी ने अमरकुमार के सामने की ओर। अमर की आँखें भी गीली थीं। सुरसुंदरी का दुःख उसके आँसू, मानो अमर का दुःख... अमर के आँसू बन गये थे।

रथ हवेली के द्वार पर आकर खड़ा रहा। दंपति रथ में से नीचे उतरे। सेठानी धनवती ने दोनों का यथाविधि हवेली में प्रवेश करवाया। दोनों ने धनवती के चरणों में प्रणाम किया। धनवती ने हृदय का प्यार बरसाया।

अमर ने धनावह सेठ के चरणों में प्रणाम किया। सुंदरी ने दूर से ही प्रणाम किया। सेठ ने दोनों को अंतःकरण के आशीर्वादों से नहला दिया।



अमरकुमार एवं सुरसुंदरी!

बचपन के सहपाठी आज जीवनयात्रा के सहयात्री बन चुके थे। पति-पत्नी बन गये थे। सहजीवन जीनेवाले बन गये थे।

जीवन एक कल्पवृक्ष

५८

अमरकुमार में यदि पराक्रम का तेज था, तो सुरसुंदरी नम्रता की शीतलता थी। अमरकुमार यदि पौरुषत्व का पुंज था, तो सुरसुंदरी समर्पण की मूर्ति थी। अमरकुमार यदि मूसलाधार बारिश था, तो सुरसुंदरी शुभ फलदा धरित्री थी।

हवेली के दरवाज़े पर बजनेवाली शहनाई के सुर जब मद्धिम हुए... तो हवेली के उस भव्य कक्ष में भीतरी स्नेह की शहनाई के सुर छलकने लगे। वहाँ मात्र दैहिक आकर्षण नहीं था, पर एक दूजे के गुणों का खिंचाव था। वहाँ केवल व्यक्तित्व की वासना नहीं थी, वरन् अस्तित्व की उपासना थी। फिर भी संकोच था, झिझक थी, मौन था, खामोशी थी, आखिर अमर ने खामोशी के परदे को उठाते हुए कहा :

‘सुंदरी!’

सुंदरी ने अमर के सामने देखा।

‘तेरी श्रद्धा फलीभूत हुई न?’

‘नहीं, अपनी श्रद्धा फलवती बनी।’

‘इच्छा, तो थी, मुझे आशा न थी।’

‘कोई गतजन्म का पुण्य उदय में आ गया।’

‘एकदम प्रसन्न हो न?’

‘हाँ, पर...’

‘पर क्या? सुंदरी?’

‘यह प्रसन्नता यदि अखंड रहे तो,’

‘अखंड ही रहेगी तेरी प्रसन्नता। निश्चित रह।’

‘आपके सानिध्य में तो मैं निश्चित ही हूँ, स्वामिन्।’

‘तेरे पास तो श्रद्धा का बल है, ज्ञान का प्रकाश है, शील की रखवाली है, तेरे चरणों में तो देवलोक के देव भी झुकते हैं।’

‘ऐसा मत कहिए, मेरे मन में तो आप ही मेरे सर्वस्व हो।’

नवजीवन का यह पहला स्नेहालाप था। उस स्नेहालाप में भी श्रद्धा, ज्ञान और समर्पण का अमृत घुला हुआ था।





सुबह का बालसूरज सुरसुंदरी के चेहरे पर अठखेलियाँ कर रहा था। उसकी रक्तिम आभा में... सुंदरी का आंतर-रूप अमर को पहले-पहल नज़र आया।

सरगम के सप्त स्वरों को आंदोलित करती हुई शीत-हवा हवेली के झरोखें में से आ-आकर कमरे को भर रही थी। भैरवी के करुण फिर भी मधुर-स्वर में गूँथी हुई सुरसुंदरी की आवाज श्री नमस्कार महामंत्र को और ज्यादा मधुर बना रही थी। अमर उस मधुरता की अनुभूति में आकंठ डुबने लगा था।

सुरसुंदरी ने एक सौ आठ बार श्री नवकार मंत्र का गान किया। और इशान-कोण में नतमस्तक हो ललाट पर अंजलि रचाकर परमात्मा को नमस्कार किया - भाववंदना की!

बाद में समीप में ही बैठे हुए अमरकुमार को प्रणाम किया।

‘यह क्या सुंदरी?’

‘मेरे प्राणनाथ के चरणों में आत्म-समर्पण!’

‘समर्पण तो भीतर का भाव है न? उसकी बाह्य अभिव्यक्ति क्यों?’

‘प्रेम को पुष्ट करने के लिए!’

‘क्या बिना अभिव्यक्ति के प्रेम पुष्ट नहीं हो सकता?’

‘अभिव्यक्ति से एक तरह की तृप्ति मिलती है। हृदय की भावुकता जब झरना बनकर बहने लगती है, तब...’

‘दूसरे के दिल को भी हरा-भरा बना देती है... यही कहना है न?’

‘आप तो मेरे मन की बातें भी जानने लग गये।’

‘दिलों का नैकट्य हो जाने पर यह तो स्वाभाविक रूप से होने लगता है।’

‘ऐसा तादात्म्य यदि परमात्मा के साथ हो जाए तो?’

‘तब तो...’

‘इस संसार के साथ का तादात्म्य बना नहीं रहेगा...। अपना तादात्म्य नैकट्य भी नहीं रहेगा... यही कहना है न!’

कितनी खुशी, कितना हर्ष!

६०

‘ओह, तुने भी मेरे मन की बात जान ली न आखिर?’

‘पर... चाहे पर्याय का तादात्म्य टूट जाए, पर आत्मद्रव्य का तादात्म्य तो रहेगा ही न?’

‘यानी क्या, आज हमें ‘द्रव्य-पर्याय’ की चर्चा करनी है!’

‘नहीं... चर्चा नहीं करनी है... हृदय के भावों की अभिव्यक्ति करनी है। स्नेह एवं समर्पण के अतल समुद्र में गोते लगाने हैं।’

दो दिलों में भावनाओं का ज्वार उफन रहा था। मन की तरंगों के आगे लहरें क्या अर्थ रखती हैं? फिर भी यह तूफानी सागर की तरंगे नहीं थीं... उफनता सागर भी अंकुश में था। उसे देश और काल का ख्याल था। सुरसुंदरी ने कहा :

‘देखो... पूरब में सूरज कितना ऊपर निकल आया है... मुझे लगता है... दो घड़ी हो चूकी होगी, सूरज को उगे हुए। चलो, अब मैं माँ के पास पहुँच जाऊँ।

सुरसुंदरी खड़ी हो गयी...

अमरकुमार खड़ा हुआ।

दोनों को केवल चार प्रहर के लिए अलग होना था... मात्र चार प्रहर। फिर भी जैसे चार युगों की जुदाई हो, वैसी व्यथा अमरकुमार के चेहरे पर तैर आयी। सुरसुंदरी ने अपनी व्यथा अभिव्यक्त न होने दी।

आखिर वह स्त्री थी न! व्यथा... वेदना को भीतर में छुपाकर-दबाकर बाहर से खुशी-प्रसन्नता बनाये रखना उसे आता था। वह दंभ नहीं था... दिखावा नहीं था... वह ज़िंदगी जीने की कला थी। स्त्री को यह कला अवगत हो तो वह कभी भी अपने घर को श्मशान नहीं बनने देगी! चाहे उसके भीतर के श्मशान में भावनाओं की चित्ता सुलग रही हो, पर एक दूजे पर तो प्यार... करुणा... वात्सल्य का नीर ही सींचना होगा।

अमरकुमार के प्रति प्यार भरी निगाहें छिटकती हुई सुरसुंदरी धनवती के पास जा पहुँची। धनवती के चरणों की वंदना की... धनवती ने सुंदरी को अपनी गोद में खींच लिया।

सुरसुंदरी को धनवती में रतिसुंदरी की प्रतिकृति दिखायी दी। धनवती के दिल में लहराते स्नेहसागर में वह अपने आपको डुबोने लगी। उसकी आँखों

कितनी खुशी, कितना हर्ष!

६१

में वत्सलता के बादल मँडराने लगे। सुरसुंदरी टकटकी बाँधे धनवती को देखने लगी... उसके बाहरी सौंदर्य को देखती रही... उसके आंतरव्यक्तित्व को देखती रहीं... महसूसती रही... 'यह रूप... यह सौंदर्य... सब कुछ अमर में ज्यों का त्यों उतरा है।' वह मन ही मन सोचने लगी।

अपनी तरफ सुरसुंदरी को अपलक निहारते हुए देखकर धनवती शरमा गयी... सुरसुंदरी को अपने उत्संग से अलग करती हुई बोली :

'बेटी, दंत धावन कर ले फिर हम साथ दुग्धपान करेंगे।'

सुरसुंदरी ने दंत धावन किया और धनवती के साथ दुग्धपान किया। धनवती ने दुग्धपान करते हुए कहा : 'बेटी, तू रोजाना परमात्म-पूजन करती है न?'

'हाँ, माँ!' सुरसुंदरी के मुँह में से स्वाभाविक ही 'माँ' शब्द निकल गया... धनवती तो 'माँ' संबोधन सुनकर हर्ष से भर उठी।

'बेटी, तू मुझे हमेशा 'माँ', कहकर ही बुलाना...! मेरा अमर भी मुझे 'माँ' ही कहता है।' सुरसुंदरी तो इस स्नेहमूर्ति के समक्ष मौन ही रह गयी। उसे शब्द नहीं मिले... बोलने के लिए।

'हाँ, तो, मैं यह कह रही थी कि हम दोनों साथ ही परमात्म-पूजन के लिए चलेंगे। तुझे अच्छा लगेगा न!'

'बहुत अच्छा लगेगा माँ! मुझे तो तू ही अच्छी लग गयी है... एक पल भी दूर नहीं जाऊँ।'

'चल, हम स्नान वगैरह से निपट लें।'

सास एवं बहू!

जैसे माँ और बेटी! स्नेह का सेतु रच गया। अपने सुख की कोई परवाह नहीं। माँ बहू के सुख को बढ़ाने का सोच रही है... बहू माँ को ज्यादा से ज्यादा सुख देने का सोच रही है। दोनों का प्रेम वही दोनों का सुख।

पूजन, भोजन... स्नेही मिलन... इत्यादि में ही दिन पूरा हो गया। कब सूरज पूरब से पश्चिम की गोद में ढल गया, और क्षितिज में डूब गया... पता ही नहीं लगा।

दीयों की रोशनी से हवेली झिलमिला उठी। एक-एक कमरे में रत्नों के दीये जल उठे। धनवती ने सुंदरी को उसके शयनकक्ष में भेजा। जाती हुई

जीवन एक कल्पवृक्ष

६२

सुंदरी को देखकर धनवती मन-ही-मन बोल उठी, 'सचमुच, मेरा जीवन तो कल्पवृक्ष सा बन गया है... कितना सुख है? इससे ज्यादा सुख इस संसार में और हो भी क्या सकता है?'

बस, यही तो भूल है... गंभीर भूल है, सरल और भोलेभाले हृदय की। वह सुख को जीवन का पर्याय मान बैठता है... जहाँ उसे कोई तन-मन का एकाध मनचाहा सुख मिल जाता है.. और वह जीवन को कल्पवृक्ष मान बैठता है। पर जब कल्पवृक्ष का पर्याय बदल जाता है... कँटीला बबूल बन जाता है, तब वह भोला हृदय चीखता है, चिल्लाता है... करुण-आक्रंद करता है। मानव की यह कमजोरी आजकल की नहीं, अपितु इस संसार जितनी ही पुरानी है।

अर्धचंद्र की छिटकती चाँदनी ने हवेली के इर्द-गिर्द के वृक्षपर्णों पर फैल-फैल कर नृत्य करना प्रारंभ किया था। अमरकुमार सुरसुंदरी को हवेली के उस झरोखे में ले गया जहाँ से बरसती चाँदनी का अमृतपान किया जा सके! जहाँ बैठकर उपवन में से आ रही गीली-गीली मादक रेशमी हवा का स्पर्श पाया जा सके!

दोनों की उभरती-उछलती भावनाएँ खामोशी की दीवार से टकरा रही थी। दोनों की नज़रे चंद्र, वृक्ष और नगर के दीयों की ओर थी। अमर के होठों में शब्दों की कलियाँ खिल उठी...

'चारों तरफ जैसे सुख ही सुख बिखरा हुआ है। है न?'

सुखी व्यक्ति को चारों ओर सुख-ही-सुख नज़र आता है, जैसे पूर्ण व्यक्ति को समूचा विश्व पूर्ण नजर आता है!

'पर, सर्वत्र सुख है.., तब सुख नज़र आता है न सुखी को।'

'नहीं, सुखी को दुःख दिखता नहीं है, इसलिए सर्वत्र उसे सुख दिखायी देता है।'

'दुःख देखना ही क्यों? दुःख देखने से ही मानव दुःखी होता है।'

'औरों के दुःख होने का सुख भी अनुभव करने लायक है।'

'पर, अभी तो हम एक-दूजे का सुख पा लें।'

'इसलिए तो शादी रचायी थी!'

'सुखों को प्राप्त करने के लिए?'

'सुखों को भोगने के लिए, दुःखों को स्वीकार करने की तैयारी रखनी ही चाहिए।'

जीवन एक कल्पवृक्ष

६३

'क्यों?'

'चूँकि, सुख के बाद दुःख आता ही है!'

'आयेगा तब देखा जायेगा।'

'पहले से उसके स्वीकार की तैयारी कर रखी हो तो, जब दुःख आये तब दुःखी न हो जाँँ।'

'यह सब साध्वीजी से सीखा लगता है!'

'जी, हाँ, जिंदगी का तत्त्वज्ञान उन्होंने ही दिया है।'

'तत्त्वज्ञान तो बहुत सुंदर है।'

'जिन-वचन है ना? जिन-वचन यानी श्रेष्ठ-दर्शन।'

'जीवन को अमृतमय बनानेवाला दर्शन।'

रात का प्रथम प्रहर समाप्त हुआ जा रहा था। हवा में और ज्यादा नमी छाने लगी... झरोखे में से उठकर दंपति ने शयनकक्ष में प्रवेश किया... दीये मद्धिम हुए जा रहे थे।



अमरकुमार और सुरसुंदरी दोनों को करीब-करीब समान शिक्षा प्राप्त थी। व्यावहारिक एवं धार्मिक दोनों तरह की शिक्षा उन्हें प्राप्त थी। एक-से वातावरण में दोनों का लालन-पालन हुआ था। संस्कार भी दोनों के समान थे। दोनों के विचारों में साम्य था। दोनों के आदर्शों में कोई टकराव न था। दोनों की जीवन-पद्धति में सामंजस्य था।

इसलिए ही तो शादी के प्रारंभिक दिनों में भी उनका प्रेमालाप दार्शनिक सिद्धांतों की चर्चा से हरा भरा रहता था। उनकी ऊर्मियों ने, उनके आवेगों ने किनारे का कभी उल्लंघन नहीं किया था। स्थल एवं समय का भान उन्हें पूरी तरह था।

अध्ययन पूर्ण होने के पश्चात् अमरकुमार अपनी पेढ़ी पर आया-जाया करता था। हालाँकि, वह स्वयं कोई व्यापार नहीं करता था, पर मुनीमों के कार्यकलापों को देखता था। व्यापार की रीति-नीति को समझता था। तरह-तरह के देशों से आने-जानेवाले व्यापारियों से मिलता था। उनसे बातें करता था और उनके बारे में जानकारी प्राप्त कर लेता था।

जीवन एक कल्पवृक्ष

६४

उसे व्यापार करने की ज़रूरत तो थी ही नहीं। धनावह सेठ के पास अनगिनत संपत्ति थी। संतान में अकेला अमरकुमार ही था। सारी संपत्ति का वह वारिस था। फिर भी अमरकुमार का अंतःकरण पेढ़ी पर नहीं बैठता था। उसका मन तो देश-विदेश में घूमने का अभिलाषी था।

उसके दिल में सुरसुंदरी के प्रति अटूट प्यार था, फिर भी वह भोग-विलास में डूब नहीं गया था। अर्थ-पुरुषार्थ एवं स्व-पराक्रम के प्रति उसका आकर्षण पूरा था। यौवन सहज आवेग था, आकर्षण था, फिर भी व्यापारी के पुत्र को होना चाहिए, वैसा व्यापारिक दिमाग भी उसके पास था।

सुरसुंदरी के साथ उसकी गृहस्थी भी सुखपूर्ण है। आनंद से भरा है। एक साल बीता, दूसरा साल बीता।

एक दिन धनावह सेठ की पेढ़ी पर सिंहलद्वीप के शाह सौदागर आ पहुँचे। वे अपने साथ लाखों रुपयों का माल लेकर आये थे। धनावह सेठ ने उनका स्वागत किया। अतिथिगृह में उन्हें स्थान दिया। और मुँहमाँगी क्रीमत चुकाकर उनका माल खरीद लिया। व्यापारी खुश हो उठे। उन्होंने भी धनावह सेठ से लाखों रुपयों का दूसरा माल खरीदकर अपने जहाज भरे। अमरकुमार ने उन व्यापारियों से पूछा :

‘यहाँ से तुमने जो माल खरीदा-जो जहाज भरे, वह माल कहाँ ले जाओगे?’

‘सिंहलद्वीप में।’

‘वहाँ इस माल की क्रीमत अच्छी होगी, न?’

‘अरे छोटे सेठ, दस गुनी क्रीमत मिलेगी वहाँ तो।’

अमरकुमार तो क्रीमत सुनकर ठगा-ठगा सा रह गया। व्यापारियों ने अमरकुमार से कहा :

‘छोटे सेठ, पधारिए आप हमारे देश में। हमारा देश आप देखें तो सही। हमें भी आपकी खातिरदारी का मौका दिजीए।’

व्यापारी तो चले गये... पर अमरकुमार के मन में उनकी बातें बराबर जमी रही। दूर-सुदूर के देश-विदेशों को देखने एवं अपने बुद्धि-कौशल्य से विपुल संपत्ति कमाने का इरादा ज़ोर पकड़ता गया। बाप की कमाई! आखिर बाप की कमाई है! बाप की कमाई पर जीनेवाले बेटे पिता की इज्जत नहीं बढ़ाते! पिता

जीवन एक कल्पवृक्ष

६५

की कीर्ति को बढ़ाते हैं, अपनी कमाई-अपने आपकी कमाई पैदा करनेवाले पुत्र! दुनिया भी उन्हीं के गुण गाती है।

‘मैं खुद कमाई करूँगा... सिंहलद्विप जाऊँगा... पर...’ उसके मन में सुरसुंदरी आ गयी, माता धनवती का प्यार साकार हो उठा। ‘इन सबको छोड़कर मैं कैसे जा सकता हूँ : इनके बिना क्या मैं जी सकूँगा? मेरे बगैर माँ रह पायेगी? सुरसुंदरी? नहीं.., नहीं जाना विदेश। पिताजी भी इज़ाज़त नहीं देंगे किसी भी हालात में। माँ तो मेरे विदेशगमन की बात सुनकर ही बेहोश हो जाएगी। सुंदरी को कितना आघात लगेगा... नहीं, नहीं...।’

अमरकुमार का मन अस्वस्थ होने लगा। फिर भी वह अपनी बेचैनी को बाहर प्रकट नहीं होने दे रहा था। किसी को भी वह अपनी अस्वस्थता का संकेत भी नहीं पाने दिया।

एक ओर खुद की कमाई करने की तमन्ना... विदेश देखने की प्रबल अभिलाषा... दूसरी ओर माँ की अटूट ममता... पत्नी का असीम प्यार... इस कशमकश ने उसके चित्त को चंचल बना डाला, उद्विग्न बना डाला।

चतुर सुरसुंदरी भाँप गयी अमरकुमार की इस उद्विग्नता को। उसे लगा... ‘कुछ कारण है... अमरकुमार इन दिनों परेशान नज़र आ रहे हैं... उखड़े-उखड़े से लग रहे हैं।’



११. कशमकश

मानव का मन कितना अजीबो-गरीब है! कभी वह काम-पुरुषार्थ के पीछे पागल बन जाता है, तो कभी अर्थ-पुरुषार्थ के लिए उतावला हो जाता है। कभी ऐसा भी मोड़ आ जाता है कि अर्थ-पुरुषार्थ एवं काम-पुरुषार्थ दोनों को छोड़कर सर्वस्व त्याग करके मनुष्य धर्म-पुरुषार्थ में लीन-लवलीन हो जाता है।

अमरकुमार के दिल में अर्थ-पुरुषार्थ की कामना दिन-ब-दिन प्रबल हुई जा रही थी। हालाँकि, उसे वैषयिक सुख अच्छे लगते थे, सुरसुंदरी के प्रति उसके दिल में असीम प्यार था, राग था, आसक्ति थी, फिर भी उन सबसे बढ़कर उसकी 'आप कमाई' का पैसा पैदा करने की तमन्ना प्रबल हो उठी थी। कुछ दिन तक तो उसके भीतर ज़ोरों का वैचारिक संघर्ष भी चला।

'उत्तम पुरुष तो वह होता है कि जो अपने बलबूते पर खड़ा होकर संपत्ति प्राप्त करे! पिता की दौलत पर गुलछर्रे उड़ानेवाला पुत्र तो निकृष्ट गिना जाता है। मैं जाऊँगा विदेश... जरूर जाऊँगा। अपने बाहुबल से संपत्ति प्राप्त करूँगा।'

'परंतु, सुरसुंदरी के बगैर... उसे मेरे पर कितना प्यार है? विदेश में तो उसे साथ नहीं ले जाया जा सकता! मेरे पैरों में उसका बंधन हो जाए! मुझे उसका पूरा ध्यान भी रखना पड़ेगा! मुक्त-रूप से मैं व्यापार नहीं कर सकूँगा! नहीं, मैं उसे साथ तो नहीं ले जा सकता! उसके बगैर... 'अमर... स्वपुरुषार्थ से संपत्ति पानी है... विदेशों में घूमना है... सागर का सफ़र करना है तो पत्नी का प्यार भूलना होगा...। मन को ढीला बनाने से काम कैसे होगा? कठोर हो जा... यदि जाना ही है तो।'

'उसका त्याग करके यदि चला जाऊँगा तो उस पर क्या गुजरेगी? क्या इसमें उसके साथ धोखा नहीं होगा? उसने मुझ पर कितना भरोसा रखा है!'

'ऐसे विचारों के जाल में मत उलझ, अमर! तू कहाँ विदेश में ही रह जानेवाला है? कुछ बरसों में तो वापस लौट आयेगा... क्या एक-दो साल भी वह तेरी प्रतीक्षा नहीं कर सकती?'

'वह प्रतीक्षा तो करेगी... ज़रूर करेगी... पर यहाँ से चलने के बाद उसकी

कशमकश

६७

याद ने मुझे परेशान कर दिया तो? मेरा मन चंचल हो उठा तो? कहीं मैं बीच से ही वापस न लौट जाऊँ...?’

‘हँ, आँ... तेरे मन को पूरी तरह परख ले! प्रेमभरी पत्नी का विरह तू सह पाएगा! साथ ही साथ माँ का विचार कर ले, इधर वह तेरे विरह में और उधर तू माँ की याद में... व्याकुल तो नहीं हो जाएगा न?’

‘मन व्याकुल तो होगा... पर मैं मन पर काबू पा लूँगा! मैं मन को समझा लूँगा... वैसे तो पिताजी का भी कितना प्यार है मुझ पर! मैं उनसे जब विदेश जाने की बात करूँगा... उन्हें आघात भी लगेगा! पर मुझे उन्हें समझाना होगा!’

‘पर वे नहीं मानेंगे तो? तो क्या? मैं खाना-पीना छोड़ दूँगा... मैं अब चंपा में नहीं रह सकता! मेरा दिल ऊब गया है अब यहाँ से! मुझे सागर बुलावा दे रहा है...! सिंहलद्वीप मुझे पुकार रहा है!’

‘अमर, तू पूरी तरह से सोच लेना। बराबर दृढ़तापूर्वक से विचार कर लेना। तेरी कहीं हँसी न हो जनता में। उसका भी विचार कर लेना। और, जब तेरे विदेश जाने की बात राजा-रानी जानेंगे तब वे भी तुझे नहीं जाने देंगे। वे तुझे जरूर रोक लेंगे! कहीं तू अनुनय से, लाज से, शर्म से, भावकुता से तेरा संकल्प न बदल दे! ज़रा सोच ले, एक बार फिर गौर से!’

‘नहीं, बिल्कुल नहीं... मेरा निर्णय अंतिम रहेगा, मेरू जैसा अडिग रहेगा। अब मुझे कोई नहीं रोक सकता! मैं ज़रूर जाऊँगा! मैं नहीं रुक सकता।’

और वह विचारों के आवेग में पलंग पर से खड़ा हो गया। रजत के प्याले को ठोकर लगी। प्याला गिर गया... आवाज हुई तो सुरसुंदरी जग गयी...।

‘अरे, आप तो अभी जग रहे हैं? क्यों क्या हुआ? आप खड़े क्यों हुए?’ सुरसुंदरी एक ही सांस में खड़ी हो गयी पलंग पर से!

‘नहीं, यों ही खड़ा हुआ था, झरोखे में जाकर बरसती चाँदनी का आह्लाद लेने की इच्छा हो आयी।’

‘चलिए, मैं भी आती हूँ...। सुरसुंदरी भी अमरकुमार के साथ झरोखे में पहुँची। दोनों ने आकाश के सामने देखा।

‘आप कुछ परेशान से नज़र आ रहे हो...। क्या चिंता है? आपको अभी तक नींद क्यों नहीं आयी? रात का दूसरा प्रहर पूरा होने को है!’

कशमकश

६८

‘परेशानी नहीं है सुंदरी, पर मन में विचारों की आँधी उमड़ रही है।’

‘किसके विचार आ रहे हैं? क्या मुझे कहने जैसे नहीं हैं वे विचार?’

‘तेरे से छुपाने जैसा मेरे मन में है भी क्या? तुझे कहे बगैर तो चलने का भी नहीं...।’

‘तो फिर इतनी देरी क्यों?’

‘शायद तुझे दुःख होगा...।’

‘यदि आपके दिल में दुःख होगा तो मुझे भी दुःख होगा! आपके दिल में यदि दुःख नहीं होगा, तो मुझे भी किसी तरह का दुःख नहीं होगा।’

‘दिल में दुःख नहीं है सुरसुंदरी... पर चिंता तो ज़रूर है। हाँ, यदि तू मान जाए तो मेरी चिंता दूर हो सकती है। तूही उसे दूर कर सकती है!’

‘आपकी कौन-सी बात मैंने नहीं मानी?’

‘तो कह दूँ?’

‘कहिए ना!’

‘सुर... पिछले कई दिनों से विदेश-यात्रा करने के विचार आ-आ कर मेरे दिल-दिमाग को घेर लेते हैं!’

‘पर क्यों? विदेश-यात्रा की आवश्यकता क्या है?’

‘अपनी कमाई से संपत्ति प्राप्त करना है... अपने बुद्धि-कौशल्य से दौलत पाना है!’

‘संपत्ति की यहाँ क्या कमी है? इतनी ढेर सारी संपत्ति तो अपने पास है, फिर भी ज्यादा...!’

‘यह तो पिताजी की संपत्ति हैं, सुंदरी!’

‘इसके वारिस तो आप ही हैं ना?’

‘मैं बाप की कमाई पर जीना पसंद नहीं करता...। मेरा पराक्रम, मेरी होशियारी... मेरी कुशलता तो मेरे पुरुषार्थ से संपत्ति पैदा करने में है!’

‘तो क्या अपने ही देश में रहकर आप व्यापार नहीं कर सकते?’

‘कर तो सकता हूँ... पर विदेश... देश-विदेश घूमने की इच्छा भी तो प्रबल है ना! और फिर सिंहलद्वीप में तो व्यापार भी काफी अच्छा हो सकता है। ढेर सारी संपत्ति वहाँ पर थोड़ी-सी मेहनत से प्राप्त की जा सकती है।’

‘आपने पिताजी से बात की?’

‘नहीं, किसी को कुछ नहीं कहा है... इसलिए तो नींद हराम हो गयी है...आज पहले- पहल तुझसे ही बात की है...!’

‘अच्छा अब तो नींद आ जायेगी न? चलें... सो जाँँ!’

‘नहीं... मैं विदेश यात्रा पर जाऊँ, इसमें तेरी अनुमति है न?’

‘तू तो प्रसन्न होकर इजाज़त देगी न?’

‘यानी क्या आप मुझे यहीं छोड़कर जाने का इरादा रखते हो?’

‘हाँ!’

‘नहीं, यह नहीं हो सकता! मैं तो आपके साथ ही चलूँगी! जहाँ वृक्ष, वहाँ उसकी छाया! मैं तो आपकी छाया बनकर जी रही हूँ।’

‘विदेश यात्रा तो काफी मुश्किलों से भरी होती है। कई तरह की प्रतिकूलताएँ आती हैं यात्रा में तो! वहाँ तुझे बिल्कुल नहीं अच्छा लगेगा! और फिर मेरे सर पर तेरी चिंता...!’

‘मैं मेरी चिंता आपको नहीं करने दूँगी। आपकी सारी चिंता मैं करूँगी। आप मेरी तरफ से निश्चित रहिएगा।’

‘निश्चित रहा ही कैसे जा सकता है? तू साथ में हो फिर मेरा मन तेरे में ही डूबा रहे... व्यापार-धंधा करने का सूझे ही नहीं।’

‘आप बहाने मत बनाइए, मेरी एक बात सुनिए... अपने को पंडितजी ने अध्ययन के दौरान नीतिशास्त्र की ढेर सारी बातें सिखायी थी, याद है ना? उन्होंने एक बार कहा था कि आदमी को छह बातों को सूना नहीं छोड़ना चाहिए।’

‘पत्नी को अकेला नहीं रखना, राज्य को सूना नहीं रखना, राजसिंहासन को सूना नहीं छोड़ना भोजन को सूना नहीं रखना और संपत्ति को सूना नहीं छोड़ना चाहिए। याद आ रही है गुरुजी की बातें?’

‘पर, मैं तुझे अकेली छोड़कर जाने की तो बात ही कहाँ कर रहा हूँ? यहाँ तू अकेली कहाँ हो? माँ है, पिताजी हैं, यहाँ मन न लगे तो राजमहल कहाँ दूर है? वहाँ पितृगृह में जाकर रह सकती है कुछ समय।’

‘ओह, मेरे स्वामी पति के बिना नारी सूनी ही होती है! यौवन के दिनों में इस तरह पत्नी का त्याग करके नहीं जाते! मैं तो आपके साथ ही आऊँगी।’

‘तुझे तकलीफ़ होगी।’

‘मैं कष्ट को कष्ट मानूँगी ही नहीं न? आपकी मात्र पत्नी ही नहीं... आपकी दासी भी बनूँगी... आपकी मित्र भी बनूँगी और समय आने पर आपकी माँ भी बनूँगी! पत्नी के सभी छह गुण निभाऊँगी!’

अमरकुमार हँस पड़ा। आकाश में चाँद भी हँस रहा था।

‘तब तो मुझे, तुझे साथ में ले जाना पड़ेगा क्यों?’

‘पर, पहले यह तो कहो... आपको खुद को माताजी अनुमति देंगी?’

‘मैं ले लूँगा।’

‘पिताजी?’

‘मैं उन्हे भी मना लूँगा।’

‘मुझे तो मना नहीं पाए।’

‘चूँकि मैं तुझे नाराज नहीं कर सकता न?’

‘पर मेरे आने से आपको तकलीफ़ तो नहीं होगी न?’

‘नहीं... बिलकुल नहीं...।’

‘तो अब सो जाए।’

दोनों निद्राधीन हुए। अमरकुमार की विचारमाला शांत हो चुकी थी। सुरसुंदरी की बात सही प्रतीत हो रही थी।

सुबह उठते ही उसने संकल्प किया, ‘आज पहले पिताजी से बात करूँगा। बाद में माँ से बात करूँगा।’

सुबह वह धनावह सेठ से बात न कर पाया। ‘दुपहर को भोजन के समय बात रखूँगा तो माँ भी अपने आप बात जान लेगी।’ पर वह भोजन के समय भी बात नहीं कर पाया। पिताजी एवं माता के चेहरे पर जो अपार खुशी थी। उसे देखकर वह हिंमत् न कर सका उन प्रसन्नता के फूलों को अपनी बात के वज्राघाता से कुचलने की। ‘मेरी बात सुनकर माँ उदास हो जाएगी। पिता व्यथित हो उठेंगे तो?’ उसने सोचा ‘शाम को पिताजी के कक्ष में जाकर बात कर लूँगा।’

शाम हो गयी। भोजन वगैरह से निवृत्त होकर वह पिताजी के कक्ष में पहुँचा। पिता को प्रणाम करके उनके पैरों के पास ज़मीन पर बैठ गया। बात का प्रारंभ सेठ ने स्वयं ही कर दिया।

‘अमर, आजकल तू व्यापार में अच्छी दिलचस्पी दिखा रहा है और तू पेढ़ी के जो कार्य सम्हालने लगा है... इससे मेरे दिल को काफ़ी तसल्ली मिली है, बेटा।’

अमरकुमार को अपनी मन की बात करने का अवसर मिल गया... उसने मौका साध लिया।

‘पिताजी, मैंने तो सिंहलद्वीप के व्यापारियों के साथ व्यापार को लेकर कई तरह की महत्वपूर्ण बातें भी की थी।’

‘मैं जनाता हूँ... वे व्यापारी तेरी बुद्धि की प्रशंसा भी कर रहे थे मेरे समक्ष।’

‘पिताजी, पिछले कुछ दिनों से मन में एक बात उभर रही है... आप आज्ञा दें तो कहूँ।’

‘कह न! ज़रूर कह, बेटे!’

‘मेरी इच्छा सिंहलद्वीप वगैरह देश-विदेश में जाने की है!’

‘हैं? पर क्यों बेटा, तुझे क्यों वहाँ जाना पड़े?’

‘मैं अपने पुरुषार्थ से अपनी क्रिस्मत को आजमाना चाहता हूँ। मैं अपनी बुद्धि से पैसा कमाना चाहता हूँ।’

‘क्या बोल रहा है बेटे तू! यह सारी संपत्ति... यह सारा वैभव तेरा ही तो है। तुझे अपनी जिंदगी में कमाने की ज़रूरत ही क्या है? जो कुछ है, उसे ही संभालना ज़रूरी है।’

‘पिताजी, जो भी है... वह सब आपका उपार्जित किया हुआ है। उत्तम पुत्र तो पिता की कमाई पर नहीं जीते... मैं आपका पुत्र हूँ... आप मुझे उन्नत नहीं देखना चाहते क्या?’

‘तू गुणों से उन्नत ही है बेटा! तू ज्ञान और बुद्धि से भी कितना उन्नत है अमर!’

‘अब मुझे अपने पराक्रम से उत्कर्ष का मौका दें! पिताजी, मैंने तो अपने मन में तय कर ही लिया है, विदेशों में व्यापार के लिए जाऊँगा।’

सेठ की आँखें डबडबा गयीं। अमर ने अपनी निगाहें जमीन पर टिका दीं। सेठ भर्रायी आवाज में बोले : ‘बेटे, तेरे बगैर मैं जी नहीं सकता। तेरा विरह मैं नहीं सहन कर पाऊँगा। तुझे ज्यादा क्या कहूँ?’

माँ का दिल

७२

‘मैं समझता हूँ... पिताजी। आपका मुझ पर अपार स्नेह है। मैंने बहुत सोचा... आखिर... चरणों में गिरकर... आपको जैसे-तैसे मनाकर जाने का मैंने निर्णय किया है। आपके दिल को भारी दुःख होगा... पर आप मेरे इस अपराध को क्षमा कर दें।

धनावह सेठ सोच में डूब गये। पुत्र की अनुपस्थिति में यह हवेली कितनी सुनसान हो जाएगी, इसकी कल्पना ही उन्हें सिहरन से भर दे रही है!

‘अमर, तू वापस सोच... बेटे!’

‘आप इज़ाज़त नहीं देंगे तो नहीं जाऊँगा, पर अब मुझे इस हवेली में रहना अच्छा नहीं लगेगा। मुझे खाना-पीना नहीं भाएगा, मेरा दिल भारी-भारी रहेगा।’

सेठ को लगा... अमर का विदेश यात्रा का निर्णय पक्का है, तब उन्होंने दूसरी बात कही :

‘यदि तू अपनी माँ की अनुमति प्राप्त कर लेगा, तो मैं तुझे इज़ाज़त दे दूँगा... बस!’

‘मैं अपनी माँ की गोद में सिर रखकर उसे मना लूँगा, पिताजी! वह मुझे दुःखी नहीं करेगी। हाँ, मुझे उसे दुःखी करना ही पड़ेगा, पर कुछ बरसों का ही तो सवाल है... एक दो साल में तो वापस लौट आऊँगा।’

‘एक... दो साल... बेटे! पर मेरी पुत्रवधू मान जाएगी?’

‘उसने तो मेरे साथ आने की ज़िद कर रखी है... मेरी माँ उसे मना ले और वह यहाँ रुक जाए तो अच्छा!’

सेठ अमर की आँखों को खुली किताब की तरह पढ़ रहे थे...।





अमर की बात जानकर धनवती अत्यंत व्यथित हो उठी। सुरसुंदरी ने भी अमर ही के साथ परदेश जाने की ज़िद पकड़ी थी। इससे तो धनवती की वेदना दुगुनी हो चुकी थी। चूँकि उसने अमर पर तो हृदय का प्यार बरसाया ही था... सुरसुंदरी को भी उसने अपने स्नेह से सराबोर किया था।

सरल... और भोली सन्नारी थी धनवती। उसका मन कबूल नहीं कर पा रहा था... कि 'अमर को परदेश जाना चाहिए। ये करोड़ों की संपत्ति आखिर किसके लिए? मेरा एकलौता बेटा है अमर, फिर उसे क्यों धन कमाने के लिए दूर के प्रदेश में जाना चाहिए?'

रो-रोकर उसने आँखे सूजा दी थी। वह अपने शयनकक्ष में मानसिक व्यथा की आग में झुलस रही थी इतने में श्रेष्ठी घनावह ने शयनखंड में प्रवेश किया। धनवती चौंकती खड़ी हुई... मौन रहकर उसने सेठ का स्वागत किया। सेठ पलंग पर बैठे। उनके चेहरे पर गंभीरता थी... आँखों में पीड़ा की पर्त-दर-पर्त जमी हुई थी।

'मैंने अमर को काफ़ी समझाया... पर वह समझ नहीं रहा रहा है... मुझे लगता है अब यदि उसे रोकने की ज्यादा कोशिश करें तो वह दुःखी हो जाएगा।'

सेठ ने धनवती के सामने देखा... धनवती की आँखें गीली हो आयी थी। सेठ ने कहा :

'अब तुम दिल को मजबूत कर दो... भावनाओं को बस में करो, और कोई चारा नहीं है... अमर तो जाएगा ही... साथ ही पुत्रवधू भी जाएगी।'

'पर, मैं उन दोनों के बिना जी कैसे सकूँगी...? नहीं... मैं नहीं जाने दूँगी... नहीं।'

'मैं जनाता हूँ... तुम्हारा पुत्र-प्रेम गहरा है... पुत्रवधू पर भी तुम्हे असीम प्यार है, फिर भी कहता हूँ कि इस समय उस जिनवचन को बारबार याद करो : 'एगोऽहं नत्थिमे कोई, नामहमन्नस्स कस्सई।' मैं अकेला हूँ... मेरा कोई नहीं है, मैं किसी का नहीं हूँ...' इस परम सत्य वचन को बारबार याद करो। दीनता को छोड़ दो... मैंने भी इसी जिनवचन का सहारा लिया एवं कुछ शांति

माँ का दिल

७४

पा ली। तुम जानती हो इस दुःखमय संसार में जिनवचन ही सच्ची शरण दे सकता है...। तुमने देखा... अपने पास करोड़ों की संपत्ति है न? फिर भी यह संपत्ति इस वक्त अपने को चैन की साँस लेने दे सकती है? यह धन क्या सांत्वना दे सकता है? इतना वैभव होने पर भी अपने आपको हम कितना दुःखी महसूस कर रहे हैं? जिनवचन ही ऐसा एक सहारा है, जिसका सुभिरन करते ही मन के दुःख टल जाते हैं। मन के दुःख में भी, शारीरिक पीड़ा के वक्त भी जिनवचन ही शांति दे सकते हैं।'

सेठ के चेहरे पर कुछ आभा छा गयी थी। धनवती गहरे सोच में डूबने लगी थी।

'आपकी बात सही है, मेरा अनुराग, मेरी आसक्ति ही मुझे दुःखी बना रही है। अमर का इस में क्या दोष है? सुंदरी भी क्या कर सकती है? और आखिर सुंदरी तो अमर के ही साथ रहे, यह ज्यादा ठीक है।'

'अमर ने तो साथ चलने की उसे बिल्कुल मनाही की थी, पर पुत्रवधू ने ही हठ किया।'

'उसके हठ को मैं अच्छा समझती हूँ, पर प्रियजन का विरह मुझे दुःखी कर रहा है... स्नेह तो संयोग ही चाहता है न?'

'उस स्नेह को दूर करने का, कम करने का अमोघ उपाय है, जिनवचन को बारबार रटना... संबंधों की अनित्यता का विचार करना। संसार के भीतरी स्वरूप को बारबार सोचो।

ऐसा विचार मन हल्का कर देता है। मैंने तो अपने मन को तैयार भी कर दिया है, शुभ दिन में अमर को बिदा करने के लिए।'

'नहीं, आप इतनी जल्दबाजी न करें। मुझे अपने मन को स्वस्थ कर लेने दें... मेरे अनुरागी आसक्त मन को थोड़ा विरक्त हो जाने दें।'

जब तक तुम हँसकर अनुमति नहीं दोगी, तब तक तो मैं उसे अनुमति थोड़े ही दूँगा? पर तुम्हारा वह लाड़ला भी तुम्हारी इज़ाज़त के बगैर थोड़े ही जाएगा? इसका मुझे तो पूरा भरोसा है। उसे तुम्हारे प्रति अटूट श्रद्धा भी है, पर जवानी का जोश ही कुछ ऐसा होता है।'

मुझे दुःख हो... पसंद न हो... ऐसा एक भी कार्य आज तक नहीं किया है, यह मैं जानती हूँ। उसकी मातृभक्ति अद्भुत है। इसलिए तो उस पर मेरा प्यार इतना दृढ़ हो चुका है।'

माँ का दिल

७५

‘कुछ बरस का वियोग सहन करने के लिए मन को मजबूत बना लो। युवा पुत्र देश-विदेश में घूमे-फिरे... इसमें अपना भी गौरव बढ़ेगा ही। उसके मन की इच्छा भी पूरी होगी। उसे सुख मिलेगा। उसके सुख में अपना सुख मानो। समझो, वह सुखी तो हम भी सुखी हैं।’

सेठ धनावह ने धनवती के मन को शांत बनाने का प्रयत्न किया। काफ़ी शांति से और प्रेम से रोज़ाना धनवती के साथ तत्वज्ञान की बातें करने लगे। धनवती के साथ ज्यादा समय बिताने लगे। मन में तो ऐसा निर्णय भी कर लिया कि अब वे ज्यादा से ज्यादा समय धनवती के साथ गुज़ारेंगे। अमर के जाने के बाद स्वयं पेढ़ी पर आना- जाना कम कर देंगे। मुनीमों को अधिकांश कार्यभार सौंपकर स्वयं निवृत्त से हो जाएंगे।’

एक दिन ऐसा आ भी गया कि जिसकी धनावह सेठ प्रतीक्षा कर रहे थे। धनवती ने खूद ही कहा :

‘ज्योतिषिजी के पास अच्छा मुहूर्त निकलवाया?’

‘किस के लिए?’

‘अमर की विदेशयात्रा के लिए ही तो?’

‘तो क्या तुमने इज़ाज़त दे दी?’

‘हाँ, आज अमर ही आया था मेरे पास... बे... चा... रा... बोल ही नहीं पा रहा था...। ‘शायद मेरी माँ के दिल पर आघात होगा तो? इसलिए मैंने खुद ने ही उससे कहा:

‘बेटा तू मेरी इज़ाज़त लेने के लिए आया है न? तुझे विदेश-यात्रा करने के लिए जाना है न?’

उसने सिर झुकाकर हामी भरी। मैंने कहा : खुशी से जा, बेटे! जवान बेटा तो देश-विदेश घूमेगा ही... इसी में मैं खुश हूँ... बेटा... अमर...’

उस समय उसकी आँखों में खुशी के आँसू छलक आये... और उसने मेरी गोद में सिर रख दिया।’

‘अच्छा किया तुमने! तुम्हें अपने दिल में लेकर अमर विदेश-यात्रा पर जाय... यह मैं चाह रहा था। द्रव्य से भले वह दूर चला जाए... पर भाव से तो अपने पास ही रहेगा।’

‘तो अब मुहूर्त?’

माँ का दिल

७६

‘मुहूर्त तो निकलवाता ही हूँ... पर अपनी पुत्रवधू के लिए महाराज एवं महारानी को बताना तो चाहिए ही न।’

‘वह मैं आज ही निपटा लूँगी।’

‘तो मैं अमर को बुलवाकर... कुछ बातें कर लूँगा। उसे विदेश जाना है... उसे मुझे कुछ सतर्कता बतानी होगी, जिससे उसकी यात्रा सफल हो... और वह सकुशल लौट आए।’

‘ज़रूर! आप उसके साथ बातें करें... मैं राजमहल जा रही हूँ।’

धनावह सेठ का मन प्रफुल्लित हो उठा। सेठानी वस्त्र परिवर्तन करके सुरसुंदरी को साथ लेकर रथ में बैठकर राजमहल की ओर चली।



जब सुरसुंदरी राजमहल में पहुँची, रानी रतिसुंदरी ने उसे अपने अंक में भर लिया। वह फफक-फफककर रो दी। सुरसुंदरी भी रो पड़ी। सेठानी धनवती माँ-बेटी को अकेला छोड़कर भारी मन से वापस आयी।

‘बेटी, ‘रतिसुंदरी का स्वर काँप रहा था’, मैं तुझे ऐसा तो कहुँ भी कैसे कि तू विदेश मत जा। पत्नी को तो पति की छाया बनकर ही जीना चाहिए। उसमें ही उसका सुख निहित है। पर तेरी जुदाई की कल्पना मुझे रुला रही है... यह तो विदेश की यात्रा... न जाने कितने महीने... कितने बरस बीत जाएँ, कब वापस लौटना हो... क्या पता?’

सुरसुंदरी को सूझ नहीं रहा था कि वह क्या जवाब दे। वह खामोश थी। रतिसुंदरी ने उसके सिर पर अपना हाथ फेरते हुए कहा :

‘मुझे तेरे संस्कारों पर पूरा विश्वास है, फिर भी तेरे प्रति प्रगाढ़ स्नेह है न? इसलिए कह रही हूँ कि... ‘बेटी जान से भी ज्यादा अपने प्रतिव्रत को समझना। अपने दिल में शील का ध्यान रखना। शायद कभी कोई संकट भी आ जाए तो निर्भय होकर श्री नमस्कार महामंत्र का ध्यान करना। एकाग्र मन से जाप करना। महामंत्र के प्रभाव से तेरे सभी संकट टल जाएँगे। विपत्तियों के बादल छँट जाएँगे।’

गृहस्थ-जीवन में पति की प्रसन्नता ही स्त्री का परम धन है। इसलिए अमरकुमार को प्रसन्न रखना। सुबह उनके जगने से पहले तू जाग जाना। उसकी आवश्यकताओं का पूरा और प्रथम ध्यान रखना। कभी भी उन को नाराज़ मत करना... उनका अनादर न हो, इसकी सावधानी रखना।

माँ का दिल

७७

पति से, हो सके वहाँ तक कुछ भी माँगना मत। प्रसन्न हुए पति बिना माँगे, न चाहिए तो भी पत्नी को काफ़ी कुछ देते हैं। फिर भी कभी कुछ माँगना पड़े तो विनय से, नम्रता से माँगना। उनकी इच्छा का अनुसरण करने का प्रयत्न करना।

ज्यादा तो तुझे क्या बताऊँ? तू खुद समझदार है, धर्मप्रिय है और हमारे कुल के नाम को उज्ज्वल बनानेवाली है। तेरे पास सच्चा ज्ञान है, श्रद्धा है, और अनेक कलाएँ हैं, इन सबका सुयोग्य- समय एवं जगह पर उपयोग करने की बुद्धि भी तेरे पास है।

बेटी, पंचपरमेष्ठी भगवान सदा तेरी रक्षा करें... ऐसी शुभकामना करती रहूँगी... मैं तेरी राह देखूँगी... बेटी... तू भी कभी तेरी इस माँ को याद करना...!!

रतिसुंदरी की आँखों में आँसू की बाढ़ आ चुकी थी।



राजा एवं रानी दोनों रथ में बैठकर अमरकुमार से मिलने के लिए धनावह श्रेष्ठी की हवेली में आये। सेठ व सेठानी ने उन दोनों का यथोचित स्वागत किया। अमरकुमार ने भी आदर व्यक्त किया।

राजा ने कहा : 'कुमार... विदेश जाने का निर्णय तुमने कर ही लिया है, इसलिए 'तुम विदेश मत जाओ', ऐसा कहकर तुम्हारे उत्साह को तोड़ूँगा नहीं। तुम्हारे रास्ते में विघ्न नहीं करना है। परंतु, सुरसुंदरी भी तुम्हारे साथ जाने के लिए तैयार हो गयी... हमारी वह इकलौती बेटी है... यह तुम जानते ही हो उसपर हमारी अपार ममता है... यह भी तुमसे छिपा नहीं है।

'कुमार, तुम पर पूरी श्रद्धा एवं पूरा भरोसा रखकर हमने अपनी बेटी तुम्हें सौंपी है। हमारा तो वह जीवन है... उसके सुख में हम सुखी... उसके दुःख में हम दुःखी।

परदेश का सफ़र है... लंबा सफ़र है। कभी सुरसुंदरी कुछ गलती कर बैठे तो उसे माफ़ कर देना। कभी भी उसे अलग मत करना। देखना, कहीं उसे धोखा न हो जाये। राजा रो पड़े। रानी की भी सिसकियाँ सुनायी देने लगी।

अमरकुमार ने कहा : 'हे ताततुल्य! आप निश्चित रहें, आपकी शुभकामनाओं से हमारी विदेश- यात्रा निर्विघ्न होगी... हम दोनों का पारस्परिक प्रेम भी अखंड रहेगा।

माँ का दिल

७८

‘मैं सिंहलद्वीप तक के रास्ते में आनेवाले राज्यों में मेरे परिचित राजाओं को संदेश भिजवा देता हूँ... तुम जहाँ भी जाओगे, वहाँ तुम्हें सब तरह की सुविधाएँ मिल जाएगी। व्यापार में भी सफलता मिलेगी।’

धनावह सेठ ने कहा : ‘मैंने भी उस रास्ते के मेरे परिचित व्यापारी श्रेष्ठियों को समाचार भिजवा दिये है।’

‘प्रयाण कब करना है?’ महाराजा ने पूछा।

‘अक्षयतृतीया के दिन।’

‘अच्छा दिन है।’

‘विदेश-यात्रा सफल होगी।’

‘जल्दी-जल्दी वापस आयें... हम ऐसी ही कामना करें।’



अक्षयतृतीया का मंगल दिन आ पहुँचा।

समुद्र में सुंदर बारह जहाज तैयार खड़े थे।

जहाजों में क्रीमती सामान भरा हुआ था। नाविक, नौकर-चाकर... और मुनीम लोग जहाज में बैठ चुके थे।

अमरकुमार व सुरसुंदरी को विदा करने के लिए चंपानगरी के हजारों स्त्री-पुरुष समुद्र के किनारे पर एकत्र हुए थे। महाराजा और महारानी... सेठ और सेठानी... मौन थे। स्वजन विरह की व्यथा से वे बेचैन थे।

अमरकुमार प्रसन्न था।

सुरसुंदरी भी हर्षविभोर थी।

‘विजयमुहूर्त’ की प्रतीक्षा हो रही थी। अमरकुमार की चन्द्रनाड़ी चल रही थी... शुभ शकुन हो रहे थे... पक्षियों की मधुर ध्वनि गूँज रही थी... सागर की तरंगे नाच रही थीं।

सुरसुंदरी पंचपरमेष्ठी भगवंतो के स्मरण में लीन थी। रतिसुंदरी व धनवती सुरसुंदरी की दोनों ओर खड़ी रहकर शुभकामनाएँ व्यक्त कर रही थी... कभी शंका-कुशंकायों से भी घिर जाती थीं।

राजपुरोहित ने पुकारा : मुहूर्त का समय आ चुका है। पावन कदम बढाइए... जहाज में आरूढ होइए।’

माँ का दिल

७९

सुरसुंदरी के साथ अमरकुमार ने नौका में पदार्पण किया। लागों ने जयध्वनि की। नौका बड़े जहाज की ओर सरकने लगी। और कुछ ही पल में जहाज के निकट पहुँच गयी। दंपति जहाज में आरूढ हुए... और जहाज चला।

‘आइएगा... जल्द वापस लौटिएगा...’

‘खुश रहना... सकुशल रहना...’ की आवाजें धीरे-धीरे सुनायी देनी बंद होने लगी। किनारे पर खड़े हजारों स्त्री-पुरुष हवा में हाथ हिलाते रहे। तब तक वह खड़े रहे, जब तक जहाज दिखायी देते रहे...।

सुरसुंदरी एवं अमरकुमार भी चंपा को देखते रहे... जब तक उन्हें चंपा की प्राचीर दिखायी देती रही। सब कुछ धुँधलके में आविरत होता गया... एक गहरा धुँधलका अमरकुमार-सुरसुंदरी को निगलने के लिए तैयार होकर धीरे-धीरे उनकी ओर बढ़ रहा था।



१३. संबंध जन्म-जन्म का!

सुरसुंदरी एवं अमरकुमार, दोनों के लिए यह पहली-पहली समुद्र की सैर थी। संस्कृत-प्राकृत काव्यों में उन्होंने समुद्र की रोचक और रोमांचक बातें पढ़ी थीं! धर्मग्रंथों में भी संसार को सागर की दी गयी उपमा से वे परिचित थे! 'संसार एक अनंत-असीम सागर है,' - ऐसे शब्द भी उन्होंने जैनाचार्यों के मुँह से सुन रखे थे। 'सागर के खारे पानी जैसे संसार के सुख हैं-' वह उपदेश भी उन्होंने सुना था।

अतल सागर पर फैली अनंत जलराशि की छाती को चीरते हुए बारह जहाजों का काफ़िला चला जा रहा था। सिंहलद्वीप की ओर जहाज आगे बढ़ रहे थे। अमरकुमार और सुरसुंदरी अपने जहाज के डेक पर खड़े थे। सूर्यास्त से पहले ही भोजन वगैरह निपटकर, साँझ के सौंदर्य को समुद्र पर बिखरा हुआ देखने के लिए दोनों डेक पर चले आये थे। दोनों के मन विभोर थे। हृदय एकदम खिले-खिले थे।

उत्कट इच्छा की संपूर्ति हो चुकी थी... प्रिय स्वजन की सम्मति थी। भावों की अभिव्यक्ति करने के लिए वातावरण अनुकूल था और सामने अनंत सागर का उफनता उत्संग था।

'सुंदरी, क्यों चुप्पी साधे बैठी हो?' टकटकी बाँधे क्षितिज की ओर निहारती सुंदरी के कानों पर अमर के शब्द टकराये। उसने अमर के सामने देखा। उसकी आँखों से झरते स्नेहरस को पिया और बोली :

'अत्यंत आनंद कभी वाणी को मूक बना देता है... है न स्वामिन्! सुंदरी ने अमर की हथेली को अपने कोमल हाथों में बाँधते हुए कहा।

'मैं तो और ही कल्पना में चला गया था...'

'कौन सी कल्पना?'

'शायद तू घर की यादों में... माँ-बाप की यादों में खो गयी होगी!'

'एक प्रियजन से ज्यादा प्रिय स्वजन जब निकट हो तब वह प्रियजन याद नहीं आता!'

'और एक नया आह्लादक व मनोहारी वातावरण मिलता है, तब भी पहले की स्मृतियाँ पीछा नहीं करतीं।'

संबंध जन्म जन्म का

८९

‘बिलकुल सही बात है आपकी... वर्तमान के मधुर क्षणों में डूबा, तल्लीन मन पुरानी यादों से दूर रहता ही है!’

‘अब हम अंदर के कक्ष में चलें... अंधेरे के साये उतरने लगे हैं। भीतर बैठकर सागर की लहरों के ध्वनि में डूबेंगे... चलो!’

दोनों अपने शयनकक्ष में आये। परिचारिक ने कक्ष में दीये जलाकर रख दिये थे।

कपड़े बदलकर सुंदरी अमर के सामने बैठी थी। अमरकुमार सुंदरी के चेहरे पर निगाह बिछाये बैठा था। सुंदरी शरमाने लगी... उसने पूछा :

‘क्यों खामोश हो?’

‘सोच रहा हूँ!’

‘ओह? सोच रहे या देख रहे हो?’

‘दोनों एक साथ कर रहा हूँ!’

‘क्या सोच रहे हो?’

‘तू साथ आयी, यह ठीक हुआ।’

‘पर तुम तो बिलकुल ही अस्वीकर कर रहे थे न मेरा कहना।’

‘अरे बाबा! इसलिए तो कह रहा हूँ... मैंने अपनी ज़िद्द छोड़ दी और तूने अपनी ज़िद्द पकड़ रखी - वह अच्छा हुआ!’

‘यह बस इस यात्रा में ठीक लगता है... सिंहलद्वीप पहुँचकर व्यापार में उलझे कि... फिर!’

‘ऊँहूँ... तब भी नापसंद नहीं होगा तेरे साथ आना!’

‘दिन-भर धंधे-धापे में उलझकर जब शाम को घर लौटूँगा तब तेरा सान्निध्य पाकर मेरी थकान उतर जायेगी! उकताहट दूर हो जायेगी।’

मैं अपने आपको कितनी खुशकिस्मत समझती हूँ? ज़िदगी की अंतिम क्षणों तक मैं तुम्हें सुख देती रहूँ... आनंद व प्रसन्नता देती रहूँ... आत्मकल्याण में सहयात्री बनूँ... यही मेरा जीवन बना रहे। यही तो मेरी इच्छा है?’ सुंदरी का स्वर भीगने लगा। अमरकुमार का दिल भी खिल उठा।

‘सुर... एक विचार कौंधता है, कभी-कभी दिमाग में!’

‘वह क्या?’

संबंध जन्म जन्म का

८२

‘किसी ज्ञानी महापुरुष का मिलना हो, तो मुझे इतना तो पूछना ही है कि हमारा इतना गहरा स्नेह संबंध कितने जन्मों का है?’

‘और मैं पूछूंगी कि प्रभो, हमारा यह भीतरी नाता निर्वाण तक अखंड रहेगा न?’

‘जी, नहीं रह सकता!’

‘मैं आपसे थोड़े ही पूछ रही हूँ?’

‘मैं क्या विशिष्टि ज्ञानी नहीं हूँ?’

‘आप ज्ञानी जरूर हैं, पर परोक्ष ज्ञानी... नहीं कि प्रत्यक्ष ज्ञानी।’

‘फिर भी मैं इतना तो जरूर कह सकता हूँ कि यदि अपना मोक्ष होनेवाला होगा, तो फिर यह रिश्ता नहीं रहेगा।

‘पर क्यों?’

‘चूँकि, अपना रिश्ता भावजन्य हैं... भावुकता जब तक हो तब तक वीतराग दशा प्राप्त हो सकेगी?’

‘यह बात तो आपकी बिलकुल सही है... कि भावुकता चली जाए और वीतरागता नहीं आए... पर मेरा कहना तो यह, है कि अनुराग जाए और द्वेष नहीं आ जाना चाहिए।’

‘अनुराग है तो कभी न कभी द्वेष के चले आने की संभावना तो रहेगी न, राग व द्वेष तो ज़िगरी दोस्त हैं न?’

‘कैसे? ये दोनों तो परस्पर विरोधी तत्त्व हैं।’

‘फिर भी एक के बगैर दूसरे का अस्तित्व नहीं है।’

‘राग-द्वेष के अस्तित्व में भी संबंध तो टिकेगा न?’

‘संबंध अखंड नहीं रहेगा... संसार के सभी संबंध अनित्य हैं।’

‘एक जन्म में संबंध अखंड व अक्षुण्ण रहने की बातें शास्त्रों में भी तो आती हैं न? अरे, नौ-नौ जन्म तक संबंध अखंड रहने के उदाहरण मेरे पास मौजूद हैं।’

‘वह तो मैं भी जानता हूँ।’

‘तब तो अपना संबंध भी अखंड रहेगा। रहेगा न?’

‘मेरी भीतरी अभीप्सा यही है, सुर। पर इस संसार में जीवात्मा की हर अभिलाषा सफल होती है, ऐसा हमेंशा कहाँ होता है!’

संबंध जन्म जन्म का

८३

‘ये आप आज न जाने, किसी महात्मा की-सी बातें क्यों कर रहे हो?’

‘तुझे तो वैसे भी महात्मा की वाणी अच्छी लगती है, है न?’

‘अच्छा... चलो, जो मुझे पसंद होगा वही आप बोलेंगे न?’

‘बिलकुल! संबंध को अखंड रखना हो तो तुम्हें भी वैसा ही बोलना पड़ेगा जैसा मुझे पसंद हो!’

‘एक-दूसरे की पसंदगी-नापसंदगी को जान लेना होगा!’

‘हाँ...बाबा...हाँ! पर अभी तो हमको सो जाना पसंद है! क्यों, क्या इरादा है आपका?’



सुबह सुरसुंदरी तो जल्दी जग गयी! आवश्यक कार्यों से निपटकर, शुद्ध-श्वेत वस्त्र धारण करके, साफ जगह पर आसन बिछाकर उसने नवकार मंत्र का जाप प्रारंभ किया।

अमरकुमार जगा। उसने सुरसुंदरी की ओर देखा।

श्वेत वस्त्र! ध्यानस्थ मुद्रा! चेहरे पर प्रशांतता! जैसे कोई योगिनी बैठी हो, वैसी सुरसुंदरी प्रतीत हो रही थी। अमरकुमार का मन हँस पड़ा। सुरसुंदरी को ज़रा भी विक्षेप न हो, इस ढंग से वह खड़ा होकर बाहर निकल गया।

स्नान वगैरह से निवृत्त होकर अमरकुमार मुख्य नाविक से मिला। बारह जहाजों के बारे में जानकारी प्राप्त की। समुद्र के बदले वायुमंडल की बातें की। चंपानगरी से कितनी दूर आये... यह भी जान लिया।

‘कुमार सेठ, अपने पास दिन निकल जाए उतना तो मीठा पानी है... पर कल हमको किसी द्वीप पर रुकना होगा, पानी भरने के लिए।’

नाविक ने अमरकुमार से कहा, अमरकुमार ने पूछा : ‘रास्ते में कोई ऐसा द्वीप आता है?’

‘जी, एक यक्षद्वीप आता हैं। उस द्वीप पर पीने का मीठा पानी भी मिल जाएगा।’

‘तब तो हम कल वहीं पर डेरा डाल दे। द्वीप है तो सुंदर न?’

‘अत्यंत रमणीय द्वीप है। फूल-फल से हरे-भरे असंख्य पेड़-पौधे हैं... उद्यान है... बगीचे हैं... पर एक बड़ा भय है... वहाँ जाने में!’

‘किससे?’

‘यक्ष का!’

‘क्या कहा? यक्ष से भय? क्यों?’

वह यक्ष मानव भक्षी है। जैसे ही यक्ष को आदमी की गंध आती है... वह आदमखोर उस आदमी को खतम किये बगैर नहीं छोड़ता! इधर से गुजरने वाले यात्री इस द्वीप से किनारा करके गुजरते हैं, यहाँ पर रात में तो कोई रहता ही नहीं! रात में रुकना यानी जान-बूझकर यक्ष का शिकार होना!’

‘तो फिर हम क्या करेंगे? अच्छा, ऐसा करे तो? हम वहाँ कुछ देर दिन में ठहरे... पानी वगैरह लेकर जल्द ही आगे चल दें। रात क्या, साँझ ढलने से पहले ही वहाँ से चल देंगे। फिर खतरा किस बात का? हाँ, द्वीप पर घूमना नहीं होगा।’

‘वैसे तो जब तक भोजन वगैरह तैयार हो तब तक आप द्वीप पर घूम आना! एकाध प्रहर का समय तो मिलेगा ही!’

‘यह बात ठीक है तुम्हारी!’

‘पर कुमार सेठ, फिर भी हम को होशियार तो रहना ही होगा!, सावधानी तो पूरी रखनी होगी! यक्ष तो जब चाहे, तब आ सकता है न?’

‘विदेश में हमेशा सावधान ही रहना चाहिए, भाई! जो जागत है सो पावत है... सोवत है सो खोवत है!’

अमरकुमार ने समुद्र की सतह पर तैरते अपने बारह जहाजों पर निगाह डाली और वह व्यापार के विचारों में डूब गया! तब परिचारिका ने आकर कहा :

‘दुग्धपान का समय हो चुका है... देवी आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं।’

तब वह विचारनिद्रा में से जगा। जल्दी से भोजन कक्ष में पहुँचा। सुरसुंदरी उसकी राह देखती बैठी थी।

‘स्वामिन्, कोई व्यापारी आ गया था क्या?’ सुंदरी ने हँसते हुए पूछा!

‘व्यापारी लोग आर्येंगे तो मुझे दूध वहीं पर मँगवा लेना होगा।’

‘मैं खुद लेकर हाजिर होऊँगी आपकी सेवा में।’

अमरकुमार हँस पड़ा। दोनों ने दुग्धपान किया। दुग्धपान करते-करते अमरकुमार ने यक्षद्वीप की बात सुंदरी से कही।

‘तो क्या यह बात सच होगी?’ सुंदरी ने पूछा।

संबंध जन्म जन्म का

८५

‘सच हो सकती हैं! नाविक का अनुभव होगा, तब ही वह कह रहा होगा न!’

‘नहीं! अनुभव होता तो वह ज़िंदा कैसे रहता?’

‘उसने जाना होगा कि यह यक्ष मानव भक्षी है।’

‘उस यक्ष को क्या और कुछ खाने को नहीं मिलता होगा कि वह मनुष्य को खा जाता है।’

‘वह खाता नहीं होगा... मार डालता होगा।’

‘पर क्यों?’

‘उसे शायद मानव जाति पर द्वेष होगा?’

‘कुछ कारण भी तो होना चाहिए?’

‘कारण पूर्वजन्म का भी तो हो सकता है न! गत जन्म में मनुष्यों ने उसको खूब दुःख दिया होगा... मारा होगा... तिरस्कृत किया होगा... इससे उसके मन में मनुष्य जाति से नफ़रत हो गयी होगी। मरकर वह यक्ष हुआ होगा... अपने विभगज्ञान से पूर्व जन्म देखा होगा... वैर की आग धधक उठी होगी, बदला लेने के लिए तड़प रहा होगा!’

यह बात तुम्हारी जँचती है। चूँकि धर्मशास्त्रों में ऐसी बातें पढ़ने को मिलती हैं! मैंने पढ़ी भी हैं।

‘और फिर इस द्वीप पर उसका अधिकार होगा। उसकी इजाजत के बगैर, जो कोई द्वीप पर आने की कोशिश करता होगा, उसे वह मार डालता होगा।’

अमरकुमार ने यक्ष के द्वारा की जानेवाली मानव-हत्या का दूसरा संभाव्य कारण बतलाया।

‘पर उसकी इजाजत लेने जाए कौन? किस तरह जाए? कहाँ जाए! क्या वह ज़िंदा जागता प्रत्यक्ष रहता होगा? देव तो मनुष्य आँखों से ओझल रहते हैं ना?’

‘नहीं... देखे भी जा सकते हैं... और नहीं भी दिखे! फिर भी उसकी अनुज्ञा ली जा सकती है। अनजान जगह पर रहना हो, तो ‘इस भूमि पर जिस देव का अधिकार हो वे देव मुझे अनुज्ञा दें! मुझे इस जगह पर रहना है।’ इतना बोले तो अनुज्ञा मिल गयी। वैसा मान ले।’

‘तब तो फिर हम भी इस तरह अनुज्ञा लेकर ही उन द्वीप पर उतरेंगे। फिर तो यक्ष हमको नहीं मारेगा न?’

आखिर, जो होना था!

८६

‘क्या पता...? मार भी डाले... यदि क्रूर हो तो।’

‘ऐसा हो तो रात नहीं रूकेंगे वहाँ पर।’

‘रात को वहाँ रूकने की तो ज़रूरत ही नहीं है। हमको वहाँ उस द्वीप पर पर घूमने-फिरने के लिए एक प्रहर समय भी मिल जाएगा! द्वीप वैसे भी काफी रमणीय है। हम दोनों चलेंगे घूमने। लौटकर भोजन कर लेंगे और फिर जहाजों को आगे बढ़ा देंगे।’

‘ठीक है, वहाँ पर भोजन दूसरे आदमी बनाए... पर यहाँ तो मेरे हाथों का खाना ही खिलाऊँगी बराबर न?’ हँसी में लिपटी सुरसुंदरी खड़ी हुई और रसोईघर की ओर चल दी तैयारी करने के लिए।

अमरकुमार मंत्रणाकक्ष में गया। मुनिमों को वहीं पर बुलवा लिया और उनके व्यापार वगैरह के बारे में वह विचार-विमर्श करने लगा।

अनुभवी मुनीमों ने सिंहलद्वीप के व्यापारियों की रीति-रस्म बतायी... भयस्थान भी बतलाए। उस द्वीप की राजनीति समझायी। व्यापारिक नीति-रीति की जानकारी करायी। अमरकुमार एकाग्र मन से सुनता रहा सारी बातें। पिताजी के समय के मुनीमों पर अमर का भरोसा था, श्रद्धा थी।

जहाज आगे बढ़ रहे थे उस यक्ष-द्वीप की ओर, जहाँ सुंदरी के जीवन में एक अनसोचा हादसा होना था। सोची बातें बनने-बिगड़ने से ज्यादा असर नहीं होता! जब अनचाहा बनता-बिगड़ता है, तो पूरी ज़िंदगी में ठहराव सा आ जाता है।





जब दूर से यक्षद्वीप दिखायी देने लगा, तब नाविक ने यह कहकर अमरकुमार का ध्यान आकर्षित किया - 'कुमार सेठ, अब एकाध घटिका में हम यक्षद्वीप पहुँच जाएँगे! देखिए... वे ऊँचे-ऊँचे वृक्ष जो दिखाई देते हैं वे यक्षद्वीप के ही हैं!' उसने यक्षद्वीप की दिशा में ऊँगली दिखाकर कहा।

'देखो, पहले तुम लोग मीठे पानी भर लेना। खाना बाद में बनाना।'

'आपकी आज्ञा अनुसार ही होगा, कुमार सेठ! नाविक ने विनय से कहा! अमरकुमार सुरसुंदरी के पास पहुँचा। यक्षद्वीप की तरफ उसका ध्यान खींचते हुए कहा:

'सुंदरी, वहाँ पहुँचकर तुरंत घूमने के लिए चलेंगे!'

'आपके लिए भोजन...?'

'आज का भोजन ये लोग बना लेंगे... तुझे नहीं बनाना है।'

यक्षद्वीप की ओर जहाज तेजी से आगे बढ़ रहे थे। नाविक जहाजों को किनारे पर लंगर डालकर खड़े करने की तैयारी करने लगे। बारह ही जहाजों पर के लोग हँसते, शोर मचाते काम कर रहे थे।

समुद्र में उचित स्थान पर लंगर डालकर जहाजों को रोक दिया गया। जहाजों से बँधी हुई नौकाओं को तैयार किया गया। सबसे पहले अमरकुमार एवं सुरसुंदरी नौका में उतरे। नाविक ने नौका को द्वीप के किनारे की ओर चला दिया।

किनारा आते ही अमरकुमार कूद गया। सुरसुंदरी को हाथ का सहारा देकर उतारा। नाविक ने नौका जहाज की ओर लौटा ली।

अमरकुमार व सुरसुंदरी द्वीप के मध्यभाग की तरफ चल दिये। द्वीप हरियाली से भरा हुआ था। कई तरह के वृक्ष महक रहे थे। जगह-जगह पर खुशबू से छलकते फूलों के पौधे बिछे थे। पानी के सुंदर झरने थे।

काफी घूमे। सुरसुंदरी बेहद थक गयी। एक पेड़ के नीचे दोनों विश्राम लेने के लिए बैठे।

आखिर, जो होना था!

८८

तन श्रमित था। वृक्ष की टंडी छाँव थी। हल्की-हल्की सी हवा बह रही थी। सुरसुंदरी की पलकें झपकने और वह अमरकुमार को टकटकी बाँधे निहार रही है... उसका मन बोलने लगा :

‘कितनी निश्चित बनकर गहरी नींद में सो रही है! मुझपर कितना भरोसा है इसका। इसके चेहरे पर कितनी प्रसन्नता छायी है। वह मुझसे कितना गहरा प्रेम करती है!’

‘वैसे भी हमारा प्यार तो बचपन से है... साथ-साथ पढ़ते थे... तभी से हममें एक दूजे के लिए लगाव था... खिंचाव था! बस, एक ही बार हम झगड़ा कर बैठे थे।

मैंने थोड़े ही झगड़ा किया था...! इसने ही तो मुझसे झगड़ा किया था! मैंने तो अपने प्रेम का अधिकार मानकर... इसकी साड़ी के छोर में बँधी सात कोड़ियाँ ले ली थी। मेरा कोई चोरी करने का इरादा थोड़े ही था? दूसरे विद्यार्थियों के देखते ही मैंने ली थी कोड़ियाँ!’ मेरा मन, वह जगें तब उसे अजूबे में डाल देने को आतुर था! मैंने सोचा था वह जब मिठाई देखेगी तब आश्चर्य से मेरी ओर देखती ही रह जाएगी! और जब उसे मालूम होगा कि मैंने उसी की सात कोड़ियों से मिठाई खरीदकर छात्रों में बाँटी है, तब वह मीठा गुस्सा करके रुठ जाएगी। फिर मैं उसे मना लूँगा, तो मान जाएगी।

पर वह जगते ही गुस्से से बौखला उठी थी। मुझ पर चोरी का इलज़ाम लगा दिया... सभी विद्यार्थियों के बीच तू-तू मैं-मैं पर उतर आयी। अरे...बाबा...। उस वक्त उसका चेहरा कितना लाल-लाल हो गया था... उसके मुँह में से अंगारे बरसाते शब्द निकले थे।

उसका अभिमान कितना था! मुझसे कहा था ‘हाँ, हाँ, सात कोड़ियों से मैं राज्य ले लेती राज्य!’ ‘ओह, उसका गरुर कितना! राजकुमारी थी न? उसके पिता राजा... तो फिर वह किसी से दबे भी क्यों!’

परंतु... आज वह राजकुमारी नहीं है... मेरी पत्नी है... आज वह मेरे अधिकार में है।’

अमरकुमार के मन में बचपन की कटु स्मृतियाँ एक-एक करके उभरने लगीं। वह धीरे-धीरे गुस्से से काँपने लगा। उसकी आँखों में बदले की आग के शोले भड़कने लगे। उसकी नसों खिंचने लगीं।

‘सात कोड़ियों में उसे राज्य लेने दूँ। हाँ... देखूँ तो सही, वह सात

आखिर, जो होना था!

८९

कोड़ियों में राज कैसे लेती है? लेती भी है या नहीं...?’

‘इसका जो होना हो सो हो। इसे यहाँ सोयी छोड़कर चला जाऊँ! इसकी साड़ी के छोर में सात कौड़ी बाँधकर वहाँ लिख दूँ... ‘सात कौड़ियों में राज्य कैसे लिया जाता है, इसका भी इसे अंदाजा लगेगा। कितनी घमंडी है यह, मालूम हो जाएगा।’

‘पर जब नाविक पूछेंगे तो? मुनीम पूछेंगे कि ‘सेठानी कहाँ है कुमार सेठ? तो मैं क्या जवाब दूँगा?’

अमरकुमार का शरीर पसीने में भीग गया। यदि मैं जवाब देने में सकपका जाऊँगा तो उन लोगों को संदेह होगा कि ज़रूर सेठ ने सेठानी की हत्या कर दी...।’ उसकी देह में कँपकँपी फैल गयी।

‘नहीं-नहीं, मैं ऐसा जवाब दूँगा कि उन्हें कोई संदेह होगा ही नहीं। मैं कहूँगा कि यक्ष आकर सुंदरी को उठा ले गया... और मैं तो बड़ी मुश्किल से बचकर यहाँ दौड़ आया...!’

‘एक पल की देर किये बगैर जहाज़ों को रवाना कर दूँगा!’ हाँ... यक्ष का नाम आते ही सबको मेरी बात झूठी लगने का सवाल ही पैदा नहीं होगा!’

उसने दाँत भीचकर सुरसुंदरी की ओर देखा!

सुरसुंदरी कहीं जग न जाए इसकी पूरी सावधानी रखते हुए उसने अपनी जेब में से सात कोड़ियाँ निकाली और सुरसुंदरी की साड़ी के छोर में बाँध दी गाँठ लगाकर! पास में पड़ी पत्ते की सलाखा को आँखों के काजल से रँगकर साड़ी के छोर पर लिख दिया : ‘सात कौड़ियों में राज्य लेना!’

एकदम धीरे से उसने सुरसुंदरी का सिर अपनी गोद से ज़मीन पर रखा। सुरसुंदरी ने करवट बदली, एक क्षण उसने आँख खोली थी, पर अमरकुमार को देखकर निश्चिंत मन से फिर सो गयी...!

अमरकुमार पल-भर के लिए तो ठिठक गया, पर उसके दिल में बदले का लावा उफन रहा था। वह खड़ा हुआ। उसने सुरसुंदरी की ओर देखा... हाथ की मुट्टियाँ अपने आप भिंच गयी। चेहरे पर सख्ती छलक आयी और वह दौड़ा। किनारे की ओर बेतहाशा दौड़ने लगा!

‘शायद वह जग जाएगी और मुझे किनारे की ओर दौड़ता हुआ देख लेगी तो? वह भी दौड़ती हुई मेरे पीछे आ जाएगी!’ अमरकुमार बार-बार पीछे देखता था और दौड़ा जा रहा था!

आखिर, जो होना था!

९०

नाविकों व मुनिमों ने अमरकुमार को अकेले दौड़ते हुए आता देखा। उनके भीतर आतंक की लहर फैल गयी। नाविक सामने गये दौड़ते हुए।

‘क्या हो गया कुमार सेठ? सेठानी कहाँ है?’

अमरकुमार ज़मीन पर गिर पड़ा! वह हॉफ रहा था...। उसकी आँखों में भय था। उसने उखड़े-उखड़े शब्दों में कहा : जल्दी करो... वह यक्ष... आया... और सुंदरी को उठा ले गया... मैं भाग आया...।’

‘क्या? सेठानी को यक्ष उठा ले गया? ओह... बाप रे! सत्यानाश! चलो, चलो, हम जल्दी जहाज़ में बैठ जाय! कहीं वह दुष्ट आकर हम सबको न मार डाले!’ मुख्य नाविक ने किनारे की ओर तेजी से कदम बढ़ाये।

भोजन ज्यों-का-त्यों पड़ा रहा! सभी जल्दी-जल्दी नौका में बैठकर जहाज़ पर पहुँच गये और तुरंत लंगर उठाकर जहाज़ों को खोलकर चला दिया दरिया में पूरे ज़ोर से!

अमरकुमार अपने जहाज़ में पहुँचकर सीधे ही अपने कमरे में घुस गया। दरवाज़ा बंद करके पलंग पर लेट गया! उसके मन में विचार उठने लगे:

‘अब मेरा काम हुआ...! बदला लेने की मेरी इच्छा तो थी ही... पर वह इच्छा प्रेम की राख के नीचे दबी-दबी सुबक रही थी। हाँ... मुझे भी उस पर प्यार था, फिर भी उसके कहे हुए कटु शब्दों के घाव भरे कहाँ थे? आज यकायक उस करारे घाव की वेदना फफक उठी और मैंने बदला ले लिया! हा... हा... हा... हा...।’ पागल की तरह अमरकुमार हँसने लगा।

‘वह यक्ष...? हाँ... रात होते ही वह आएगा... और उसे उसका अच्छा शिकार मिल जाएगा। राज्य लेने जाते वह खुद ही शिकार बन जाएगी। यक्ष के क्रूर जबड़ों में वह समा जाएगी... हा... हा... हा...।’

उसने गवाक्ष, में से यक्षद्वीप की ओर देखा! द्वीप अब एक बिन्दु-सा नज़र आ रहा था।

‘बस...! अब सिंहलद्वीप जाकर मन चाहा व्यापार करूँगा...। काफी पैसा कमाऊँगा... कुबेर बन जाऊँगा।’

परिचारिका ने द्वार खटखटाया... वह भोजन लिये आयी थी... अमरकुमार ने कहा : ‘आज भोजन नहीं करना है... तू वापस ले जा।’



आखिर, जो होना था!

९९

इधर सुरसुंदरी जब जगी, तब चार घड़ी बीत गयी थी। उसने अमरकुमार को अपने पास न देखा, तो वह झटके से खड़ी हो गयी और पेड़ों के झुरमुट में अमरकुमार को खोजने लगी! वे ज़रूर कहीं छिप गये हैं... मुझे डराने के लिये। अभी वे पीछे से आकर मेरी आँखों को हथेली से बंद कर देंगे। फिर मुझसे पूछेंगे : 'बता, मैं कौन हूँ...?' मैं कहूँगी, 'इस द्वीप के अधिष्ठापक यक्षराज।' और फिर वे कहकहा लगाकर हँस देंगे... और मेरे सामने आकर खड़े रहेंगे : 'सुंदरी तू कितना सो गयी थी?'

सारे वन-निकुंज में सुरसुंदरी ने अमरकुमार को खोजा, पर अमरकुमार न मिला, उसका अता-पता नहीं मिला। तब सुरसुंदरी घबरा गयी। उसने आवाज लगायी...

'अमर! तुम कहाँ हो? स्वामिन्, मेरे पास आओ न? मुझे डर लग रहा है।'

कोई जवाब नहीं मिलता है।

कोई आहट नहीं सुनायी देती है।

सुरसुंदरी पागल-सी होकर वृक्ष-समूह में दौड़ने लगी। इधर-उधर आँखे फेरने लगी : बाहर आकर चारों ओर देखने लगी। कहीं अमरकुमार नहीं दिखा। सुरसुंदरी उसी वृक्ष नीचे आकर खड़ी रह गयी। उसकी आँखों में से आँसू बहने लगे। उसकी छाती घड़कने लगी... 'मेरे स्वामिन्... अमर। तुम कहाँ चले गये हो? मुझे यहाँ सोयी छोड़कर तुम कहाँ चले गये? अब मुझसे नहीं सहा जाता... मेरे देव! तुम चले आओ न? मुझे डराओ मत... आओ न! मेरे अमर... जहाँ हो वहाँ से आ जाओ!

उसके पैर काँपने लगे। वह ज़मीन पर बैठ गयी। 'ऐसे डरावने द्वीप पर पत्नी को अकेला नहीं छोड़ा जाता। ऐसा भी मज़ाक क्या किया जाता है क्या? तुम मेरी जिंदगी हो, मेरे प्राणों के आधार हो, मेरी साँसो के सहारे हो, जल्द चले आओ... और मुझे अपनी बाँहों में ले लो! वर्ना मैं अब नहीं जी पाऊँगी...? क्या मेरे आँसू तुम्हें नहीं दिखते? क्या मेरी आहों से भी तुम्हारा हृदय नहीं पसीजता? आ जाओ नाथ? अमर... अमर... मुझे अपने में समा लो... आओ न?'

सुरसुंदरी फफक-फफक कर रोने लगी। आँसुओं से चेहरे को साफ करने के लिए उसने आँचल हाथ में लिया... और वह चोंकी। 'यह क्या?' साड़ी का छोर भारी था। गाँठ लगायी हुई थी। तुरंत उसने गाँठ खोली, सात कौड़ियाँ

आखिर, जो होना था!

९२

बिखर गयी जमीन पर! उसकी आँखों में भय-भरा विस्मय तैर आया... इतने में तो उसकी निगाह साड़ी के छोर पर लिखे हुए अक्षरों पर गिरी 'सात कौड़ी में राज्य लेना।'

वह एकदम खड़ी हुई, और किनारे की ओर दौड़ने लगी। दूर ही से उसने देखा तो किनारे पर न तो कोई आदमी था... न ही कोई नाव थी। किनारा बिलकुल सुना था। फिर भी वह दौड़ती रही... किनारे पर आकर खड़ी रही...।

दूर-दूर जहाज चले जा रहे थे। क्षितिज पर मात्र बिंदु के रूप में जहाज उभर रहे थे।

'तुम मुझे इस सूने यक्षद्वीप पर छोड़कर चले गये? अकेली... निरी अकेली... औरत को इस डरावने द्वीप पर छोड़ कर तुमने बदला लिया उस बात का? यक्ष की खुराक के लिए मुझे छोड़ दिया। ठीक ही किया तुमने अमर।'

'बचपन की निर्दोषता... मासूमियत... प्यार भरा गुस्सा, भावुकता... भीतरी प्यार... यह सब कुछ तुमने भुला दिया? मेरे असंख्य प्यार भरे बोल तुम्हें याद नहीं रह सके? एक बार नादानी में कहे गये शायद उन शब्दों को हमेशा याद रखा होगा। दिल में दबा रखा होगा। और उसका बदला लेने के लिए ही मेरे साथ शादी का नाटक किया होगा? मुझे विश्वास में लेने के लिए प्यार का दिखावा किया?'

'अमर... अमर... मेरे अमर! यह तुझे क्या हो गया मेरे अमर? क्या तू तभी से मुझसे नफ़रत करता था? पर मैंने तो हर वक्त तुझे चाहा है। मैंने अपने मनमंदिर में अपने देव के रूप में तेरी पूजा की है। तू मुझे छोड़ गया... फिर भी मैं तुझे नहीं भूल सकूंगी। नहीं अमर, मैं तुझे कैसे भूला दूँ? मैंने तुझसे प्यार किया था। मुझे बदला लेना भी नहीं था... नहीं मैंने कभी किसी बात का बदला माँगा।

'तेरे प्रति मेरे मन में कितनी ऊँची आशाएँ थी? तुझमें मैंने कितने महान् गुण देखे थे? तुझे मैंने प्यार का सागर माना था। पर मेरी सारी कल्पनाएँ झूठी हो गयी।

'अमर, तूने मुझे इस तरह छोड़ दिया? इसकी बजाय तो यदि तूने अपने ही हाथों मुझे ज़हर दिया होता, तो मैं बड़ी खुशी से... अपने प्यार की आबरू की खातिर भी तेरा दिया ज़हर खा लेती। मैं तुझे महान् मानती। पर यह तूने

आखिर, जो होना था!

९३

क्या किया, अमर? एक मासूम नारी से इस तरह का क्रूर बदला लिया? और यह भी इस कुख्यात द्वीप पर जहाँ इन्सान की जान की कोई क्रीमत नहीं होती! ओह, अमर! तूने सब कुछ भुला दिया। अभी आज सुबह ही तो तूने कितना प्यार किया था? कितनी प्यार-भरी बातें की थी? क्या वह सब झूठ था? फरेब था...? तुने प्यार का जाल रचाया था... हाय! मैं भोली-भाली तेरी बुरी नीयत को न समझ पायी... और! अमर... अमर... मेरे अमर!'

सुरसुंदरी विचारों की आँधी में खड़ी न रह सकी। वह बेहोश होकर गिर गयी...। वहाँ उसे कौन हवा करनेवाला था?





‘क्या उसने बचपन की उस मनहूस घटना को यादों के आंचल में बाँध रखी होगी? नहीं... नहीं... इसके बाद तो मैं उसे कई बार मिल चुकी हूँ। उसने मुझे प्यार दिया है। मेरे साथ आत्मीयता का व्यवहार किया है। कभी उसने वह बीती बात याद भी नहीं करायी। शादी के बाद भी उसने उस प्रसंग को याद नहीं किया कभी। हँसी-मज़ाक में भी उसने उस बात का जिक्र नहीं किया। तो फिर क्या आज यकायक ही उसे इस निर्जन द्वीप पर वह घटना याद आ गयी? मुझे यहाँ पर अकेली छोड़े जाते हुए उसने कुछ भी सोचा नहीं होगा?’

‘क्या पता... शायद वह बात आते ही उसके दिमाग में मेरे लिए गुस्सा धधक उठा होगा? तब ही यह संभव है। क्योंकि गुस्से में आदमी बोखला जाता है। वैसे भी क्रोध को सर्वनाशकारी कहा है।

अन्यथा उसके जैसा ज्ञानी पुरुष ऐसा नहीं कर सकता। उसने गुरुदेव से धर्मज्ञान पाया है, ज्ञान भी प्राप्त किया हुआ है। क्या समझदार इतना क्रूरता भरा आचरण कर सकता है? और नहीं तो क्या? उसने क्रूरता ही तो जतायी है अपने आचरण के द्वारा। वह खुद ही तो कह रहा था कि यह यक्षद्वीप है... यहाँ का यक्ष मानव भक्षी है। कोई भी यात्री इस द्वीप पर रात बिताने की हिम्मत नहीं करता है। तो फिर वह मुझे तो उस यक्ष का शिकार बनाने को ही छोड़ गया न इधर?’

सुरसुंदरी यक्ष की कल्पना से सिहर उठी। उसके शरीर में कँपकँपी फैल गयी। उसका मनोमंथन रूक गया। उसने द्वीप पर दूर-दूर तक निगाहें दौड़ायी... ‘यक्ष दिखता तो नहीं है न?’ उसकी आँखों में भय के साये उतर आये। नहीं... नहीं... मुझे क्यों डरना? वैसे भी मुझे जीकर अब और करना भी क्या है? किसके लिए जीने का? यक्ष भले आए और मेरा भक्षण कर जाय। बस, मेरी एक ही इच्छा है मेरा शील अखंडित रहे...। प्राणों की बाजी लगाकर भी मैं शील का जतन जरूर करूँगी। मैं खुद ही यक्ष को कह दूँगी ‘आप मुझे जिंदा मत रखियेगा। मुझे खा जाइए... मुझे जीना ही नहीं है।’

सुरसुंदरी की आँखे बहने लगीं। दूर-दूर समुद्र में उछलती तरंगों को देखकर वह सोचने लगी : मनुष्य का स्वभाव भी तो इस कदर ही चंचल है।

पिता मिल गये

९५

मैंने अज्ञानता वश उस स्वभाव को स्थिर मान लिया। गलती मेरी ही तो है। अस्थिर को स्थिर मानने की गलती की। क्षणिक को शाश्वत मानने की भूल की। कितनी बड़ी भूल है मेरी?’

उसके मानसपटल पर साध्वी सुव्रता प्रगट हुई। उनके करुणा से भरे नेत्र दिखायी दिये। उनके मुँह में से शब्दों के फूल मानो झरने लगे : ‘सुंदरी, जिंदगी में केवल सुख की ही कल्पना मत बाँधे रखना। दुःख का विचार भी करते रहना। उन दुःखों में धैर्य धारण करना। जीवात्मा के अपने ही बाँधे हुए पापकर्मों के उदय से दुःख आता है। समता से दुःखों को सहन करना। श्री नवकार महामंत्र के जाप से एवं पंचपरमेष्ठी भगवंतों के ध्यान से तेरा समताभाव अक्षुण्ण बना रहेगा! दुःख अपने-आप दूर होंगे। सुख का सागर उछलने लगेगा। तेरी जीवन नौका भवसागर से तीर पर पहुँच जाएगी।’

सुरसुंदरी का दिल गद्गद् हो उठा। साध्वीजी को उसने मानसवंदना की। उनकी शरण अंगीकार की।

सूर्य अस्ताचल की ओट में डूब गया। द्वीप पर अँधेरे की श्याम चादर फैलने लगी। सागर की तरंगों की गर्जना सुनायी देने लगी।

सुरसुंदरी किनारे पर ही स्वच्छ रेत में बैठ गयी। उसने पद्मासन लगाया। दृष्टि को नासाग्र भाग में स्थिर की और श्री नमस्कार महामंत्र का जाप प्रारंभ किया।

उसे मालूम था कि मन जब अस्वस्थ और अशांत हो तब जाप मानसिक नहीं वरन् वाचिक करना चाहिए। मृदु व मध्यम सुर में उसने महामंत्र नवकार का उच्चारण करना शुरू किया।

देह स्थिर थी। मन लीन था। महामंत्र के उच्चारण के साथ ही मंत्रदेवताओं ने उसके इर्दगिर्द आभा-मंडल रच दिया था। उसके मस्तक के आस-पास तेजपुंज रच गया था। उसके हृदय में पंचपरमेष्ठी भगवंतों का अवतरण हुआ था। वातावरण में पवित्रता का पुट मिल रहा था।

उस वक्त सुरसुंदरी के सामने अँधेरे में से एक आकृति प्रकट होने लगी। क्रूरता व भयानकता से भरी थी वह आकृति। उस आकृति की डरावनी आँखे सुरसुंदरी पर स्थिर न हो सकी। उसकी आँखे चौंधियाने लगीं।

वह आकृति थी यक्ष की, मानव भक्षी यक्ष की।

महामंत्र नवकार की ध्वनि उसके श्रवणपुट में पड़ी।

उस दिव्य ध्वनि में यक्ष की क्रूरता का बर्फ पिघलने लगा।

उसके दिल में प्रश्न जगा। उसने निकट जाने की इच्छा की... पर वह न जा सका। सुरसुंदरी का तेज उसके लिए असह्य हुआ जा रहा था। वह खड़ा ही रहा।

सुरसुंदरी ने १०८ बार नवकार मंत्र का जाप किया और आँखें खोली। उसने यक्ष को सामने देखा। यक्ष नजदीक आया। उसके भीतर में वात्सल्यता का झरना बहने लगा। कोमल व भीगे स्वर में उसने पूछा :

‘बेटी, तू कौन है? इस द्वीप पर अकेली क्यों है?’

‘ओ पिता के समान यक्षराज! जीवात्मा के पाप कर्म जब उदय में आते हैं, तब स्नेही भी शत्रु हो जाता है... मेरा पति मुझे अकेली यहाँ छोड़कर चला गया है।’

‘तेरा कोई अपराध?’

‘अपराध तो हुआ था बचपन में, सजा हुई है जवानी में।’

‘बेटी तू यहाँ निर्भय है। मेरा तुझे अभय वचन है।’

‘हे यक्षराज! अब मुझे कोई और किसी का भी भय नहीं है! चूँकि अब मुझे इस जीवन की भी स्पृहा नहीं है। अब मुझे आप अपना भक्ष्य...’

‘नहीं... बेटी... नहीं! तू तो पुण्यशीला नारी है। मैंने तेरा तेज देखा है। तेरे पर तो दैवी कृपा है। तुझे कोई नहीं मार सकता बेटी। अरे तुझे कोई छू भी नहीं सकता... पर एक बात कहूँ? तू अभी जिस मंत्र का जाप कर रह थी... वह मंत्र मुझे बताएगी? मुझे वह मंत्र बहुत अच्छा लगा। मैं तो सुनता ही रहा।’

‘वह महामंत्र नवकार है, यक्षराज! मेरी गुरुमाता ने मुझे यह महामंत्र दिया है। मैं रोजाना इसका जाप करती हूँ! मेरे लिए तो यही एक शरण्य है।’

‘सचमुच तू धन्य है! मैं तुझे अपनी बेटी मानता हूँ। अब तू मुझे बता कि मैं तेरे लिए क्या करूँ?’

‘मेरे लिए आप कष्ट न उठाएँ... मुझे अपनी किस्मत के भरोसे छोड़ दें।’

‘नहीं... ऐसा कैसे होगा? यह मेरा द्वीप है... तू मेरे द्वीप पर आयी है, तो मेरी अतिथि है - मेहमान है। तेरी सार-संभाल रखना यह तो मेरा कर्तव्य है।’

‘तो क्या मुझे मेरे पति के पास पहुँचा देंगे आप?’

पिता मिल गये

९७

‘ज़रूर! पर कुछ दिन तुझे यहाँ रहना होगा। बेनातट नगर की ओर जानेवाला कोई जहाज़ यहाँ से गुजरेगा... उसमें तुझे बिठा दूँगा। तुझे बेनातट में तेरे पति का मिलन होगा।’

‘तो मैं आपका उपकार कभी नहीं भूलूँगी।’

‘ओह! तेरी कृतज्ञता-गुण कितना महान है! मैं तेरे पर प्रसन्न हूँ बेटी, अब मैं तेरी ज़बान से तेरी रामकहानी सुनना चाहता हूँ। यदि तुझे एतराज न हो, तो बचपन से लेकर आज तक की बातें मुझे बता! बताएगी न मुझे, बेटी?’

‘ज़रूर... जब आपने मुझे बेटी माना है, तो फिर आपसे क्या छुपाऊँ?’

सुरसुंदरी ने अपना सारा वृत्तांत यक्ष को कह सुनाया। पर उसमें कहीं भी अमरकुमार के प्रति कटुता या दुराव नहीं आया, तब यक्ष ने परेशानी से पूछा :

‘बेटी तू राजकुमारी है... क्या तुझे अपने पति के प्रति गुस्सा नहीं आया?’

‘उन पर गुस्सा क्यों करूँ? वे तो गुणवान पुरुष हैं... मेरे ही पापकर्म उदय में आये, इसलिए उन्हें मेरा त्याग करने की सूझी। वे तो निमित्त बने हैं।’

‘पर उसने तुझको दुःखी तो किया है न?’

‘उन्होंने मुझे दुःखी नहीं किया, मेरे ही पापकर्मों के उदय से दुःखी हुई हूँ। फिर भी अब वह दुःख चला गया।’

‘किस, तरह?’

‘पति छोड़ गये... पर पिता जो मिल गये! अब मैं दुःखी नहीं हूँ।’

‘तू दुःखी हो भी नहीं सकती कभी... तेरे पास नवकार मंत्र जो है।’

‘मेरा शील अखंड रहे, तब-तक मैं सुखी ही हूँ।’

‘बेटी, तेरे नवकार मंत्र के प्रभाव से तेरा शील अखंड ही रहेगा। इस द्वीप पर तू तेरी इच्छानुसार रहना और घूमना। मैं तुझे चार उपवन बता देता हूँ। तुझे यह स्थान पसंद आ जाएगा। उपवन में मनचाहे मधुर फल मिलेंगे। मीठा-मधुर पानी मिलेगा... और कोमल पर्ण की शय्या मिलेगी।

‘बस... बस... इससे ज्यादा मुझे ओर चाहिए भी क्या?’

‘तो चल, मेरे साथ उपवन में चलें।’

सुरसुंदरी ने इस दौरान काफी स्वस्थता पा ली थी। यक्षराज के साथ वह उपवन की ओर चली।

पिता मिल गये

९८

उपवन में पहुँच कर यक्ष ने उसे पर्णशय्या बताकर कहा : 'बेटी, यहाँ पर तू रात बिताना। सुबह मैं वापस आकर तुझे यह उपवन एवं अन्य तीन उपवनों में ले चलूँगा। वहाँ तुझे कई आश्चर्यजनक चीजें बताऊँगा।'

सुरसुंदरी ने पर्णशय्या पर विश्राम किया। यक्ष वहाँ से चला गया।



श्री नमस्कार महामंत्र के स्मरण के साथ सुरसुंदरी ने शय्यात्याग किया। पूरब दिशा में उषा का आगमन हो चुका था। वृक्ष पर से पक्षीगण उड़ान भरते हुए दूर-दूर जा रहे थे।

सुरसुंदरी खड़ी हुई... और उपवन में टहलने लगी। इतने में पीछे से आवाज आयी :

'बेटी, कुशलता तो है न?' सुरसुंदरी ने पीछे झाँका तो यक्षराज प्रसन्न चित्त से वहाँ खड़े थे।

'पंच परमेष्ठी भगवंतों की कृपा से व आपके अनुग्रह से मैं कुशल हूँ।'

'चलो, अब वृक्षों का परिचय करवाऊँ।'

'एक वृक्ष के नीचे जाकर दोनो खड़े रहे। यक्ष ने कहा : 'इस वृक्ष की डाली को स्पर्श करेगी तो ये डालियाँ नृत्य करने लगेगी! सुरसुंदरी ने स्पर्श किया और डालियों का नृत्य चालू हो गया!

'अब हम दूसरे उपवन में चलें।' यक्षराज सुरसुंदरी को लेकर दूसरे उपवन में आये।

'देख, यह झरना जो बह रहा है... इसके पानी में नजर डाल... तू जो दृश्य देखना चाहेगी... वह दृश्य तुझे दिखेगा। तुझे इतना ही बोलने का कि मुझे यह देखना है।' सुरसुंदरी पानी में निगाहे डालती हुई बोली : 'मेरे स्वामी अभी जहाँ हो उसका दृश्य देखना है।' तुरंत समुद्र के पानी पर तैरते जहाज़ दिखायी दिये। जहाज़ के एक कमरे में बैठा अमरकुमार भी दिखाइ दिया। सुरसुंदरी चीख उठी... 'अमर!'

यक्ष ने कहा : 'बेटी, यह तो मात्र दृश्य है! तेरी पुकार वह कहाँ से सुनेगा? देख... वह उदास-उदास लग रहा है न? उसे भी शायद पश्चाताप हुआ होगा त्याग करके!'

अब आगे चलें... तीसरे उपवन में तुझे एक अदभुत चीज देखने को मिलेगी!'

पिता मिल गये

९९

दोनों तीसरे उपवन में आये। वहाँ एक सुंदर सरोवर था। यक्ष ने कहा : 'बेटी, इस सरोवर में से तू जो माँगेगी वह जानवर प्रगट होगा। बस, इस उपवन की एक चुटकी रेत लेकर सरोवर में डाल।'

सुरसुंदरी ने चुटकी रेत भर लेकर सरोवर में डाली और बोली; 'हिरन का एक जोड़ा प्रगट हो!' और सरोवर में से हिरन-हिरनी का एक लुभावना जोड़ा बाहर आया! सुरसुंदरी ने उस जोड़े का अपने उत्संग में ले लिया! यक्ष हँस पड़ा।

'बेटी, अभी इसे छोड़ दे! फिर तेरी इच्छा हो तब यहाँ चली आना और खेलना...! अभी तो चौथा उपवन देखना बाकी है।'

दोनों चौथे उपवन में आये। यहाँ पर रंगबिरंगे लतामंडप छाये हुए थे। सैकड़ों सुगंधित फूलों की बेलें इधर-उधर फैली थी। यक्ष ने कहा : 'सुंदरी, यहाँ तुझे जिस मौसम के फूल चाहिए... वे तुझे मिल जाएँगे। तुझे मनपसंद ऋतु का आह्वान करना है।'

सुरसुंदरी ने तुरंत ही वसंत ऋतु का आह्वान किया... और वसंत ऋतु के फूलों से उपवन महक उठा!

'यह मेरे चार उपवन हैं। अभी तक तो इन उपवनों में मेरे अलावा और कोई नहीं आ सकता था, पर अब तेरे लिए यह उपवन खुले हैं। जब भी मन हो यहाँ घूमने चले आना। तेरा समय भी आनंद से व्यतीत होगा। मैं रोजाना सुबह और शाम तेरे पास आऊँगा। यहाँ तू और किसी भी तरह का डर मत रखना। तू यहाँ निर्भय व निश्चिंत रहना।'

यक्ष आकाश में अदृश्य हो गया। सुरसुंदरी स्तब्ध होकर ठगी-ठगी सी खड़ी रह गयी।

यह सारा प्रभाव श्री नवकार का है... वन में उपवन मिल गया! यक्ष प्रेम भरे पिता बन गये। श्मशान भूमि जैसे स्वर्ग बन गयी। ओह! इस महामंत्र की महिमा अपार है! गुरुमाता ने मेरे पर कितना उपाकर किया है यह मंत्र देकर! अगर आज मेरे पास यह, मंत्र नहीं होता तो? उसने मन ही मन गुरुमाता को नमस्कार किया।





सुरसुंदरी ने पहले उपवन में अपना थोड़े दिन के लिए स्थान बना दिया। यक्षराज ने छोटी-सी एक पर्णकुटीर बना दी थी। सुरसुंदरी अपना अधिकांश समय श्री नवकार मंत्र के जाप में व अरिहंत परमात्मा के ध्यान में ही बिताती थी।

सुबह नित्यकर्म से निपटकर वह समुद्र के किनारे चली जाती और दूर-दूर समुद्र की सतह पर निगाह डालती। वह किसी ऐसे यात्री जहाज़ की प्रतीक्षा कर रही थी, जो जाहज़ बेनातट नगर की ओर जा रहा हो। एकाध प्रहर समुद्र के किनारे बिताकर वह फिर उपवन में लौट आती... और चारों उपवनों में परिभ्रमण करती। तीसरे प्रहर में वह चौथे उपवन में पहुँच जाती व जलाशय में से हिरन प्रकट करके उनके साथ खेलती रहती। चौथे प्रहर में पुनः वह पहले उपवन में आकर, अपनी पर्णकुटीर में आसन लगाकर श्री नमस्कार महामंत्र का जाप करती थी। सूर्यास्त के पूर्व फलाहर करके वह पुनः समुद्रतट पर घूमने के लिए चली जाती।

यक्षराज की उसपर कृपा दृष्टि थी।

अतः उसे किसी बात का डर नहीं था।

उसके दिल में शीलधर्म था और उसके होठों पर श्री नवकार महामंत्र था।

एक ही इच्छा थी-तमन्ना थी कि बेनातट पर पहुँचकर अमरकुमार से मिलना। उसके मन को अब प्रतीति हो चुकी थी मेरा शीलधर्म मेरी रक्षा करेगा ही। मेरा नवकार महामंत्र जाप और मेरे शीलधर्म, मेरी रक्षा करेगा ही। मेरा नवकार महामंत्र जाप मेरे शीलधर्म को आँच नहीं आने देगा।

यक्षद्वीप पर एक सप्ताह बीत चुका था।

आठवाँ दिन था। नित्यक्रम के मुताबिक सुरसुंदरी सुबह समुद्र के किनारे पर पहुँची। वातावरण आह्लादक था। समुद्र भी शांत था। सुरसुंदरी स्वच्छ भूमि खोजकर बैठ गयी, परमात्मा के ध्यान में अपने मन को लगा लिया।

इतने में दूर-दूर... समुद्र की ओर से आदमियों का शोर सुनायी देने लगा। सुरसुंदरी ने अपना ध्यान पूर्ण किया और वह खड़ी हो गयी।

एक जहाज़ यक्षद्वीप की ओर आ रहा था। सुरसुंदरी का दिल हर्ष से उछलने लगा।

फिर सपनों के दीप जले!

१०१

एकाध घटिका में तो जहाज़ किनारे पर आ पहुँचा। फटाफट आदमी किनारे पर उतरकर आ गये। उन्हें मीठा जल भरना था।

उन लोगों ने दूर खड़ी सुरसुंदरी को देखा। देखते ही रह गये... वे जहाज़ में से उतर रहे अपने मालिक के पास दौड़ते हुए गये और बोले : 'सेठ, वहाँ देखिए! सुरसुंदरी की ओर इशारा करते हुए उन्होंने श्रेष्ठी का ध्यान खिंचा। श्रेष्ठी की दृष्टि सुरसुंदरी पर गिरी। वह भी देखता ही रह गया। आदमियों ने पूछा : 'यह कौन होगी इस निर्जन-डरावने द्वीप पर?'

'इस द्वीप की अधिष्ठात्री देवी लगती है। तुम चिंता मत करो... मैं उस देवी के पास जाता हूँ। तुम अपना काम करो।'

श्रेष्ठी सुरसुंदरी के पास आया। साष्टांग प्रणिपात किया, दोनो हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर खड़ा रहा।

सुरसुंदरी समझ गयी थी वह व्यापारी मुझे देवी मानकर नमस्कार कर रहा है। उसने कहा, 'मैं कोई देवी नहीं हूँ... मैं तो एक मानव स्त्री हूँ!'

'मैं यहाँ पर मेरे पति के साथ आयी थी। हम सिंहलद्वीप जाने के लिए निकले थे। पर मेरा पति मुझे यहाँ छोड़कर, सोयी हुई छोड़कर चला गया। इसलिए मैं यहाँ पर अकेली रह गयी हूँ। मैं किसी ऐसे जहाज़ की खोज में हूँ जो सिंहलद्वीप की ओर जाता हो या फिर चंपानगरी की तरफ जानेवाला कोई जहाज़ मिल जाए।'

'तुम यदि मेरे साथ आना चाहो तो मैं तुम्हें सिंहलद्वीप ले चलूँगा।' श्रेष्ठी सुरसुंदरी के रूप को अपनी भूखी नज़रों से पी रहा था, पर उसने अपनी वाणी में संयम रखा... शालीनता का प्रदर्शन किया। सुरसुंदरी को साथ ले चलने की बात, उसने बड़े सलीके से कही। सुरसुंदरी भी चतुर थी। एक अनजान परदेशी के साथ समुद्री यात्रा के भयस्थान से वह परिचित थी। और फिर वह खुद पति से बिछुड़ी युवती थी, पुरुष की कमजोरी से वह भली-भाँति परिचित थी। इसलिए उसने श्रेष्ठी से कहा :

'आप यदि मुझे सिंहलद्वीप तक ले चलेंगे तो मैं आपका उपकार नहीं भूलूँगी। पर मेरी एक शर्त आप यदि मानें तो ही मैं आपके साथ आ सकती हूँ।'

'क्या शर्त है? जो भी कहोगी... मैं ज़रूर स्वीकार करूँगा।'

'या तो तुम्हें मुझे अपनी बहन मानना होगा... या फिर बेटी मानना होगा। मेरे पति के अलावा दुनिया के सभी पुरुष मेरे लिए या तो भाई हैं... या पिता हैं।'

फिर सपनों के दीप जले!

१०२

‘तुम्हारी बात मुझे मंजूर है। तुम चलो मेरे साथ, यहाँ हम को जल्दी-जल्दी निकलना है।’

‘तो मैं उपवन में जाकर अभी वापस आती हूँ... तुम मेरी प्रतीक्षा करोगे न?’

‘बिलकुल। तुम जाओ... अपना जो कार्य निपटाना हो निपटाकर चली आओ।’

‘तुम्हारा बड़ा एहसान!’ सुरसुंदरी ने श्रेष्ठी को सिर झुकाकर प्रणाम किया और जल्दी-जल्दी चलती हुई वह उपवन में आ पहुँची। चूँकि उसे यक्षपिता की इजाजत लेनी थी।

जैसे ही वह उपवन में प्रविष्ट हुई कि यक्षराज प्रगट हुए और बोले : ‘बेटी... आज तू चली जाएगी न?’

‘जी हाँ, एक सहारा मिल गया है... एक सेठ जहाज़ लेकर सिंहलद्वीप की ओर जा रहे हैं।’

‘मैं जानता हूँ...’

‘मैं आपकी इजाजत लेने के लिए आयी हूँ।’

‘मेरी अनुमति है... पर!’

‘परंतु क्या, यक्षराज?’

‘समुद्री यात्रा है... साथी भी अनजान है... इसलिए पूरी सजग रहना बेटी।’ यक्षराज की आवाज गीली हो गयी।

‘आपका हाथ मेरे सिर पर है... फिर मुझे चिंता काहे की?’

‘बेटी... दरअसल मैं चाहने पर भी मैं तेरे साथ नहीं रह सकता। तू जब इस द्वीप को छोड़कर आगे बढ़ेगी... तब मैं तुझे न तो देख सकूँगा, न ही सहायक बन सकूँगा, चूँकि मेरा अवधिज्ञान इस द्वीप तक ही सीमित है।’

‘ठीक है... पर आपके अतःकरण के आशीर्वाद तो मेरे साथ हैं न? फिर... श्री नवकार महामंत्र तो मेरे दिल में है ही। उसके अर्चित्य प्रभाव से मेरा शील सुरक्षित ही रहेगा।’

‘ज़रूर-ज़रूर, बेटी! महामंत्र नवकार तो सदा तेरी रक्षा करेगा ही। मुझ जैसे क्रूर दिल के यक्ष को जिस महामंत्र ने बदल दिया... वह महामंत्र तो अद्भुत है।’

‘आप मुझे आशीर्वाद दें... ताकि मैं किनारे पर पहुँच जाऊँ।’

‘मेरे दिल के तुझे अनंत-अनंत आशीर्वाद हैं, बेटी। प्रसन्न मन से यात्रा करना। तुझे बहुत जल्द तेरे पति का संयोग हो जाए, यही मेरी दुआ है।’

फिर सपनों के दीप जले!

१०३

यक्षराज ने सुरसुंदरी के मस्तक पर हाथ रखा और सुरसुंदरी प्रणाम करके समुद्र किनारे की ओर चली।

श्रेष्ठी सुरसुंदरी की राह देख रहा था।

‘मुझे आने में थोड़ी देर हो गयी... नहीं? क्षमा करना।’ सुरसुंदरी ने श्रेष्ठी से क्षमा माँगी।

‘नहीं... नहीं... कोई देर नहीं हुई। वैसे अभी-अभी तो मेरे आदमी भी पानी भर कर जहाज़ में चढ़े हैं। अब हम जहाज़ में चढ़ जाँएँ। ताकि समय पर यहाँ से निकल जाँएँ।’

सुरसुंदरी को जहाज़ में चढ़ाते समय श्रेष्ठी ने उसकी बाँह पकड़कर सहारा दिया। सुरसुंदरी के शरीर का स्पर्श होते ही श्रेष्ठी सिहर उठा। सुरसुंदरी तो उत्साह में थी। उसके दिमाग में अमरकुमार से मिलने की तमन्ना उछल रही थी। उसे ख्याल भी नहीं आया... श्रेष्ठी के स्पर्श का। वह जहाज़ में चढ़ गयी। उसके पीछे श्रेष्ठी भी चढ़ गया।

श्रेष्ठी ने सुरसुंदरी को, अपने कक्ष से सटे हुए कक्ष दिखाकर कहा : ‘यहाँ तुझे सुविधा रहेगी न? इस कक्ष में तेरे अलावा और कोई नहीं रहेगा। यहाँ सब तरह की सुविधाएँ हैं।’

कक्ष छोटा था पर स्वच्छ था, सुंदर था व सुंदर ढंग से सजाया हुआ था। सुरसुंदरी ने कहा :

‘पितातुल्य महानुभाव! इससे छोटा मामूली कक्ष होगा तो भी मेरे लिए चल जाएगा।’

‘क्यों? मेरे जहाज़ में तुझे किसी भी तरह की कमी महसूस नहीं होनी चाहिए। और तू किसी भी तरह की चिंता मत करना। जहाज़ के सभी आदमियों को मैंने सूचना दे दी है... सब तेरे हर हुक्म का पालन करेंगे।’

‘आप यह सब करके मुझपर उपकार का भार बढ़ा रहे हैं।’

‘आप सचमुच महापुरुष हैं।’ सुरसुंदरी अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए गद्गद् हो उठी।

‘अच्छा, ये कपड़े तेरे लिए रखे हैं। गंदे कपड़े निकाल कर ये स्वच्छ कपड़े पहन लेना। स्नान के लिए भी कमरे में ही सुविधा है। फिर हम साथ-साथ भोजन करेंगे।’

फिर सपनों के दीप जले!

१०४

सुरसुंदरी ने सात-सात दिन से अनाज खाया नहीं था। केवल फलाहार ही किया था। श्रेष्ठी की भोजन की बात सुनकर उसकी भूख भड़क उठी। जल्दी-जल्दी स्नानघर में घुसकर उसने स्नान किया एवं वस्त्र-परिवर्तन करके स्वस्थ होकर बाहर निकली।

थोड़ी ही देर में श्रेष्ठी खुद आकर सुरसुंदरी को भोजन करने के लिए ले गया। बहुत आदर व आग्रह करके खाना खिलाया और कहा : 'अब तू निश्चित मन से आराम करना। मैं भी अपने कमरे में आराम करूँगा। कोई भी काम हो तो मुझे बुला लेना।'

सुरसुंदरी अपने कमरे में गयी... कमरे का दरवाजा बंद किया और पलंग पर लेट गयी... भोजन करने के बाद सोने की आदत सुरसुंदरी को थी नहीं। उसे नींद नहीं आयी। सोचने लगी। दिमाग में विचारों का काफिला उतरने लगा :

'मैं अनजान... यह श्रेष्ठी भी अनजान। फिर भी मुझपर कितनी दया की इसने? मेरी कितनी देखभाल कर रहा है? अच्छा हुआ जो मुझे ऐसा सुंदर साथ मिल गया... वर्ना! अब तो कुछ ही दिनों में अमरकुमार से मिलना भी हो जाएगा। वह तो मुझे जिंदा देखकर भड़क उठेगा। नहीं... नहीं... शर्मिदा हो जाएगा। हालाँकि पीछे से तो उसको अपनी गलती का ख्याल आया ही होगा। गुस्सा उतर जाने के बाद आदमी को अपनी गलती का अहसास होता है अक्सर। पर क्या वह अपनी गलती मानेगा सही? चाहे ना माने! मैं उसे ज़रा भी कटुवचन नहीं कहूँगी, न ही ताने कसूँगी। जैसे कुछ हुआ ही नहीं, ऐसा ही व्यवहार करूँगी।'

'ओह... मैंने इस श्रेष्ठी का परिचय तो पूछा ही नहीं। अरे... इसका नाम भी नहीं पूछा! वह मुझे कितनी अविवेकी समझेगा? हाँ, पर मैं भी स्वार्थी ही हूँ न? मेरा काम बन गया... तो नाम पूछने जितना विवेक भी भूल गयी। अब पूछ लूँगी... और उससे कोई काम हो तो करने के लिए भी माँग लूँगी। आदमी तो भला लगता है। नवकार मंत्र के प्रभाव से यह सब कितना अनुकूल मिलता जा रहा है? अशरण के लिए शरणरूप यह महामंत्र मेरे तो प्राणों का सहारा है। सचमुच उन साध्वीमाता सुव्रता ने मुझपर कितना बड़ा

उपकार किया है? उन्होंने मुझे चिंतामणि रत्न दिया है।'

विचार ही विचार में वह कब सो गयी... उसका उसे ख्याल ही नहीं रहा। जब वह जागी तब दिन का तीसरा प्रहर पूरा होने आया था। वह आनन-फानन खड़ी हुई। वस्त्र वगैरह ठीक किये और दरवाजा खोला... उसे ताज्जुब

फिर सपनों के दीप जले!

१०५

हुआ। वह दिन में कितनी सो गयी थी? चारों ओर सागर फैला हुआ था... उछलती मौजें... और पानी की गर्जना।

यक्षद्वीप पर रहकर सात दिन में उसने सागर से दोस्ती कर ली थी। सागर को देखने में उसे आनंद मिलता था। वह अपलक निहारती रही सागर के अनंत-असीम फैलाव को। उसके पीछे श्रेष्ठी धनंजय कब का आकर खड़ा हो गया था। सुरसुंदरी को पता नहीं था।

‘क्यों सिंहलद्वीप की याद सता रही है क्या?’ श्रेष्ठी ने हँसते हुए पूछा तो सुरसुंदरी चौंकी। झंपते हुए उसने पीछे मुड़कर देखा। धनंजय हँस रहा था। उसने सुंदर कपड़े पहन रखे थे। उसके कपड़ों से खूशबू आ रही थी। ‘अभी तो बहुत दिनों की यात्रा करनी है। तब कही जाकर सिंहलद्वीप पहुँचेंगे।’

‘ओह, पर मैं आपका नाम तो पूछना ही भूल गयी।’

‘मुझे लोग श्रेष्ठी धनंजय नाम से जानते हैं।’

‘आपकी जन्मभूमि?’

‘मैं अहिच्छत्रा नगरी का निवासी हूँ।’

‘अच्छा, वह तो हमारी चंपा से ज्यादा दूर नहीं है।’

‘बिलकुल ठीक है, मैंने चंपा भी देखी है। व्यापार के सिलसिले में चंपा का दौरा किया था।’

‘तब तो आप सिंहलद्वीप भी शायद व्यापार के लिए ही जा रहे होंगे?’

‘हाँ... व्यापार का बहाना तो है ही। वैसे दूर-दराज के अनजान देश-परदेश को देखने का शौक भी मुझे बहुत है।’

धनंजय की आँखे बराबर सुरसुंदरी की गदरायी हुई देह पर फिसल रही थी। स्नान वगैरह के बाद उसका अछूता रूप और निखर गया था। अब तो उसका मन खुशी था, तो शरीर पर भी खुशी लालिमा बनकर उभर रही थी। सुरसुंदरी के पारदर्शी कपड़ों में से छलके जोबन में धनंजय का पापी मन लार टपकाता हुआ झाँक रहा था।

सुरसुंदरी को इसका तनिक भी अंदाजा नहीं लग पाया था। दुनियादारी से अनजान भोली हिरनी-सी सुरसुंदरी बेचारी धनंजय को अपने पिता जैसा समझकर उससे खुलकर बोल रही थी, पर धनंजय! उसकी शिकारी आँखे सुरसुंदरी के सौंदर्य की प्यासी हुई जा रही थी।



१७. समुंदर की गोद में

सावन भादों के बादलों के उत्संग में इन्द्रधनुष के जैसे रंग उभरते हैं, वैसे ही रंगों में श्रेष्ठी धनंजय डूबने लगा। धनंजय जवान था, छबीला नवजवान था। सुरसुंदरी की देह में से उसे खुशबू, भीगे-फूलों की गंध आ रही थी। सुरसुंदरी का प्यार पाने के लिए उसका दिल बेताब हो उठा था, पर वह अपनी अधीरता को व्यक्त करना नहीं चाहता था। वह चाहता था कि सुरसुंदरी खुद उसके रंग में रंग जाए। सुरसुंदरी स्वयं उसे प्यार करने लगे।

सुरसुंदरी तो बेचारी धनंजय के सारे व्यवहार को सौजन्य समझ रही थी। यक्षद्वीप पर धनंजय के दिये वचन को वह ब्रह्म वाक्य समझकर निश्चिंत हो गयी थी। फिर भी कभी-कभी धनंजय की निगाहों को अपने शरीर पर फिसलती देखकर उसे धक्का-सा लगता था। 'यह क्यों मेरी देह को इस तरह टुकुर-टुकुर देखता है?' उसने सोच-समझकर कपड़े पहनने में मर्यादा की रेखा खींच ली। महीन वस्त्र पहनना छोड़ दिया।

एक दिन सुरसुंदरी अपने कक्ष में बैठी थी। अतीत की यादों में खोयी-खोयी कुछ सोच रही थी कि, धनंजय ने कमरे में प्रवेश किया। समीप में पड़े हुए भद्रासन पर बैठ गया और बोला :

'सुरसुंदरी... आज मेरे मन में तेरे बारे में एक विचार आया और मेरा दिल बहुत दुःखी हो उठा।'

'मेरे खातिर आपका दिल दुःखी हुआ, मेरी ऐसी कौन सी गलती...?'

'नहीं... नहीं। तू गलत मत समझ। मैं तो और ही बात कर रहा हूँ। तेरी गलती कुछ नहीं... भूल तो उस अमरकुमार की है।'

'नहीं, ऐसा मत बोलिए! उनकी कोई गलती नहीं है, यह तो मेरे ही पापकर्मा का उदय है।'

'बिलकुल गलत। तेरा सोचने का ढंग ही गलत है। यह क्या? उसकी गलती का फल तू भोगे? तू चाहे तो तेरे पुण्यकर्म अपने आप उदय में आ सकते हैं। अभी इसी वक्त उदय में आ सकते हैं। पर इसके लिए मुझे तेरे मन में से उस निर्दय अमरकुमार को दूर करना होगा।'

समुंदर की गोद में

१०७

‘आप कैसी बातें कर रहे हैं? क्या हो गया है आज आपको? आदमी की जिंदगी में गलती तो होती ही रहती है...। भूल कौन नहीं करता? पर इससे क्या गलती करनेवाले अपनों को छोड़ दें? यदि इस तरह छोड़े तब तो फिर कोई संबंध टिक ही नहीं सकेगा? क्या कल मेरी गलती नहीं हो सकती? और फिर वह मेरा त्याग कर दे तो? स्वजनों की भूलों को तो परस्पर सह लेना चाहिए। यही एक सुखी व स्वस्थ जीवन जीने का तरीका है।’

‘पर कब तक सहन करें? सहने ही सहने में जवानी को जला देना क्या? सुख भोगने के अवसर मिले तो भी उससे लाभ न उठाना, कहाँ तक बुद्धिमानी की बात होगी?’

‘अपने प्रेमी के प्रहार सहने में भी जिंदगी का एक मजा होता है, मेरे भाई।’

सुरसुंदरी ने ‘भाई’ शब्द पर भार रखा। धनंजय को यह संबोधन अच्छा नहीं लगा। वह बोला :

‘यह प्रहार तो जानलेवा हैं सुन्दरी। सहन करने की भी हद होती है। हाँ, अन्य कोई प्यार करने या देनेवाला न हो तब तो ठीक है सहन किया कर, पर जब प्रहार करनेवाले प्रेमी से भी ज्यादा प्यार करनेवाला स्नेही मिल जाए तो उसको अपना लेना चाहिए।’

‘भैया... इसलिए तो तुम्हारे साथ आयी हूँ।’

‘भैया’ शब्द को नजरअंदाज करते हुए धनंजय खुशी में पागल हो उठा। ‘क्या कहा? तो क्या तू मुझे अमर से भी ज्यादा चाहने लगी हो? क्या तू मुझे प्यार करती हो? अरे, मैं तो धन्य हो गया आज!’ धनंजय अपने आसन पर से खड़ा होकर सुरसुंदरी के समीप आकर खड़ा हो गया।

‘मैं तुम्हें भाई के रूप में चाहती हूँ... क्या भाई-बहन का प्यार वह प्यार नहीं है?’

‘पागलपन की कैसी बात कर रही है? तू मुझे भाई मानती होगी... मैं तुझे बहन नहीं मान सकता। मैं तो तुझे केवल मेरी प्रियतमा के रूप में देख रहा हूँ... सुंदरी! ये सब सुख-सुविधा इसलिए तो तेरे लिए उपलब्ध करा रहा हूँ।’

धनंजय के इन शब्दों ने सुरसुंदरी को चौंका दिया। वह सावधान हो उठी। उसकी आँखों में से कोमलता गायब हो गई। फिर भी उसने संयत शब्दों में कहा : ‘तुमने मुझे वचन दे रखा है, क्या भूल गये उसे?’

समुंद्र की गोद में

१०८

‘नहीं... ऐसे वचन को निभाने की ताकत मुझ में नहीं है। मैं तुझे अपनी प्रिया बनाकर सुखी करूँगा। मेरा यही इरादा उस समय था और आज भी है।’

‘मैं सुखी हूँ ही। मुझे सुखी बनाने के ख्वाब देखने की ज़रूरत नहीं है। आपको अपना वचन निभाना चाहिए।’

‘एक बार तो मैंने कह दिया... मैं नहीं निभा सकता ऐसे वचन! मैं तो सुंदरी तेरी इस अप्सरा की तरह खूबसूरती का दिवाना हो चुका हूँ। मैं तेरी जवानी को देखता हूँ और मेरा अंग-अंग सुलग उठता है। मेरी रातों की नींद गायब हो गयी है। सुरसुंदरी, खाना-पीना भी हराम हो गया है...’

‘यह तो धोखा है, विश्वासघात है, तुम बड़े व्यापारी हो, तुम्हें इस तरह वचनभंग नहीं करना चाहिए। पर-स्त्रीगमन का पाप तुम्हारा सर्वनाश करेगा। भला, चाहो तो इस पापी विचार को इस समुद्र में फेंक दो।’

‘अरे, समुद्र में तो तू उस क्रूर अमरकुमार की याद को फेंक दे। मेरी पत्नी हो जा। यह अपार संपत्ति तेरे

कदमों में होगी। मेरे साथ संसार के स्वर्गीय सुख भोग ले। मैं तुझे कभी दुःखी नहीं होने दूँगा।’

धनंजय ने एकदम सुरसुंदरी का हाथ पकड़ लिया। सुरसुंदरी ने झटका देकर अपना हाथ छुड़ा लिया और वह दूर हट गयी। उसका मन गुस्से से बौखला उठा था, पर वह संघर्ष करने के बदले समझदारी से काम लेना चाहती थी। दिल में लावा उफन रहा था, पर उसने आवाज में नरमी लाकर कहा :

‘क्या तुम मुझे सोचने का समय भी नहीं दोगे?’

‘नहीं, अब तो तुम्हारे बगैर एक पल भी जीना दुश्वार है।’

‘तो मैं जीभ कुचलकर मर जाऊँगी या इस समुद्र में कूद जाऊँगी।’

‘नहीं-नहीं, ऐसा दुःसाहस मत करना सुंदरी! तुझे सोचना हो तो सोच ले। शाम तक निर्णय कर ले। बस! फिर तू इस अलग कमरे में नहीं रहेगी। मेरे कमरे में तेरा स्थान होगा। आज की रात मेरे लिए स्वर्ग की रात होगी।’

धनंजय कमरा छोड़कर चला गया। सुरसुंदरी के मुख में से शब्द बिखरने लगे : दुष्ट... बेशरम... तेरी आज की रात स्वर्गीय सुख तो क्या, पर नरक के दुःख में ना गुजरे तो... मुझे याद करना।’

समुंदर की गोद में

१०९

सुरसुंदरी ने तुरंत उठकर दरवाजा बंद किया अपने कमरे का, और पलंग पर लुढ़क गयी। पेड़ से कटी डाली की तरह! वह फफक-फफककर रो पड़ी।

‘अमर ने विश्वासघात किया... इस व्यापारी ने धोखा दिया। मेरे कैसे पापकर्म उदय में आये हैं? इससे तो अच्छा था मैं यक्षद्वीप पर ही रह जाती। कम-से-कम, मेरे शील की रक्षा तो होती। अमर को जरूरत होती, तो स्वयं आता मुझे खोजने के लिए वहाँ पर! मैं ही उसके मोह में मूढ़ हुई जा रही हूँ। उसके पास जाने के पागलपन में इस जहाज़ में चढ़ बैठी। न कुछ सोचा... न कुछ समझा! अनजान आदमी का औरत को एकदम भरोसा नहीं करना चाहिए, पर मैं कर बैठी। मैं इसके मीठे वचनों में फँस गयी। क्या दुनिया के सभी लोग ऐसे चरित्रहीन और बेवफा होते हैं? अब मैं किसी भी आदमी का भरोसा नहीं करूँगी कभी। जान की बाजी लगाकर भी मैं अपने शील का रक्षण करूँगी। यह दुष्ट मुझे अपनी संपत्ति का लालच दिखा रहा है, जैसे मैं भूखड़ हूँ... इसको क्या पता नहीं है कि मेरे पिता राजा हैं और मेरे पति धनाढ्य श्रेष्ठी! इसकी संपत्ति से ढेरों ज्यादा संपत्ति मेरे पीहर और ससुराल में है। मैं एक राजकुमारी हूँ... यह भी यह मूर्ख भूल गया।

यह मुझे अबला समझ रहा है... यह मुझे अनाथ... असहाय मान रहा है... इसलिए मेरी आबरू लूटने पर उतारू हो आया है... पर किसी भी क्रीमत् पर मैं अपने शील को बचाऊँगी। उसके हाथों नहीं बिकूँगी। श्री पंचपरमेष्ठी भगवंत सदा मेरी रक्षा करेंगे। मुझे उन की शरण है।’

और, उसे नवकार मंत्र याद आ गया। ‘ओह! आज जाप करना तो बाकी है... मैं भी कितनी भुलकड़ हुई जा रही हूँ इन दिनों।’ उसने जमीन पर आसन बिछाया और स्वस्थ मन से जाप करना प्रारंभ किया।

मद्धिम सुरों में उसने नमस्कार महामंत्र का जाप किया। धीरे-धीरे वह ध्यान की गहराई में डूबने लगी... ध्यान में डूबी उसे लगा कि कोई दिव्य आवाज उसे संबोधित कर रही है, ‘बेटी, समुद्र में कूद जा! निर्भय बनकर कूद जा सागर में।’

सुंदरी ने आंखे खोलकर कक्ष में चारों ओर देखा... ‘किसने मुझे समुद्र में कूद गिरने का आदेश दिया? यहाँ कोई तो नहीं?’... वह खड़ी हुई.. और खंड में टहलने लगी।

‘मुझे समुद्र में कूद जाना चाहिए... बिलकुल सही बात है... तो ही मेरा

समुंदर की गोद में

११०

शील अखंडित रहेगा। वर्ना यह कामांध बना सेठ मेरे पवित्र देह को कलंकित करके ही छोड़ेगा। प्राणहीन इस देह को भी यह मसल डालेगा।'

उसने कमरे की एक खिड़की खोल दी। समुद्र उछालें भर रहा था। वह अपलक देखती रही उसके उफनते पानी को! समुद्र गरज रहा था... जैसे कि वह सुरसुंदरी को बुला रहा हो। 'आ जा... बेटा! चली आ मेरी उत्संग में! तुझे और तेरे शील को जरा भी आँच नहीं आयेगी... निर्भय हो कर चली आ। तेरे दिल में धर्म है,

वैसे मेरे भीतर भी धर्म है... आ जा... भरोसा रखकर।'

सुरसुंदरी ने मन ही मन निर्णय किया सागर की गोद में समा जाने का। उसके चेहरे पर निश्चिंतता उभरी।

दरवाजे पर दस्तक हुई। सुंदरी ने दरवाजा खोला, देखा सामने धनंजय खड़ा है।

'चल, भोजन कर ले।'

'नहीं... मुझे खाना नहीं खाना है।

'क्यों?'

'भूख नहीं है...'

'अच्छा ठीक है... विचार कर लिया?'

'हाँ!'

'मेरी बात कबूल है न?'

'इतनी जल्दबाज़ी मत करो। हम साँझ की बेला में जहाज़ के डेक पर चलेंगे... वहाँ बैठेंगे... ढलते सूरज के साये में और उछलते सागर को छूते हुए निर्णय करेंगे... पर हाँ, वहाँ पर उस समय हम दोनों के अलावा और कोई नहीं होना चाहिए।'

'वाह...! वाह...! वाह...! क्या पसंद है तेरी! समय और जगह कितनी बढ़िया पसंद किया? और तो और, तू तो जैसे कविता करने लग गयी। मुझे विश्वास था ही... मेरा प्यार तेरे पत्थर दिलको मोम कर ही देगा। हाँ, मैं सूचना दे दूँगा कि हम दोनों के अलावा वहाँ पर कोई नहीं रहेगा।'

'तो मैं कपड़े वगैरह बदल लूँ...?'

'मैं भी अच्छे कपड़े पहन लूँ?'

समुंद्र की गोद में

१११

‘आपको भोजन करना हो तो कर लिजिए।’

‘नहीं... अब तो मैं अपना मनचाहा भोजन ही करूँगा।’ उसने ललचायी निगाहों से सुरसुंदरी की देह को देखा।

सुरसुंदरी ने धनंजय के जाते ही अपने कक्ष के द्वार बंद किये। सुंदर कपड़े पहने। ध्यान में लीन होने के लिए वह बैठ गयी। श्री नमस्कार महामंत्र के ध्यान में लीन हो गयी। उसके अंग में सिहरन फैलने लगी। जैसे कोई अनजान शक्ति उसके भीतर प्रगट हो रही थी। उसने आँखे खोली। खड़ी हुई और दरवाज़ा खोलकर बाहर निकली।

धनंजय भी इधर स्वर्ग के सुख की आशा में झुलता-झुलता डेक पर आ पहुँचा। दोनों जहाज़ के किनारे पर जाकर एक पाट पर बैठ गये। नाविक व अन्य नौकर वहाँ से खिसक गये।

सूरज डूबने की तैयारी में था। समुद्र में तूफान उठने के पहले की खामोशी छायी थी। क्षितिज धुँधलके में अदृश्य-सा घिर गया था। धनंजय का तो कलेजा मानो गले में आ गया था।

‘सुंदरी... ला... तेरा हाथ। मेरे हाथों में दे। कितना खूबसूरत समाँ है? इस ढलते सूरज की सौगंध हम लेकर एक-दूसरे के होने का वादा करें।’

‘धनंजय!’ सुरसुंदरी ने पहली बार नाम लेकर पुकारा :

‘आज समुद्र में तूफान उठ रहा हो ऐसा लगता है। अपना जहाज **डॉवाडोल** हो रहा है...’

‘नहीं री सुंदरी... यह तो नाच रहा है... हम दोनों के मिलन की खुशी में।’

‘पर यह नृत्य, शिव का तांडव नृत्य हो गया तो!’

‘तू कैसी बातें कर रही है, ऐसे सुंदर समय में।’

‘सच कह रही हूँ... धनंजय! मुझे तेरा सर्वनाश नजर आ रहा है... अब भी सोच ले, वरना...’

‘सुंदरी!’ धनंजय बौखलाकर चीख उठा।

‘मैं वास्तविकता बता रही हूँ... धनंजय! तेरा सर्वनाश सामने है... वरना तेरी बुद्धि भ्रष्ट नहीं होती।’

‘सुंदरी... क्या यही पुराणपाठ सुनाने यहाँ पर आयी है तू? धनंजय की आँखों में चिंगारियाँ भड़कने लगी।

फिर वही हादसा

११२

‘नहीं... धनंजय! मैंने जो कहा, वही मुझे कहना था और कुछ नहीं। अब भी बता दे... मेरे पति के पास तू मुझे सही-सलामत पहुँचाना चाहता है?’

‘तेरा पति तो मर गया। अब तो तेरे सामने जिंदा यह धनंजय ही तेरा पति है। समझ जा और आ जा मेरे उत्संग में वरना... आज मैं तुझे छोड़नेवाला नहीं!’ वह सुरसुंदरी की ओर आगे बढ़ा।

‘नमो अरिहंताणं’ के धीर-गंभीर स्वर के साथ सुरसुंदरी ने डेक पर से छल्लाँग लगायी समुद्र के अथाह पानी में!

‘सुंदरी... सुंदरी... ओह! दौड़ो... दौड़ो... सुंदरी समुद्र में गिर गयी... बचाओ... बचाओ!’

धनंजय व्याकुल हो उठा। उसकी आवाज सुनकर नाविक लोग दौड़ आये। पर इतने में तो जहाज़ उछलने लगा। सनसनाती हुई तुफानी हवा ने जहाज़ के पाल को चीर दिया। एक जोरदार धमाका हुआ और जहाज़ का खम्भा टूट गिरा। नाविक चिल्लाने लगे... ‘सावधान...! सावधान...!’ सन्हालो...! सन्हालो...!’ उधर आकाश में कड़ाके होने लगे... धुआँधार बारिश होने लगी।

मौजें उछलने लगी... और जहाज़ ने समुद्र के अंदर समाधि ले ली। **जहाज़** के साथ धनंजय और उसके आदमी... उसकी संपत्ति सभी कुछ समुद्र के तल में समा गये। जहाज़ के पटिये समुद्र के पानी पर तैरने लगे!



१८. फिर वही हादसा

अंधियारे आकाश का साया था सिर पर।

मुसलाधार पानी बरस रहा था। बरसात की अँधियारी रात उतर आयी थी। ऐरेगैरों के दिल **फट** पड़े वैसी बिजलियाँ चमक रही थी। महासागर की तुफानी तरंगे ऊँची-ऊँची उछल रही थी। ऐसी भयानक गर्जना उठ रही थी समुद्र में कि सुनने पर गर्भवती का गर्भ गिर जाए।

टूटे हुए जहाज की एक पटिया सुरसुंदरी के हाथों लग गयी। उसने पटिये को अपनी बाहों में भींच लिया। पटिया के साथ-साथ वह भी महासागर में उछलने लगी। उसका मन निरंतर श्री नवकार महामंत्र के स्मरण में लीन था। उसे अपनी जान की परवाह न थी। उसे अपने शील के बचने का अपार आनंद था। धनंजय के जहाज़ को उसने कटे वृक्ष की भाँति टूटते हुए देखा था और टूटे जहाज़ को जलसमाधि लेते हुए भी देखा था।

धीरे-धीरे सागर शांत हो गया।

शांत सागर के पानी पर सुरसुंदरी बेहोश होकर तैर रही थी। लंबे पटिये को अपने सीने से जकड़कर वह औंधी सो गयी थी। पटिया पानी के बहाव में चला जा रहा था।

जब सुंदरी की आँखें खुली, तो उसने अपने आपको एक नगर के किनारे की रेत में पड़ा हुआ पाया। पटिया किनारे की रेत में दब-सी गयी थी। वह तुरंत खड़ी हुई। उसके कपड़े जगह-जगह फट गये थे। गीले थे। कीचड़ से सन गये थे। वह किनारे पर खड़ी रह गई। हवा में वह अपने कपड़े सुखाने की कोशिश करने लगी।

‘यह कौन-सा नगर होगा? जाऊँ इस नगर में...? पर अनजान नगर में मैं जाऊँगी कहाँ पर! फिर कहीं नयी आफत...? आने दूँ आफत को? वैसे भी अब आफत आने में तो और बाकी क्या रहा है? समुद्र में कूदकर आफत का सामना किया है, तो फिर इससे बड़ी और कौन-सी आफत चली आएगी। यहाँ खड़े रहने से तो मतलब भी क्या?’

सुरसुंदरी चलने लगी नगर की तरफ। वह नगर था बेनातट। नगर के मुख्य दरवाज़े में उसने प्रवेश किया। इतने में नगर में जोरदार कोलाहल सुना

फिर वही हादसा

११४

उसने। मुख्य रास्ते पर एक भी आदमी नजर नहीं आ रहा था। इर्दगिर्द के मकानों में से लोग चीख रहे थे।

‘अरे, ओ औरत! भाग... किसी मकान में घुस जा! वरना मर जाएगी... हाथी तुझे कुचल डालेगा पैरों तले। जल्दी चढ़ जा कहीं पर! ओ भली औरत... जा... जा... जल्दी जा!’ पर सुरसुंदरी तो गुमसुम-सी चलती ही रही राजमार्ग पर! इतने में उसने सामने से दौड़ते हुए आ रहे मदोन्मत्त हाथी को देखा।

आलानस्तंभ उखाड़कर वह सड़क पर निकल आया था। शराब की दुकान में तोड़-फोड़ कर उसने शराब पी ली थी - मटके में से! और फिर वह उन्मत्त हुआ, पागल की भाँति दौड़ रहा था। सैनिक लोग उसे न तो बस में कर रहे थे, न ही उसे मारने में सफल हो रहे थे।

सुरसुंदरी घबरा उठी। वह स्तब्ध रह गयी। मौत उसे दो कदम दूर नजर आयी... वह खड़ी रह गयी... सड़क के बीचोबीच। हाथी आया, उसने सुरसुंदरी को सूँड़ में उठाया और दौड़ा समुद्र की ओर। लोगों ने बावेला मचा दिया : ‘यह दुष्ट हाथी इस बेचारी औरत को या तो पैरों तले रौंद डालेगा... या फिर समुद्र में फेंक देगा... हाय, कोई बचाओ... इस अभागिन औरत को!’

सैनिक लोग दौड़े हाथी के पीछे... पर वे कुछ करें इसके पहले तो हाथी ने सुरसुंदरी को ऊँचे आकाश में उछाल दिया... जैसे गुलेर से पत्थर उछला।

उछली हुई सुरसुंदरी सागर में जाकर गिरी..., पर वह गिरी एक बड़े जहाज़ में।

वह जहाज़ था दूर देश के एक यवन व्यापारी का। बेनातट नगर में वह व्यापार करने के लिए आया था। उसका नाम था फानहान।

लोगों की चीख-चिल्लाहट सुनकर फानहान कभी का जहाज़ के डेक पर आकर खड़ा था। उसने अपने जहाज़ में गिरती एक औरत को देखा। आनन-फानन में वह उसके पास दौड़ गया। जहाज़ के नाविक और नौकर दौड़ आये।

सुरसुंदरी बेहोश हो गयी थी। उसके सिर के पिछले हिस्से में से खून आ रहा था। फानहान ने तुरंत चोट लगे भाग को धो-कर पट्टी लगा दी। ठंडे पानी की छींटे छिटकर सुरसुंदरी को होश में लाने की कोशिश की।

किनारे पर सैकड़ों नगरवासी इकट्ठे हो गये थे। फानहान ने इशारे से लोगों को समझा दिया कि ‘यह औरत बच गयी है... अब वह होश में है।’ लोग नगर में लौट गये अपने-अपने घर।

फिर वही हादसा

११५

फानहान ने सुरसुंदरी को नये कपड़े दिलवाकर कहा : 'पहले तू कपड़े बदल ले।' सुरसुंदरी जहाज़ के एक कमरे में जाकर कपड़े बदल आयी। उसका पूरा शरीर चोट के मारे दर्द कर रहा था। फानहान ने परिचारिका के साथ गरम दूध भेजा। सुरसुंदरी ने दूध पी लिया और वहीं जमीन पर सो गयी। एक प्रहर बीता। उसकी नींद खुली।

फानहान ने कमरे में प्रवेश किया। उसके पीछे ही परिचारिका ने प्रवेश किया, भोजन का थाल हाथ में लेकर।

'सुंदरी, तू यह भोजन कर ले।' फानहान सुरसुंदरी के अदभुत रूप से मुग्ध हुआ जा रहा था। उसने तो सुरसुंदरी के सौंदर्य को देखकर ही सुंदरी कहकर बुलाया था। पर सुरसुंदरी को अनजान युवान व्यापारी के मुँह से अपना नाम सुनकर आश्चर्य हुआ।

'तुम्हें मेरा नाम कैसे मालूम हुआ? मैंने तो तुम्हें अपना नाम बताया नहीं है।'

'अरे वाह! क्या लाजवाब बात है तेरी। तेरी यह हूर सी खूबसूरती ही तेरा नाम जो बता रही है... सुंदरी!' व्यापारी ने हँसते हुए कहा। उसके हास्य में धूर्तता थी। सुरसुंदरी सावधान हो गयी।

'बातें तो बाद में **करनी** ही हैं... पहले तू खाना खा ले।'

'नहीं, मुझे खाना नहीं खाना है।'

'कब तक तू इस तरह भूखी रहेगी?'

'जब तक रह सकूँगी तब तक!' सुरसुंदरी ने नीची नजर रखते हुए जवाब दिया।

'क्यों भूख से मर रही हो? देख, तुझे मनपसंद हो वैसा भोजन है, फिर भी तुझे यदि ये चीजे पसंद न हों,

तो मैं दूसरी चीजें बनवा दूँ, पर तुझे भोजन तो करना ही होगा।'

सुरसुंदरी को क्षुधा तो लगी ही थी। व्यापारी ने काफी आग्रह किया तो उसने भोजन कर लिया। उसकी थकान दूर हुई। फानहान चला गया। सुरसुंदरी को रहने के लिए एक अलग कमरा दे दिया था फानहान ने।

सुरसुंदरी एक स्वच्छ जगह पर पद्मासन लगाकर बैठ गयी और उसने श्री नमस्कार महामंत्र का जाप चालू किया। एक प्रहर तक वह जाप करती रही :

जहाज़ बेनातट नगर से रवाना हो चुका था। समुद्रयात्रा चालू हो गयी थी। सुरसुंदरी खिड़की के पास जाकर खड़ी रही : यह वही महासागर था जिसमें

फिर वही हादसा

११६

वह कूद पड़ी थी। जिसमें धनंजय ने अपने जहाज़ों के साथ जलसमाधि ली थी। सुरसुंदरी के लिए जैसे वह घटना एक सपना हो चुकी थी। वह दृश्य आँखों के आईने में उभरते ही वह काँप उठी।

‘यह व्यापारी भी मेरे लिए अपरिचित है... इसकी नीयत अच्छी नहीं लगती। इसकी आँखों में हवस है... अलबता, इसने मेरी सारसंभाल की है। पर यह भी मेरी जवानी का आशिक तो होगा ही। क्या औरत की जवानी, यानी पुरुषों की वासना तृप्त करने की भोग्य वस्तु मात्र है? नहीं! यह मुझे छूए, इससे पहले तो मैं कूद गिरूँगी, इसी समुद्र में! अब मुझे सागर का डर नहीं है... सागर ही मेरी अस्मत को बचाएगा।’

अचानक उसने पीछे घूमकर देखा तो पाया कि फानहान दरवाजे पर खड़ा उसकी तरफ ताक रहा है। वह युवा था... सुंदर था... छबीला था।

‘सुंदरी, यहाँ तुझे किसी तरह की दिक्कत तो नहीं है न?’

‘नहीं! आप मेरी इतनी देखभाल जो कर रहे हैं... फिर असुविधा क्या होगी? पर आप मुझे बताएँगे, हम कहाँ जा रहे हैं?’

‘सोवनकुल की ओर!’

‘सिंहलद्वीप यहाँ से कितना दूर है?’

‘सोवनकुल से भी काफी दूर है सिंहल तो! वहाँ जाने में तो एक महीना लग ही जाए।’

‘आप सोवनकुल तक ही जाएंगे?’

‘वैसे तो सोवनकुल तक ही। पर तेरी इच्छा होगी तो सिंहलद्वीप भी चलेंगे। पर सिंहलद्वीप क्यों जाना है? वहाँ तेरा कौन है?’

‘मेरे पति वहाँ गये हैं... मुझे उनके पास जाना है।’

फानहान मौन रहा। सुरसुंदरी के लावण्य को निहारता रहा। उसका मन बोल उठा : ‘मैं तुझे नहीं जाने दूँगा तेरे अपने पति के पास! मैं ही तेरा पति बनूँगा! अब तो तू मेरे अधीन है... मैं तुझे कहीं जाने नहीं दूँगा।’

‘आप यदि वहाँ तक नहीं आ सकते तो फिर मैं दुसरे किसी जहाज़ में अपना इन्तजाम कर लूँगी। आप परेशान न हों।’

‘इसकी फिकर तू मत करना। तू इसी जहाज़ में आनंद से रहना।’

फानहान ने एक परिचारिका को सुरसुंदरी के सेवा में छोड़ दिया एवं खुद अपने कक्ष में चला गया। सुरसुंदरी को कैसे मना लिया जाए... इसके उपायों में खो गया।

फिर वही हादसा

११७

सुरसुंदरी का अंतःकरण चीख रहा था। यह व्यापारी भी धनंजय जितना ही लंपट है... तू जरा भी लापरवाह मत रहना। इसकी आवभगत में लुभा मत जाना। उसके शब्दों में फँसना नहीं। परायी स्त्री, रूप और जवानी, एकान्त... विवशता... इन सब का मतलब, आदमी ललचाये बगैर नहीं रहेगा। एक हादसा हो चुका है...।'

सुरसुंदरी हरपल-हर क्षण सावधान रहकर जी रही है। फानहान उसे खुश करने की अनेक कोशिश करता रहा पर जब उसने देखा कि सुरसुंदरी तो उसको तनिक भी आगे नहीं बढ़ने दे रही है और न ही प्यार जता रही है, तो उसने मन-ही-मन तय किया कि खुल्लमखुल्ला शादी का प्रस्ताव पेश किया जाए। यदि मान जाए तो ठीक, अन्यथा उसने बलात्कार करने का निश्चय कर लिया। उसका सब्र अब जवाब दे रहा था।

सुंदरी हमेशा की भाँति श्री नवकार का जाप करके बैठी थी... इतने में फानहान उसके पास आया। सुरसुंदरी ने स्वागत किया, पर उखड़े-उखड़े मन से।

'सुंदरी, तू उदास क्यों रहती है! तुझे यहाँ किसी तरफ़ की असुविधा हो, तो बता दे। तुझे उदास देखकर मेरा मन व्याकुल हो उठता है। फानहान ने सुरसुंदरी से कुछ दूरी पर बैठते हुए कहा।

'आप जानते हो कि मेरे पति का मुझसे विछोह है और कोई भी औरत अपने पति की जुदाई में उदास रहे, यह तो बिलकुल स्वभाविक है।'

'पर क्यों उदास रहना चाहिए औरत को? पति की कमी को पूरा करनेवाला आदमी मिल जाए, तो उसे स्वीकार कर लेना चाहिए।'

'यह बात आपके देश में होती होगी। हमारे देश की संस्कृति अलग है। पति की मौत के बाद भी वह औरत किसी दूसरे आदमी से शादी नहीं कर सकती। वह अपनी इच्छा से वैधव्य का पालन करेगी।'

'अब तू कहाँ अपने देश में है? मैं तुझे अपने देश में ले चलूँगा। मैं तुझसे यही बात करने आया हूँ कि तू मुझसे शादी कर ले। हम चलेंगे मेरे अपने देश में। जहाँ स्वर्ग के सुखभोग अपने लिए होंगे।'

सुरसुंदरी गुस्से से बौखला उठी। जिस बात की आशंका थी... आखिर फानहान का वह धिनौना रूप सामने आ ही गया। उसने अपने स्वर में सख्ती लाते हुए कहा :

'फानहान, ऐसी ही बात कुछ ही दिन पहले तेरे जैसे एक व्यापारी धनंजय ने मेरे सामने रखी थी। जब मैंने इन्कार किया, तो वह मेरे साथ जबरदस्ती

चौराहे पर बिकना पड़ा!

११८

करने पर उतारू हो उठा था। पर मैंने चतुराई से सुरक्षा कर ली। आखिर मैं अपनी इज्जत बचाने के लिए इस महासागर में कूद गयी। उसी समय उसका जहाज़ समुद्र के तूफान में फँस कर टूट गया। वह धनंजय अपने काफिले के साथ सागर में समा गया। मैंने यह सब खुद अपनी आँखों से देखा है। उसी समय टूटे जहाज़ की एक पटिया मेरे हाथ लग गयी। और मैं उसी पटिया के सहारे तैरती-तैरती नगर बेनातट के किनारे पर चली आयी... फिर जो कुछ हुआ... तुम्हें मालूम है।'

फिर से कह रही हूँ... यदि तेरी इच्छा भी धनंजय की भाँति इस समुद्र की गोद में समा जाने की हो, तो हिम्मत करना। गनीमत होगी, इस बात को ही समुद्र में फेंक दे। फिर कभी ऐसी बात होठों पर गलती से भी मत लाना।

एक ही साँस में सुरसुंदरी सब कुछ बोल गयी। वह हाँफने लगी थी। फानहान सोच में डूब गया। सुरसुंदरी ने गरजते-लरजते सागर की ओर देखा। फानहान खड़ा होकर कमरे में चक्कर काटने लगा।

'यह औरत रोजाना कोई मंत्र जपती है, वह तो मैं खुद देखता हूँ। क्या पता, इसे किसी दिव्य सहायक का सहारा हो... इसने जिस दुर्घटना का बयान किया... वह सच भी हो सकता है। मुझे अपना सर्वनाश नहीं करना है। इसके ऊपर मैं जबरदस्ती करने जाऊँ... और यह समुद्र में छल्लाँग लगा दे तो? फिर मेरा जहाज़ समुद्र में टूट गिरे तो?'

'नहीं... नहीं, मैं तो व्यापारी हूँ... पैसा कमाने को निकला हूँ... मेरे पास पैसा आयेगा तो ऐसी कई औरतों को मैं आसानी से प्राप्त कर लूँगा। इसको मुझे भरोसा दिला देना चाहिए। कहीं मेरे डर से यह समुद्र में कूद न जाए।'

उसने सुरसुंदरी की ओर देखा। सुरसुंदरी समुद्र की तरफ ताक रही थी। सुंदरी, मैं अपनी बात छोड़ देता हूँ। तू निश्चिंत रहना। अब मैं तेरे कमरे में भी नहीं आऊँगा। मुझे मालूम नहीं था कि तुझ पर देवों की कृपा है... मेरी गलती को माफ कर देना।

'तुमने मेरी जान बचायी है... तुम मेरे उपकारी भाई हो... मेरे दिल में तुम्हारे लिए जरा भी नफरत नहीं है।'

फानहान अपने कमरे में चला गया। वह व्यापारी था। उसे पैसे की ख्वाहिश थी। उसके दिमाग में कौई और ही साजिश आकार ले रही थी।





नारी का शील-रत्न तो संसार का श्रृंगार है, दुनिया का सौभाग्य है। स्त्री एवं सागर मर्यादा के प्रतीक - वे कभी भी मर्यादा उल्लंघन नहीं करते।

मर्यादावान सागर के उत्संग में सुरसुंदरी अपनी मर्यादा की रक्षा कर रही थी। अपने शीलरत्न की भली-भांति सुरक्षा कर रही थी। वह थी तो व्यापारी पत्नी, पर उसकी नस-नस में एक क्षत्राणी का खून बह रहा था।

सोवनकुल के किनारे पर फानहान ने अपने जहाज़ों को लंगर डाला। उसने सुरसुंदरी से कहा :

‘यदि तेरा मन हो तो सोवनकुल नगर में तेरे पति की तलाश करें। हम नगर में चलें।’

‘वे यहाँ नहीं हो सकते। उनके जहाज़ भी इस किनारे पर नज़र नहीं आ रहे हैं।’

‘नहीं दिखते तो क्या हुआ? क्या पता... तुझे दुःखी करने के बाद वह आफत में फँस गया हो... उसके जहाज़ डूब गये हों, या लुट गये हों... और वह खुद रास्ते का भटकता भिखारी हो गया हो... किसी नगर की गलियों में! ऐसा नहीं हो सकता क्या?’

‘नहीं... नहीं, ऐसी बुरी बातें मत करो। ऐसा अशुभ मत बोलो। मैं तो हमेशा उनके मंगल की कामना किया करती हूँ... उनका कल्याण हो... फिर भी, यदि तुम कहते हो तो हम इस नगर में चलें। कोई सिंहलद्वीप का नगरजन मिल जाए तो उससे भी अमरकुमार के बारे में पूछ सकेंगे।’

‘सही कहना है तेरा! चल, हम चलें।’

सुरसुंदरी को लेकर फानहान ने सोवनकुल नगर में प्रवेश किया। नगर की सजावट देखते-देखते दोनों नगर के मध्य भाग में आ पहुँचे। वहाँ पर फानहान के जहाज़ के रक्षक सैनिक पहले ही से उपस्थित थे। अचानक फानहान ने सुरसुंदरी की ओर पलटकर तीखी जबान में कहा : ‘ओ मदांध नारी, अभागिन औरत, यहीं पर खड़ी रह जा। कहीं भी इधर-उधर भागने की तनिक भी कोशिश मत करना। मेरे सैनिक तैनात हैं चारों ओर! तेरा पति तुझे खरीदने के लिए अपने आप चला आएगा। यहाँ तुझे में पूरे सवा लाख में बेचूँगा। समझी न? बहुत रोब दिखा रही थी! चुपचाप खड़ी रहना।’

चौराहे पर विकना पड़ा!

१२०

सुरसुंदरी फानहान के इस बदले हुए रूप को देखकर सदमें से शून्यमनस्क हो गयी। फानहान का इतना धिनौना रूप देखकर उसकी मानो वाणी मर चुकी थी।

चौराहे के बीचोबीच एक लंबा-ऊँचा चबूतरा था। फानहान ने सुरसुंदरी को उस चबूतरे पर खड़ी कर दिया, खुद उसके पास खड़ा रहकर चिल्लाने लगा।

‘सुनो... भाई! सवा लाख रुपये देकर, जिस किसी को चाहिए, इस रूपसुंदरी को यहाँ से ले जाए! भारत की इतनी खूबसूरत परी तो सवा लाख में भी फिर दुबारा नहीं मिलेगी। जिसे चाहिए वह ले ले! ऐसा माल बारबार नहीं आता!’

तमाशे के लिए आमंत्रण? रास्ते से गुज़रते हुए लोग एकत्र होने लगे। इर्दगिर्द के मकान-दुकान के लोग उतरकर इस भीड़ को बढ़ाने लगे। वैसे तो इस नगर में प्रायः आदमी-औरत का क्रय-विक्रय बीच बाजार में होता था...इसलिए लोगों को कोई आश्चर्य नहीं था।

‘सवा लाख रुपये तो बहुत ज्यादा हैं... जरा क्रीमत कम करो न?’ भीड़ में से एक मनचले जवान ने कहा।

‘एक पैसा भी कम नहीं होगा... यह तो भारत की हूर है... यह तो सस्ते का सौदा है, वरना इस परी के साथ कुछ समय गुजारने के लिए भी हजारो रुपये लगते हैं। तुम्हें चाहिए तो लो... कोई जबरदस्ती नहीं। हिम्मत हो और रूप की तलाश हो, तो ले जाओ इस अप्सरा को सवा लाख रुपये नकद देकर!’

भीड़ बढ़ती जा रही थी। सभी टुकुर-टुकुर सुरसुंदरी को देख रहे थे। सुरसुंदरी की आँखें बंद थी। उसके चेहरे पर व्यथा की घनघोर घटाएँ घिर आयी थीं। वह गुमसुम हो गयी थी। अमरकुमार के धोखे का शिकार होने के बाद यह दूसरी बार वह बुरी तरह धोखे का शिकार हो चुकी थी।

इस नगर में किसी के भी दिल में स्नेह या सहानुभूति जैसी बात थी ही नहीं। ऐसे दृश्य तो उन्हें रोज़-बरोज़ देखने को मिलते थे। देश-परदेश के व्यापारी यहाँ आकर आदमियों का सौदा करते-करवाते थे। सोवनकुल में ऐसा धिनौना हीन स्तर का धंधा भी चलता था।

इतने में भीड़ में कुछ बावेला - सा मचा। एक सुंदर पर प्रौढ महिला भीड़

चौराहे पर विकना पड़ा!

१२१

को चीरकर आगे आ रही थी। लोग उसे हँस-हँस कर रास्ता खुला कर दे रहे थे। वह करीब आयी। उसने गौर से सुरसुंदरी की देह को देखा। स्त्री के शरीर के जाँचने-परखने में उसकी आँखे चतुर थीं।

उसका नाम था लीलावती। सोवनकुल की वह सुप्रसिद्ध वेश्या थी। वह एक बहुत बड़ा वेश्यालय चला रही थी। उसके पास लाखों रुपये थे। उसने फानहान से कहा :

‘मैं दूँगी सवा लाख रुपये! व्यापारी, ले चल इस सुंदरी को मेरी हवेली पर!’

लोगो ने हर्षनाद किया। लीलावती के पीछे फानहान सुरसुंदरी को लेकर चला। सुरसुंदरी परेशान थी... ‘इस अनजान प्रदेश में मेरे लिए सवा लाख देने वाली यह औरत कौन है?’

हवेली आ गयी... लीलावती ने सवा लाख रुपये गिनकर दे दिये। फानहान रूपयों को लेकर सुरसुंदरी की ओर देखा और कुटिलतापूर्ण हँसकर चल दिया। लीलावती सुरसुंदरी को लेकर अपने भव्य रतिक्रिया-भवन में आयी।

‘क्या नाम है तेरा, रूपसी?’

‘सुरसुंदरी’

‘बड़ा प्यारा नाम है... पर मैं तो तुझे सुंदरी ही कहूँगी।’

‘चलेगा...!’

‘तू स्नान वगैरह करके सुंदर कपड़े पहन ले! फिर हम शांति से बातें करेंगे।’

सुरसुंदरी ने स्नान करके, लीलावती के दिए हुए कपड़े पहन लिए। वह लीलावती के पास आकर बैठ गयी। लीलावती सुरसुंदरी का सरसों के फूलों-सा खिला खिला रूप देखकर मुग्ध हो उठी। उसका मन बोल उठा :

‘सवा लाख रुपया तो दस दिन में यह रूपसी कमा देगी!’ उसने सुरसुंदरी से कहा :

‘सुंदरी, अब तेरे तन-मन के दुःख मिट गये समझना! तेरे मन में जो भी चिंताएँ हो... जो भी परेशानी हो... सब कुछ बाहर फेंक देना। एकदम खुश हो जा। इस हवेली में तुझे रहना है! तुझे पसंद हो वह खाना खाना। जो पसंद हो वह श्रुंगार करना! इस हवेली के उद्यान में सरोवर है... उसमें मनचाही

चौराहे पर बिकना पड़ा!

१२२

जलक्रीड़ा करना। शरीर पर सुगंधित द्रव्यों का विलेपन करना। आंखों में अंजन लगाना।'

'पर यह सब क्यों करने का? मुझ पर तुम इतना ढेर सारा प्यार क्यों उड़ेल रही हो? मेरी समझ में नहीं आ रहा है, यह सब कुछ!'

'समझ में आ जाएगा सुंदरी, बहुत जल्द मालूम हो जाएगा तुझे भी सब कुछ! यह सब करके तुझे इस हवेली में आनेवाले रसज्ञ पैसेवालों को शय्यासुख देना है। उन्हें खुश करके हजारों रुपये पाने हैं। हाँ, तुझे जो पसंद हो... उस आदमी को तू खुश करना। तुझे जो नापसंद हो, उसे मैं अन्य किसी लड़की के पास भेज दूँगी।'

'तो क्या यह वेश्यागृह है और तुम...?'

'इसमें चौंकने की कोई बात नहीं है... पैसेवाले लोग इसे वेश्यागृह नहीं कहते... वे इसे स्वर्ग कहते हैं! यहाँ उन्हें अप्सराएँ मिलती हैं। अप्सराओं के साथ आनंद-प्रमोद के लिए वे यहाँ आते हैं... मैं उनसे हजारों रुपये लेती हूँ!'

सुरसुंदरी की आँखें सजल हो उठीं। उसका दिल दुःख की चट्टानों के नीचे कसमसाने लगा। धरती पर स्थिर दृष्टि रखते हुए उसने लीलावती से कहा :

'क्या तुम मेरी एक बात मानोगी?'

'ज़रूर! क्यों नहीं?'

'मैं एक दुःखी औरत हूँ!'

'यहाँ जो औरतें आती हैं, वे सब दुःखी ही होती हैं... फिर बाद में दुःख भूल जाती हैं।'

'मैं भी अपना दुःख भूलना चाहती हूँ।'

'यह तो अच्छी बात है।'

'पर इसके लिए मुझे तीन दिन का समय चाहिए। तीन दिन तक मैं किसी भी आदमी का मुँह नहीं देखूँगी।'

'इसके बाद?'

'तुम कहोगी वैसा करूँगी। चूँकि मैं तो तुम्हारी क्रीत-दासी हूँ... तुम्हारी गुलाम हूँ।'

चौराहे पर विकना पड़ा!

१२३

‘यहाँ तू गुलाम नहीं पर रानी-महारानी बनकर रहेगी! बस, मेरी एक बात माननी होगी तुझे। जिस आदमी को मैं तेरे पास भेजूँ... उसे बराबर खुश करती रहना।’

‘ठीक है, पर मुझे तीन दिनों का संपूर्ण विश्राम चाहिए।’

‘मिल जाएगा। चल मेरे साथ, तुझे जहाँ रहना है... वह कमरा मैं तुझे दिखा दूँ। कमरे को देखते ही तेरी थकान मिट जाएगी... और पलंग में गिरते ही तेरे एक-एक अंग में फुर्ती का नशा पैदा हो जाएगा।’

लीलावती ने सुरसुंदरी को रहने के लिए एक सुंदर व सुशोभित कमरा दिया। कमरे में करायी हुई व्यवस्था समझा दी और वह चली गई।

सुरसुंदरी ने अविलंब कमरे का दरवाजा बंद किया और जमीन पर गिर पड़ी... वह फफक-फफककर रोने लगी। दिल में दर्द का दरिया उफनने लगा। आँखों में से आँसुओं की झड़ी होने लगी।

‘मेरा कितना दुर्भाग्य! मेरे कैसे पापकर्म उदय में आये? जिससे मैं बचने और जिसे बचाने के लिए दरिया में कूद गई... उसी दलदल में आज आ फँसी! यहाँ मैं अपने शील को बचाऊँगी भी तो कैसे? इस वेश्या ने मुझे सवा लाख रुपये देकर खरीदा है। इतना सारा रुपया देकर खरीदने के पश्चात् वह मुझे छोड़ने से रही! मैं चाहे जितनी मिन्नत-खुशामद करूँ, पर वह मुझे नहीं जाने देगी।

पर यह क्यों हुआ? इसने क्या मुझे खरीदा? मैं खूबसूरत हूँ इसलिए न? मेरा सौंदर्य ही मेरा दुश्मन बना हुआ है... वह धनंजय एवं फानहान भी तो मेरे पर इसलिए मोहित हुए थे न? मेरे रूप के पाप से...

अपने रूप को मैं कितना चाहती थी? अपने रूप को देखकर मैं अपना पुण्योदय मानती थी। अमर जब मेरे रूप की प्रशंसा करता, तब मैं फूली नहीं समाती। वह रूप ही आज मेरी जान का दुश्मन बन बैठा है। मेरा सर्वनाश करने का निमित्त हुआ जा रहा है। क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? इस रूप को जला दूँ? आग लगा दूँ, अपने चहरे की खूबसूरती में?

हाँ, जला ही दूँ इस रूप को। मैं बदसूरत हो जाऊँगी... मेरा चेहरा झुलस जाएगा..., मेरे बाल जल जाएँगे... मेरी सूरत गंदी हो जाएगी... फिर कोई मेरी ओर निगाह नहीं उठाएगा। कोई मुझे अपना शिकार नहीं बनाएगा... और तो और, यह वेश्या भी मुझे बाहर निकाल देगी अपने घर से!

चौराहे पर बिकना पड़ा!

१२४

परंतु यदि कहीं यकायक अमर से मिलना हो गया तो? अमर... मेरे अमर! तूने यह क्या किया? अमर... ओह! तेरे ही भरोसे पर तेरी गोद में सोयी अपनी प्रियतमा को इस तरह छोड़ दिया? क्या तू मुझे और कोई सज़ा नहीं दे सकता था? हाय! यदि तुने मेरा गला घोंट दिया होता... मुझे मार डाला होता तो मैं तुझे नहीं रोकती... पर मेरा शील तो अखंड रहता न? मेरी अस्मत् को तो खतरा नहीं रहता। अमर! तू सोच भी नहीं सकता... मेरी क्या हालत हो रही है... ओह! अमर, तू मुझे कभी न कभी... कहीं न कहीं मिलेगा...' क्या इसी आशा के कच्चे धागे के सहारे जिंदगी गुज़ारूँ? पर शील को गँवाकर जीना मुझे गवारा नहीं होगा। यह मुमकिन नहीं मेरे लिए! और... अब जिंदा रहकर शील की सुरक्षा करना बड़ा कठिन ही नहीं, असंभव-सा नज़र आ रहा है। कहाँ लाकर पटक दिया है मेरे पाप कर्मों ने मुझे, इस वेश्यालय में! हाय! मेरे पापकर्म भी कितने कठोर हैं?

मेरे अमर! अब शायद इस जनम में मैं तुझसे कभी नहीं मिल पाऊँगी! केवल तीन दिन बचे हैं... मेरे पास। यदि मेरा महामंत्र मुझे और कोई रास्ता सुझाएगा मेरी शीलरक्षा के लिए... तब तो मैं आत्मघात का रास्ता नहीं अपनाऊँगी... वरना...

अरे! आज मैंने अभी तक नवकार का जाप क्यों नहीं किया? बस... अब यहाँ मुझे अन्य तो कुछ कार्य है नहीं... तीन दिन में हो सके उतना जाप कर लूँ।'

सुरसुंदरी ने पद्मासन लगाकर बैठकर महामंत्र का जाप प्रारंभ किया। धीरे-धीरे जाप में से वह ध्यान की दुनिया में डूब गयी। पंचपरमेष्ठी के ध्यान में वह बिलकुल सहजता से तल्लीन हो सकती थी।

दिन का दूसरा प्रहर बीत चुका था। भोजन का समय हुआ तो दरवाज़े पर दस्तक हुई। सुरसुंदरी ने परिचारिका को भोजन का थाल हाथ में लिए खड़ी देखी। सुरसुंदरी के सामने स्मित करते हुए उसने अंदर प्रवेश किया। भोजन का थाल पीढ़े पर रखकर उसने सुरसुंदरी की ओर देखा।

'मुझे भोजन नहीं करना है।'

'यहाँ जो कोई नयी स्त्री आती है... वह भोजन करने से इन्कार ही करती है। पर क्या भोजन नहीं करने मात्र से दुःख दूर हो जाएगा? दुःख को दूर करने के लिए तो भोजन ज़रूर करना चाहिए। भोजन करोगी तो शरीर स्वस्थ

चौराहे पर बिकना पड़ा!

१२५

रहेगा... तन तंदुरुस्त रहा तो मन अपने आप दुरुस्त रहेगा। कुछ सोच भी सकोगी। कभी-कभी जैसे मन की बीमारी शरीर को बीमार कर देती है, वैसे शरीर की बेचैनी मन को भी हताश बना डालती है।'

सुरसुंदरी एक परिचारिका के मुँह से इतनी गहरी बात सुनकर सोच में पड़ गयी : 'यह सही बता रही है...यहाँ से छूटने का, भाग निकालने का उपाय सोचना चाहिए। भूखा पेट कोई उपाय नहीं खोज पाएगा। उसने पारिचारिका की ओर देखकर पूछ लिया :

'दुःख को दूर करने का उपाय तू मुझे बतलाएगी?

'पहले खाना खा लो... फिर बातें करना।'

सुरसुंदरी ने भोजन कर लिया। परिचारिका सुरसुंदरी को निहारती रही। भोजन करने का उसका तौर-तरीका देखती रही... फिर धीरे से फुसफुसायी :

'क्या तुम किसी बड़े घराने की हो?'

सुरसुंदरी ने सिर हिलाकर हामी भरी। परिचारिका खाली थाली लेकर चली गयी। सुरसुंदरी उसके कदमों की आहट को सुनती रही...!





‘मुझे यहाँ से जल्द से जल्द भाग जाना चाहिए। बड़ी चतुराई से भागने की योजना बनानी होगी... मेरा मन तो कहता है कि शायद यह परिचारिका मुझे उपयोगी हो सके! इसकी आंखों में मेरे लिए सहानुभूति तैर रही थी। पर क्या पता... वह कुछ और सोच रही हो : ‘यह नयी आयी हुई स्त्री इस भवन की मुख्य वेश्या होनेवाली है... मैं इसके साथ अभी से अच्छा रिश्ता कायम कर लूँ तो बाद में यह मुझे मालामाल कर देगी और मेरा रोब-दाब भी रहेगा औरों पर। इस दुनिया में बिना किसी स्वार्थ के कौन स्नेह करता है... और कौन सहानुभूति जताता है? फिर भी आज जब वह आएगी तब मैं गोल-गोल बात करके देखूँगी... पूरे भरोसे के बगैर तो भागने का नाम नहीं लूँगी... अन्यथा वह सीधी ही जाकर लीलावती को बता दे कि यह नयी औरत भागने की फ़िराक़ में है।’ तब तो मुझे इसी कमरे में फाँसी लगाकर मरना पड़े!

हालाँकि जीने की अब मेरी इच्छा ही नहीं है। किसके लिए जीना है? अब शायद अमर मिले भी नहीं... इत्तफ़ाक से मिल भी जाए और मैं उसके पास जाऊँ, फिर भी वह मुझे दुत्कार दे तो? उसने क्या पता अन्य स्त्री के साथ शादी कर ली होगी तो? पुरुष पर भरोसा कैसे किया जाए?

पर इस तरह मैं कब तक भटकती रहूँगी? और अनजान देश-प्रदेश में अपने शील की सुरक्षा कैसे करूँगी? उस नराधम फानहान ने मुझे कैसे धोखा दिया? मीठी-मीठी बातें करके मुझे नगर में ले आया और फिर बीच-बाजार में खड़ी कर दिया, बिकाऊ माल की तरह। मुझे नीलाम पर चढाया... वह भी एक वेश्या के हाथों।

कितनी बदनसीबी है मेरी? क्या मेरी बदनसीबी का कोई अंत नहीं है? कोई सीमा ही नहीं है? कभी जिसके बारे में सोचा तक नहीं था, ऐसी परिस्थिति के पाश में आ बँध गयी हूँ! मैंने अपने गत जन्मों में कितने पाप किये होंगे? ऐसे कैसे कर्म बंधन रहे होंगे? और यदि इतने ढेर सारे पाप ही पाप किये हैं तो फिर मेरा जन्म राजपरिवार में क्यों हुआ? क्यों मैं संभ्रांत श्रेष्ठी परिवार की बहू बनी? इतनी खूबसूरती क्यों मिली मुझको? शील व सदाचार के ऊँचे संस्कार क्यों मिले? सभी पाप कर्म एक साथ क्यों उदित नहीं हुए?

हंसी के फूल खिले अरसे के बाद!

१२७

ठीक है, यदि कोई रास्ता सूझता है यहाँ से भाग छूटने का... तब तो ठीक है... वरना फिर इसी कमरे में कल रात को गले में फाँसी लगा अपने प्राण त्याग दूँगी। शील की सुरक्षा तो किसी भी क्रीम पर करूँगी ही।'

सुरसुंदरी के मन में विचारों का तुमुल संघर्ष चल रहा था। रात भर वह सोचती रही... कभी क्या? कभी क्या? रात बीती। सवेरा हुआ। उसने उठकर श्री नमस्कार महामंत्र का स्मरण किया। दैनिक कार्य निपटाकर वह बैठी-बैठी परिचारिका की प्रतीक्षा कर रही थी। कमरे के दरवाजे खुले ही रखे थे उसने।

परिचारिका दूध लेकर आ पहुँची।

'देवी, मेरे आने में देरी हुई क्या? मुझे तो था कि आप अभी-अभी जगी होंगी... यहाँ तो जल्दी कोई उठता ही नहीं!'

'मैं तो सोयी ही नहीं... फिर जल्दी या देरी से जगने का सवाल ही नहीं उठता।'

'क्या यहाँ पर आपको कोई असुविधा है? आप सोयी क्यों नहीं?'

'अभागिन को असुविधा क्या कोई सुविधा क्या? यहाँ आनेवाली औरत भाग्यशीला हो ही नहीं सकती न?'

'आपकी बात तो सही है... पर यहाँ आकर तो ज़रूर भाग्यवती बन जाएँगी। आपके जैसा सौंदर्य यहाँ है किसका? इस भवन में नहीं पर इस पूरे सोवनकुल में आप जैसा रूप किसी का नहीं होगा!'

'यही तो मेरे दुःखों का रोना है... इस रूप की धूप ने तो मुझे झुलसा रखा है... इस पापी सौंदर्य ने तो मुझे यहाँ ला उलझा दिया है।'

'यह तो तुम्हें शुरू-शुरू में ऐसा लगेगा... पर तीन दिन बाद जब यहाँ बड़े राजकुमार और श्रेष्ठीकुमार आएँगे... तब यह दुःख हवा हो जाएगा।'

'ऐसी बात ही मत कर मेरी बहन! मेरे मन में तो मेरे अपने पति के अलावा अन्य सभी आदमी पितातुल्य हैं या भ्रातातुल्य हैं... मैं तो चाहती हूँ, इन तीन दिनों के भीतर ही मुझे मौत आ जाए। मैं नर्क में नहीं जी सकूँगी।'

सुरसुंदरी रो पड़ी। परिचारिका के मन में निर्णय हो गया कि 'यह स्त्री किसी ऊँचे खानदान की है... उसने पूछा : 'यदि तुम्हें ऐतराज न हो तो मैं दो - चार बाते पूछना चाहती हूँ तुमसे?'

'पूछ ले न बहन! मेरे जीवन में छुपाने जैसा कुछ है भी नहीं!'

हंसी के फूल खिले अरसे के बाद!

१२८

‘तुम्हारा परिचय जानना चाहती हूँ... और तुम यहाँ किस तरह आ गयी.. यदि मुझे बताओ तो...’

‘पर तू जानकर क्या करोगी?’

‘करूंगी तो क्या? पर तुम जो कहोगी वह ज़रूर करूंगी!’

‘सचमुच’ सुरसुंदरी ने परिचारिका के कंधो पर अपने हाथ रख दिये!

‘वादा करती हूँ!’

‘सुन ले मेरी दास्तान!’

सुरसुंदरी ने शुरू से लेकर अब तक की सारी घटनाएँ सुना दीं।

परिचारिका ने काफ़ी ध्यान देकर सारी बातें सुनीं। यक्षद्वीप की... यक्षराज की... बातें सुनकर तो उसे लगा कि ‘ज़रूर इस स्त्री पर दैवी कृपा है।’ धनंजय की जलसमाधी की बात व बेनातट नगर में हुई घटना सुनकर... उसके मन में सुरसुंदरी के प्रति सहानुभूति के दीये जल उठे। फानहान की बदतमीजी व प्रपंच-लीला सुनकर तो उसने उसके नाम पर थूक दिया... उसके मुँह में से गाली निकल गयी!

पूरी बात सुनकर उसने सुरसुंदरी से पूछा :

‘कहिए... देवी! आप मुझसे क्या चाहती हैं? आप जो भी साथ सहयोग माँगोगी... मैं दूँगी! मुझे तुमसे पूरी हमदर्दी है...!’

‘मेरे साथ धोखा तो नहीं होगा न?’

‘धोखा? धोखा करनेवाले होंगे... अमरकुमार... धनंजय और फानहान... जैसे आदमी लोग! यह सरिता उनमें से नहीं! भरोसा करना मुझ पर! सरिता कभी धोखा नहीं देगी!’

‘तो तू मुझे यहाँ से भागने का रास्ता बता दे! मैं तेरा उपकार कभी नहीं भूलूँगी!’

‘पर जाना कहाँ है?’

‘जहाँ मेरी किस्मत ले जाए मुझे, वहाँ!’

‘इस तरह यदि किस्मत के भरोसे ही रहना हो तो फिर तुम्हारी किस्मत तुम्हें यहाँ ले ही आयी है... यहीं रह जाओ न? और कहाँ-कहाँ भटकोगी!’

‘यहाँ? नहीं... यहाँ तो बिलकुल नहीं रहना है... मुझे तू इस नगर के

हंसी के फूल खिले अरसे के बाद!

१२९

बाहर पहुँचा दे... फिर मैं जंगल की शरण में चली जाऊँगी! मेरा शील सलामत रहे... बस! मुझे और कुछ नहीं चाहिए!

सरिता खड़ी हुई। उसने कमरे के बाहर जाकर इधर-उधर देख लिया और फिर दरवाजा बंद करके भीतर आयी।

कल सुबह तड़के ही मैं यहाँ आऊँगी, तुम तैयार रहना। नगर के बाहर तुम्हें ले चलूँगी। फिर कहाँ जाना यह तुम तय करना। पर एक बात तुम लीलावती से आज ही कह देना कि मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है... शरीर में पीड़ा है... किसी अच्छे वैद्य को मेरा शरीर दिखाना है। कुछ दिन औषध-उपचार कर लूँ... ताकि शरीर तंदुरुस्त हो जाए। फिर पुरुषों को रिझाने का कार्य भली-भाँति हो सकेगा।'

'तुने कहा वैसे मैं बात तो कर दूँगी... पर उस वैद्य को यहाँ बुलाएगी तो?'

'नहीं, वह वैद्य यहाँ आएगा ही नहीं! वह काफी बूढ़ा है, गाँव के दरवाजे पर रहता है... और इस भवन की किसी भी औरत को शारीरिक बीमारी हो तो उसे उसी वैद्य के पास ही लीलावती भेजती है। वैद्य लीलावती का विश्वासपात्र भी है।'

'पर, वह खुद मेरे साथ आएगी तो?'

'नहीं... तुम्हारे साथ वह मुझे ही भेजेगी। वह खुद तो कभी भी किसी स्त्री के साथ वैद्य के वहाँ जाती ही नहीं है।'

सुरसुंदरी गहरे विचारों में डूब गयी : मेरे खातिर सरिता तो परेशानी में नहीं फँसेगी न?' सरिता बोली : 'तुम मेरी चिंता कर रही हो न?'

'हाँ, पर तुने कैसे जान लिया?'

'तुम्हारे वह यक्षराज आकर मेरे कान में फुसफुसाह गये।' और सरिता हँस दी। सुरसुंदरी भी हास्य को न रोक सकी। कई दिनों बाद उसके चेहरे पर हास्य के फूल खिले थे।

'देवी, ऊँचे घर के लोग हमेंशा दूसरों की ही चिंता ज्यादा करते हैं। इसलिए मैंने अंदाज लगाया कि तुम मेरी चिंता कर रही होगी... मैं तुम्हारे साथ आऊँ... और फिर वापस अकेली आऊँ... तो तुम्हें भगाने का इल्जाम मेरे सिर आए... फिर लीलावती मुझे सजा करे या नौकरी से निकाल दे! ऐसा सोच रही हो न?'

हंसी के फूल खिले अरसे के बाद!

१३०

‘अरे वाह! तू तो बाबा, मेरी अंतर्दामी हो गयी।’

सुरसुंदरी सरिता से लिपट गयी।

‘और यदि आप फरमाए तो मैं आपकी साथी हो जाऊँ!’

‘नहीं... नहीं सरु! मेरे साथ रहकर तो तू दुःखी हो जाएगी! मैं तो हूँ ही अभागिन! तू मुझे सहयोग दे यही काफी है। परंतू मुझे बता दे कि कहीं तुझ पर मुझे भगाने का इल्जाम तो नहीं आएगा न?’

‘नहीं! तुम बिल्कुल निश्चित रहना। तुम्हारा नवकार मंत्र मेरी भी रक्षा करेगा। मेरी सुरक्षा के लिए तुम थोड़ा जाप और ज्यादा कर लेना। करोगी न?’

सुरसुंदरी जैसे अपने दुःख भूल गयी... सरिता की बातों ने उसके दिल पर का बोझ हलका कर दिया। ‘मैं तो लीलावती को कहूँगी कि ‘अच्छा ही हुआ जो वह सुंदरी भाग गयी... वरना वह जगदम्बा तो तुम्हारे इस भवन को राख कर डालती! उसका यक्षराज आकर हम सबको कच्चा ही चबा जाता!’

सुरसुंदरी मुँह में साड़ी का आंचल भरकर हँसने लगी। सरिता भी हँस पड़ी!

सुरसुंदरी ने दूध पी लिया और सरिता से कहा : ‘आज तो थाली भरकर खाना लाना। भर-पेट खाऊँगी!’

‘खाओगी ही न! कल जो दौड़ लगानी है!’

‘तेरी तर्कशक्ति लाजवाब है।’

सरिता हँसती-हँसती चल दी। सुरसुंदरी काफी आश्वस्त हो गयी थी। सारी रात उसे नींद नहीं आयी थी, इसलिए वह जमीन पर लेटते ही वहीं पर सो गयी। गहरी नींद में वह दो प्रहर तक सोयी ही रही।

अचानक उसके पैरों के तलवे पर किसी का मुलायम स्पर्श होने लगा, तो वह झटके के साथ जग उठी। आँखे खोलकर देखा तो पैरों के पास सरिता बैठी थी। उसके निकट भोजन की थाली पड़ी हुई थी।

‘तू कब आई?’

‘दो घड़ी तो बीती ही होगी!’

‘ओह! मुझे जगाना तो था!’

‘सपना टूट जाये तो?’

हंसी के फूल खिले अरसे के बाद!

१३१

‘बिलकुल ही गलत बात! मुझे एक भी सपना आया ही नहीं था। इतनी तो गहरी नींद आयी कि पिछले कई दिनों से मैं गहरी नहीं सोयीथी। आज सो गयी... इसका श्रेय तुझे...’

‘न...न... नहीं! इसका श्रेय तुम्हारे उस नवकार मंत्र को देना। अब बातें बाद में करेंगे... अभी तो भोजन कर लो।’

‘तू भी मेरे साथ ही खाना खाएगी न?’

‘इतना भोजन हम दोनों को पूरा थोड़े ही होगा?’ मुझे खाने के लिए ज्यादा चाहिए!’ सरिता ने भोजन की एक थाली मेज पर रखी।

एक ही थाली में दोनों ने भोजन किया।

‘देवी! एक बात की सफाई दे दूँ... मैं इस भवन की परिचारिका हूँ, इतना ही! इस भवन के धंधे के साथ मेरा कोई संबंध नहीं है! ऐसी सफाई इसलिए दे रही हूँ, कहीं पीछे से तुम्हारे मन में अफसोस न हो कि मैंने वैश्या के साथ भोजन किया, अपने शील को कलंक लगाया। केवल पेट की खातिर मुझे इस भवन में नौकरी करनी पड़ती है।’

सुरसुंदरी सरिता के ऊर्जस्वी उजले चेहरे को देखती रही। उसके दिल में सरिता के प्रति स्नेह का रंग उभरने लगा।

सरिता खाली थाली लेकर चली गयी।

सुरसुंदरी लीलावती के कमरे की तरफ चल दी।

लीलावती ने दुलार से सुरसुंदरी का स्वागत किया और पूछा :

‘सुंदरी, थकान तो उतर रही है न? कोई तकलीफ तो नहीं है न?’

‘सब कुछ ठीक है... पर एक ज़रा तकलीफ है!’

‘क्या है? बोल न?’

‘मुझे मेरा शरीर किसी अच्छे वैद्य को दिखाना होगा। शायद मैं किसी रोग की शिकार हो गयी हूँ... यह रोग दूर हो जाए, फिर ही मैं तुम्हारी आज्ञा का पालन कर पाऊँगी।’

‘इसमें कौन-सी बड़ी बात है? अच्छा हुआ आज तूने बता दिया। मैं वैद्य को कहला देती हूँ। वह सुबह ही मिलता है। कल सुबह मैं तुझे वैद्य के वहाँ भिजवा दूँगी। और कुछ चाहिए तो कहना।’

‘नहीं... बस, औषधि-उपचार हो जाए तो फिर शांति रहेगी।’

सुरसुंदरी सरोवर डूब गई!

१३२

सुरसुंदरी अपने कक्ष में चली आयी। उसे अपनी योजना सफल होती दिखी, पर मैं नगर छोड़कर भाग कर जाऊँगी कहाँ? जंगल में कोई नराधम मिल जाँएँ तो?’

दुःख के ही दिन में विचार भी ज्यादातर दुःख के आते रहते हैं। सुरसुंदरी गुमसुम हो गयी। उसने श्री नमस्कार महामंत्र का जाप चालू किया। मन को एकाग्र बनाने की कोशिश करने लगी। धीरे-धीरे जाप में लीन हो गयी।

साँझ के भोजन का समय हो चुका था।

सरिता का स्वर गूँजा : ‘क्या मैं अंदर आ सकती हूँ?’

जवाब की प्रतिक्षा किये बगैर वह अंदर चली आयी। भोजन की थाली मेज पर जमाकर बोली :

‘अक्का (लीलावती) की आज्ञा के मुताबिक कल बड़े तड़के ही मुझे तुम्हारे साथ वैद्यराज के घर जाना है।’

‘मैं तैयार रहूँगी।’

‘अभी तो भोजन के लिए तैयार हो जाओ! हाँ, पेट भर खाना... क्या पता कल कहाँ जाओगी? क्या खाने को मिले न मिले! और फिर तुम यहा नहीं खाती... वह नहीं खाती... कितना कष्ट दे रही हो अपने आपको!’

‘सरि! जिंदगी में आँधी के गले गलबाँही डालकर हमे जीना ही पड़ता है, न इन्सान को? और मेरी किस्मत में तो जीते जी मर जाना लिखा कर लायी हूँ... न जाने कितनी मौतें मेरा इंतजार कर रही हैं!’

‘ऐसा मत कहो! ये दिन भी गुजर जाएँगे... देवी! तुम्हारी रक्षा तो मंत्र के देवता जो कर रहे हैं! अच्छा अब भोजन को ठंडा करने की आवश्यकता नहीं है।’



२१. सुरसुंदरी सरोवर में डूब गई

‘वैद्यराज, हम देवी लीलावती के भवन से आ रहे हैं। देवी ने कहलवाया है कि यह नवागंतुक सुंदरी के दर्द को जानकर उसका उपचार करना है।’

सरिता ने वैद्य राज को नमन करके विनयपूर्वक निवेदन किया।

‘अच्छा, तुम भीतर के कमरे में बैठो, मैं जरा अपने नित्यकर्म से निपटकर देख लूँगा।’

‘यदि आपको विलम्ब होनेवाला हो तो इस सुंदरी को मैं यहीं छोड़कर जाऊँ! फिर वापस आ जाऊँगी इसे ले जाने के लिए।’

‘ठीक है... तुझे जाना हो तो जाओ बाद में वापस आ जाना। चूँकि मुझे देर तो लगेगी ही।’

सुंदरी की ओर देखकर सरिता ने जाने की इजाज़त ली। इशारे से जंगल का रास्ता दिखाकर सरिता वहाँ से तेज़ी से चल दी।

सुरसुंदरी ने खिड़की में से दूर-दूर तक फैले हुए जंगलों को देखा। पेड़ों के झुरमुट थे... छोटी-मोटी पहाड़ियाँ... नदी-नाले... दिख रहे थे। जंगलों के उस पार ओझल हो जाना सरल था।

नित्यकर्म से निपटकर वयोवृद्ध वैद्यराज सुरसुंदरी के पास आये।

‘कहो... बेटी... क्या तकलीफ है?’

‘पितातुल्य वैद्यराज। मेरी तकलीफों का अंत नहीं है। पति के द्वारा त्यक्त और इस वैश्या के हाथों बिकी मैं एक राजकुमारी हूँ। आपकी शरण में आयी हूँ। मुझे बचा लीजिए!’

‘बेटी, मैं तो एक वैद्य हूँ।’

‘मैं जानती हूँ... रोग का मेरा बहाना है। मुझे दरअसल मैं तो यहाँ से फरार हो जाना है। मैं अपनी जान देकर भी मेरे शील की रक्षा करना चाहती हूँ। मैं आपकी एक सहायता चाहती हूँ।’

‘बोल बेटी! क्या करूँ मैं तेरे लिए? तू इतना सहन कर चूकी है... बेटी.. क्या करूँ? मेरा तो पेशा है, फिर भी तू बोल मैं क्या कर सकता हूँ?’

‘मैं यहाँ से भाग रही हूँ। लीलावती तलाश करने के लिए यहाँ आयेगी।’

सुरसुंदरी सरोवर डूब गई!

१३४

आप उसे इतना यदि कहें 'वह कहाँ गयी... मुझे मालूम नहीं है... मैंने तो उसे जाँचकर दवाई दे दी थी... फिर वह चली गयी।'

'अच्छा... बेटी! तू अब यहाँ से शीघ्र चली जा। परमात्मा तेरी रक्षा करेंगे। आखिर तो सत्य ही विजयी होता है।'

सुरसुंदरी वैद्यराज के चरणों में प्रणाम करके त्वरित गति से उस मकान से निकलकर नगर के दरवाजे के बाहर आयी और फिर नवकार का स्मरण करके जंगल की ओर दौड़ने लगी। मन में नवकार का जाप था। एकाध कोस तक मुख्य रास्ते पर चलने के पश्चात् वह पगडंडी पर दौड़ने लगी।

वह जानती थी सवा लाख रुपये देकर वेश्या ने उसे खरीदा था। वह गुम हो जाए... फरार हो जाए तो उसे खोजने के लिए लीलावती धरती-आकाश सिर पर उठाये बिना नहीं रहेगी। राजा के समक्ष शिकायत करेगी तो राजा के सैनिक भी चारों ओर उसे खोजने के लिए निकल पडेगे।

सुरसुंदरी न दिशा देखती है... न काँटे-कंकड़ का ख्याल कर रही है, वह तो बेतहाशा दौड़ रही है। दौड़ते-दौड़ते थक जाती, तो धीरे-धीरे चलती है। चारों ओर देखती है। दूर-दूर नजर फेंकती है। उसके मन में भरोसा हो गया कि कोई पीछा नहीं कर रहा है। वह आश्वस्त हुई।

दिन के तीन प्रहर बीत गये। सूरज अस्ताचल की ओर झुकने लगा था। सुरसुंदरी एक बड़े सरोवर के किनारे के पास जा पहुँची थी।

सरोवर के किनारे वृक्षों का समूह था। सुरसुंदरी उसमें जाकर बैठी। वह थकान से चूर हुई जा रही थी। उसका पूरा शरीर पीड़ा से तड़प रहा था। दोनों पैरों की एड़ियों से खून बह रहा था।

सुरसुंदरी को सरिता का विचार सताने लगा। 'क्या हुआ उस बेचारी का? क्या लीलावती ने उस पर मुझे भगाने का इल्जाम तो नहीं मढ़ा होगा न? उससे सत्य उगलवाने के लिए फटकारा तो नहीं होगा न? वेश्या के घर में नौकरी करती है, फिर भी उसके दिल में कितनी मानवता भरी हुई है? मेरे लिए उसने कितनी हिम्मत दिखायी। मैंने उसे कुछ दिया भी नहीं। ऊफ... मेरे पास है भी क्या देने के लिए? मैं कितनी अभागिन! ओ मेरे परमात्मा... उसकी रक्षा करना... मेरे नवकार, उसे आपत्ति से बचाना।' सुरसुंदरी की आँखों में से गरम-गरम आँसू टपकने लगे।

उसने इधर-उधर की जमीन को साफ किया और विश्राम करने के लिए लेट गयी। हवा शीत थी। पेड़ों की ठंडी छाँव थी। पक्षियों का कुजन गूँज रहा था।

सुरसुंदरी सरोवर डूब गई!

१३५

झींगुरों की आवाज आ रही थी। फिर भी सुरसुंदरी की आँखों में नींद कहाँ? उसके मन में डर था... निराशा थी... वह व्यथा से आतंकित हुई जा रही थी।

‘मैं जाऊँगी कहाँ? जंगल में चोर - डाकू मुझ पर हमला करेंगे तो? किसी गाँव-शहर में जाऊँ तो... वहाँ फिर बदमासों से पाला पड़ जाए...! मेरा लावण्य ही मेरे शील के लिए खतरा खड़ा कर रहा है। नहीं... नहीं, अब मुझे जीना ही नहीं है। जीने का मतलब भी क्या? मैं इस सरोवर में कूदकर अपने प्राण दे दूँ।’

वह खड़ी हुई... उसके दिल पर निराशा का बोझ अब असह्य हुआ जा रहा था। वह सरोवर की पाल पर चढ़ गयी। सरोवर पानी से भरा-पूरा था। बड़े-बड़े मगरमच्छ उसमें मुँह बाये घूम रहे थे। सुरसुंदरी ने आँखे मूँद ली। दोनो हाथ जोड़कर श्री नवकार महामंत्र का स्मरण किया। शासनदेवों को स्मरण करके वह बोली :‘हे शासनदेवता : मैं चंपानगरी के श्रेष्ठीपुत्र अमरकुमार की पत्नी सुरसुंदरी हूँ। मेरे पति मेरा त्याग करके चले गये हैं। आज दिन तक मैंने मन-वचन-काया से अपने शील की रक्षा की है। अमरकुमार के अलावा अन्य किसी पुरुष को मैंने अपने दिल में स्थान नहीं दिया है। शायद अमरकुमार भूले-भटके मेरी खोज में यहाँ चले आये तो उनसे कहना कि तुम्हारी पत्नी ने इस सरोवर में कूदकर आत्महत्या की है।’

हे पंचपरमेष्ठी भगवान! मैं आपकी साक्षी से मेरी स्वयं की आत्मसाक्षी से कहती हूँ कि मेरे मन में किसी भी जीवात्मा के प्रति न तो गुस्सा है न नाराजगी है। मैं सभी जीवों से क्षमायाचना करती हूँ। सभी मुझे क्षमा करें। मैं अपने शरीर पर से ममत्व हटा रही हूँ। मैंने यदि इस जीवन में कुछ धर्म का पालन किया हो तो मुझे जनम-जनम तक परमात्मा जिनेश्वर देव का शासन मिले। मुझे उन्हीं की शरण है। मेरा सब कुछ धर्म को अर्पित है।’

और सुरसुंदरी ने छलॉग लगा दी सरोवर में। एक ‘छप...’ की आवाज आयी और सुरसुंदरी सरोवर के पानी में डूब गयी।



एक प्रहर बीत गया... सरिता लीलावती के पास पहुँची ‘देवी, सुरसुंदरी अभी तक वैद्यराज के घर से आयी नहीं है... तो क्या मैं जाकर उसे लिवा लाऊँ?’

‘क्या अभी तक नहीं लौटी? इतनी देर क्यों हुई उसे?’

‘देवी हम गये तब वैद्यराज तो नित्यकर्म से निपटे भी नहीं थे, उनकी उम्र भी तो कितनी अधिक हो चुकी है!’

सुरसुंदरी सरोवर डूब गई!

१३६

‘तू जल्दी जा... और सुरसुंदरी को ले आ।’

सरिता वैद्यराज के यहाँ पहुँची। वैद्यराज से पूछा :

‘वैद्यराज, सुंदरी कहाँ है?’

‘वह तो कभी की यहाँ से चली गई है।’

‘पर अभी वह हवेली पर पहुँची नहीं है।’

‘क्या पता कहाँ गयी होगी? यहाँ से तो दवाई लेकर चली गयी।’

सरिता दौड़ती हुई लीलावती के पास पहुँची... उसके चेहरे पर हवाईयों उड़ रही थी। चिंता एवं विह्वलता की रेखाएँ उभर रही थी।

‘देवी, सुंदरी तो वहाँ नहीं है... वैद्यराज ने कहा कि वह तो दवाई लेकर वहाँ से कभी की निकल गयी।’

‘फिर वह गई कहाँ?’ नगर में उसकी तलाश कर।’ लीलावती गुस्से व शंका से भड़क उठी थी। ‘सरिता, तुझे तो मालूम है न कि मैंने उसे सवा लाख रुपये देकर खरीदा था... वह इस तरह आँखों में धूल झाँककर चली जाए... यह तो...।’

‘देवी, भागने की तो उसमें हिम्मत दिख ही नहीं रही थी। कितनी गरीब गाय-सी लग रही थी...?’

‘अब बातें बनाना छोड़... जाकर तलाश कर।’ लीलावती ने नौकरों को भेजा तलाश करने के लिए और खुद राजसभा में पहुँची। राजा से शिकायत की। राजा ने तुरंत चारों ओर आदमी भेजकर तलाश करावायी। पर शाम ढलते-ढलते तो सभी खाली हाथ वापस आये। लीलावती के होश उड़ गये, वह फफक-फफककर रो दी।

सरिता ने लीलावती से आहिस्ता से कहा :

‘देवी, आप रोओ मत! सवा लाख रुपये तो तुम चुटकी बजाते कमा लोगी। वह सुंदरी गई तो मरी बला टली, वह यदि रहती तो अपन सब की जान खतरे में थी।’

‘क्या बात कर रही है, सरिता! साफ-साफ कह जो कहना हो।’

‘मैं सही बात कर रही हूँ, मालकिन... मैं सच बोल रही हूँ।’

‘पर कुछ बताएगी भी या बकती ही जाएगी?’

‘आप नहीं मानेगी, पर मैंने एक रोज उस सुंदरी को किसी खोफनाक यक्षराज से छिपकर बातें करते देखा था। मैं दरवाज़े की ओट में छिपकर खड़ी थी।’

सुरसुंदरी सरोवर डूब गई!

१३७

‘हैं क्या कहा? यक्षराज?’

‘हाँ... यक्ष उसे ढाढ़स दे रहा था : ‘तू चिंता मत कर बेटी, यह वेश्या यदि तेरे शील का खंडन करवाएगी तो मैं इसे जिंदा ही चबा डालूँगा।’

‘क्या कहा? तूने ऐसा सुना था?’ लीलावती डर के मारे काँपने लगी। उसने सरिता के दोनों हाथ पकड़ लिये।

‘हाँ, मैंने अपने कानों से सुना था।’

‘तो फिर मुझे आज तक बताया क्यों नहीं?’

‘शायद तुम्हें भरोसा नहीं होगा...’

‘तो क्या वह यक्षराज ही उसे उठा ले गया होगा?’

‘मुझे तो ऐसा ही लगता है। जो हो सो अच्छा! अब उसे खोजने की कोशिश भी न कीजिए... क्या पता यदि यक्षराज नाराज हो जाएगा तो हम सबको...’

‘नहीं... नहीं... सरिता, मुझे नहीं चाहिए वह कलमुँही सुंदरी, कम्बख्त ने सवा लाख रुपये गँवाए मेरे!’

‘पर देवी! हम जिंदा रहे, यही गनीमत है, पैसा तो इधर गया... उधर से आ जाएगा।’

‘हाँ... अपन जिंदा रहें यही बहुत। अब ऐसी किसी भी सुंदरी को नहीं खरीदूँगी।’



सुरसुंदरी सरोवर में कूद गिरी।

डुबकी खाकर जैसे ही वह पानी की सतह पर आयी कि एक बहुत बड़ा मगरमच्छ उसे निगल गया। बेहोश सुरसुंदरी मगरमच्छ के पेट में बिल्कुल अखंड-अक्षत उतर गयी। मगरमच्छ का एक दाँत भी उसके शरीर में लगा नहीं।

मगरमच्छ तैरता हुआ सरोवर के सामनेवाले किनारे पर चला गया। शिकार मिलने की खुशी में... वह खुद ही धीवरों का शिकार हो बैठा। किनारे पर धीवरों ने अपनी जाल बिछाकर तैयार रखा था।

किनारे पर खड़े धीवरों ने देखा कि बड़ा मगरमच्छ जाल में फँस गया है... वे बड़े खुश हुए। मगरमच्छ को बाहर निकाला। उन्होंने मगरमच्छ के पेट को काफी फूला हुआ देखा... ‘अवश्य, इस मगरमच्छ ने किसी बड़े जलचर को निगला लगता है।’

आदमी का रूप एक सा!

१३८

उन्होंने परस्पर बात करके मगरमच्छ को सावधानी से चीरने का निर्णय किया। काफी जीवट से उन्होंने मगरमच्छ को चीरा। अंदर में सुरसुंदरी को बेहोश स्थिति में देखा। वे पहले तो चौंक उठे। फिर बड़े सलीके से आहिस्ता-आहिस्ता उसको बाहर निकालकर जमीन पर सुलाया। सूखे कपड़े से उसके शरीर को पोंछा।

सभी धीवर सुरसुंदरी का बेजोड़ सौंदर्य देखकर पागल हो उठे। उन्होंने इतना सौंदर्य सपने में भी नहीं देखा था। 'यह स्त्री जिंदा है... मैं इसे अपनी पत्नी बनाऊँगा।' धीवरों का मुखिया मुँह से लार टपकाता हुआ बोला।

'यह नहीं हो सकता... इसे हम सबने मिलकर निकाला है, तू अकेला क्यों इसका मालिक होगा?' एक बूढ़े धीवर ने उसकी बात को काट डाला।

'तो फिर इस औरत का करोगे क्या?' मुखिया झुँझला उठा।

'मुझे एक विचार आया। हम इस औरत को अपने नगर के राजा को भेंट के तौर पर दे दें, तो शायद राजा हम लोगों को बहुत बड़ा इनाम देगा... अपन इस इनाम को आपस में बाँट लेंगे। क्यों ठीक है न?'

हाँ... यह अच्छी बात है... महाराज को इतनी सुंदर रानी मिल जाएगी... और हम को रुपयों की थैली! वाह, क्या कहना? दोनों का काम बन जाएगा।'

'पर पहले इस औरत को होश में तो लाओ!' एक धीवर बोला।

मुखिया समीप के जंगल में जाकर किसी वनस्पति के पत्ते तोड़ लाया। दोनो हाथों में पत्तों को मसलकर उसका रस सुरसुंदरी की नाक में बूँद-बूँद करके डाला। फिर उसी रस को उसके शरीर पर घिसने लगा।

धीरे-धीरे सुरसुंदरी की बेहोशी दूर होने लगी। उसने आँखें खोली... चारों तरफ नज़र फेरी... अनजान जंगली जैसे लोगों को देखकर वह चीख उठी... उसका शरीर काँपने लगा...

'मैं कहाँ हूँ...? तुम सब कौन हो?'

'तू सरोवर के किनारे पर है... तुझे मगरमच्छ निगल गया था। हमने उसे चीरकर तुझे जिंदा बाहर निकाला है; अब तुझे हम अपने राजा मकरध्वज को भेंट के रूप में दे देंगे। तू रानी बन जाएगी... महारानी बनेगी।'

'नहीं... नहीं...! मुझे नहीं होना है रानी... मुझे मरने दो...' सुरसुंदरी सरोवर की तरफ दौड़ी पर धीवरों ने उसे पकड़ लिया... और उसे लेकर नगर की ओर चल दिये।





असहाय रूपवती नव-यौवना!

निराधार लावण्यमयी ललना!

शायद ही किसी विरले आदमी की आँखें उस युवती में भगिनी का निर्मल-दर्शन कर सकती है। कोई-कोई महापुरुष ही उस ललना में जननी के मातृभाव के दर्शन कर सकते हैं। उसके सहायक बनते हैं। उसका आधार बनते हैं।

राजा मकरध्वज की विकारी आँखें सुरसुंदरी की देह पर बरफ पर फिसलती बारिश की तरह फिसल रही थी। सुरसुंदरी के नयन निमीलित थे।

‘अन्नदाता, हम लोग आपके लिए एक बढ़िया उपहार के तौर पर इस सुंदरी को ले आये हैं।’ धीवरों के सरदार ने राजा को नमस्कार कर के कहा।

‘वाह! क्या शानदार भेंट तुम लोग लाये हो मेरे लिए... जाओ... तुम सबको एक-एक हज़ार सुवर्ण मुहरें पुरस्कार के रूप में मिल जाएगी।’

राजा ने अपने कोषाध्यक्ष से कहा। कोषाध्यक्ष ने तुरंत हर एक धीवर को एक-एक हज़ार सुवर्ण मुहरें देकर बिदा किया। धीवर खुश होकर नाचते-कूदते हुए गये।

राजा सुरसुंदरी को लेकर राजमहल में आया। उसने परिचारिका को बुलाकर सुंदरी को स्नान वगैरह करवाकर सुंदर वस्त्र व कीमती गहनों से उसे सजाने का आदेश किया।

परिचारिका सुंदरी को लेकर गयी स्नानगृह में, ‘तू स्नान वगैरह कर लो... मैं तुम्हारे लिए वस्त्र आभूषण लेकर अभी आयी वापस।’

सुरसुंदरी ने मौन रहकर स्नानगृह में जाकर स्नान कर लिया। परिचारिका द्वारा दिये गये सुंदर वस्त्र उसने चुपचाप पहन लिए। गहने पहनने से उसने इन्कार कर दिया... ‘मैं गहने नहीं पहनती!’ परिचारिका ने आग्रह किया, पर सुरसुंदरी ने मना किया। परिचारिका सुरसुंदरी को लेकर राजा के पास आयी।

‘अब इसे सबसे पहले भोजन करवा दे, ऐसा कर, इसके लिए भोजन की थाली यहीं पर ले आ।’ परिचारिका को राजा ने आज्ञा दी। परिचारिका चली

आदमी का रूप एक सा!

१४०

गई, भोजन लाने के लिए। राजा वासना का ज़हर आँखों में भरकर सुरसुंदरी के देह पर छिड़कने लगा। उसकी आँखों में सुरसुंदरी का अनिद्य सौन्दर्य उन्माद जगा रहा था।

‘तेरा नाम क्या है?’

‘सुरसुंदरी।’

‘अरे वाह! है भी कितनी सुंदर! देवलोक की अप्सरा तो देखी नहीं, पर तुझसे ज्यादा सुंदर तो नहीं हो सकती।’

सुरसुंदरी सावधान हो उठी। ‘मैं यहाँ वापस फँस गयी हूँ...’ उसे अंदाज़ लग गया। परिचारिका भोजन का थाल लेकर आयी। सुरसुंदरी क्षुधातुर तो थी ही। उसने खामोश रहते हुए भोजन कर लिया।

‘तू बहुत थकी-थकी लग रही है... एक दो प्रहर आराम कर ले।’ राजा ने परिचारिका की ओर देखकर कहा : ‘इसको अंतःपुर में ले जा। पटरानी के कक्ष के पासवाले कमरे में इसे आराम करवाना। इसे किसी भी तरह की तकलीफ न हो, इसका ख्याल करना।’

‘जी,’ कहकर परिचारिका सुरसुंदरी को अपने साथ लेकर चली गयी अंतःपुर में। राजा के निर्देश अनुसार परिचारिका ने कमरा खोल दिया। आवश्यक सुविधाएँ जुटा कर परिचारिका ने सुरसुंदरी की तरफ देखा।

‘मैं दो प्रहर तक आराम करूँगी... वहाँ तक इस कमरे में कोई आ न पाए! मैं कमरा अंदर से बंद कर रही हूँ।’

‘जैसी आपकी इच्छा।’ परिचारिका कमरे से बाहर चली गयी। सुरसुंदरी ज़मीन पर ही लेट गयी।

राजा मकरध्वज ने मन-ही-मन निर्णय कर लिया सुरसुंदरी को पटरानी बनाने का। पर इधर पटरानी मदनसेना ने परिचारिका को बुलाकर पूछा :

‘यह औरत कौन है?’

‘मैं नहीं जानती... महारानी।’

‘कहाँ से आयी है?’

‘धीवरों के टोली को मिली थी, वे महाराजा को भेंट कर गये हैं।’

‘महाराजा ने क्या कहा इस स्त्री से?’

‘मैंने तो कुछ सुना नहीं... स्नान-भोजन वगैरह करवाकर उसके लिए इस कमरे में आराम करने की व्यवस्था कर दी है।’

आदमी का रूप एक सा!

१४१

मदनसेना ने सुरसुंदरी को देखा था। अंतःपुर में उसका प्रवेश होते ही वह चौंक उठी थी : 'महाराजा ज़रूर इस औरत को रानी बनायेंगे... यह शायद उनकी प्रिय रानी हो जाए!' वह चतुर थी, विचक्षण थी। उसने तुरंत अनुमान लगा लिया।

'पुरुष तो हमेंशा नावीन्य का पूजारी होता है... यह ज़रूर नयी रानी बन जाएगी... वैसे भी रूपसी है... खूबसूरत है। राजा का मन मोह लेगी। धीरे-धीरे... मैं अप्रिय हो जाऊँगी, मेरा सर्वस्व लूट जाएगा। मैं कहीं की नहीं रहूँगी। नहीं... नहीं मैं इस औरत को यहाँ नहीं रहने दूँगी।'

राजा मकरध्वज सोचता है :

'मेरी किस्मत तेज है। कितनी आसानी से इतनी खूबसूरत परी जैसी औरत हाथ लग गयी है! दुनिया में खोजने जाऊँ तो भी ऐसा स्त्री-रत्न मिलना मुमकिन नहीं। कितना अद्भुत सौंदर्य है... एक-एक अंग जैसे संगमरमर सा तरासा हुआ है...। साक्षात् जैसे कामदेव की रति। मानो कामदेव ने ही इसको रचा हो। मदनसेना तो इसके आगे काली-कलूटी सी लगती है। मैं अवश्य सुरसुंदरी को पटरानी का पद दे दूँगा।'

राजा सुरसुंदरी से मिलने के लिए काफी अधीर हो उठा। अंतःपुर में गया। बेसमय, बेवजह राजा को अंतःपुर में आया देख कर पहले तो मदनसेना को अजूबा लगा... पर दूसरे ही क्षण राजा का इरादा भाँप गई। उसने राजा का स्वागत किया। उसका सन्मान किया और अपने शयनकक्ष में राजा को ले आयी। राजा की अस्वस्थता रानी से छिपी नहीं थी।

'अभी इस वक्त कैसे आना हुआ?'

'ऐसे ही चला आया... वह औरत आयी है न? उसे कोई असुविधा तो नहीं है न... बस, यही पूछने के लिए आया था।'

'कौन है वह स्त्री?'

'एक निराधार स्त्री है... धीवरों को एक मगरमच्छ के पेट में से जिंदा मिली है... वे मुझे भेंट कर गये हैं।'

'तो अब इसका क्या करना है?'

'अभी तक मैंने उसके साथ कुछ बातचीत नहीं की है... बात करूँ तब मालम हो कि उसका क्या इरादा है।'

आदमी का रूप एक सा!

१४२

‘पर आपने कुछ सोचा तो होगा न उसके लिए...?’

‘सोचा तो है... पर...’

‘मेरे सामने आप इतना झिझक क्यों रहे हैं?’ खुलकर कहिए ना... आपने क्या सोचा है...?’

‘शायद तुम्हें पसंद न आये!’

‘आपको जो पसंद... वह मुझे मंजूर होगा।’

‘सचमुच?’

‘तो क्या... आपको मुझपर भरोसा नहीं है...?’

‘नहीं-नहीं... भरोसा तो पूरा है।’

‘तो फिर कह दीजिए न अपने मन की बात।’

‘मैं सोचता हूँ... उसे रानी बनाने के लिए।’

‘ओह! इसमें इतना संकोच क्या? राजाओं के अंतःपुर में तो अनेक रानियाँ होती हैं...।’

‘पर अभी... मैंने उससे पूछा नहीं है।’

‘वह क्यों मना करने लगेगी? भला, राजा की रानी होना किसे पसंद नहीं?’

‘आज जाने दे... मैं कल उसे पूछ लूँगा।’

‘हाँ... आज तो वह अंदर से दरवाज़ा बंद कर के कमरे में सो गयी है।’

‘अच्छा... तो फिर अभी मैं चलता हूँ।’

राजा ने सुरसुंदरी के कमरे का दरवाज़ा बंद देखा ... और वह चला गया।

मदनसेना का मन कुढ़ने लगा : ‘क्या मैं इतनी पागल हूँ... जो मेरे ही सिर पर सौतन को बिठा लूँ...? नहीं... कभी नहीं...। महाराज उससे मिलें, इससे पहले मैं स्वयं उससे मिलूँगी। उसके मन की बात जान लूँगी। फिर आगे की सोचूँगी।’

संध्याकालीन भोजन का समय हो चुका था। परिचारिका सुरसुंदरी के लिए भोजन की थाली लेकर आयी... उसने दरवाज़ा खटखटाया। सुरसुंदरी जग गई... उसने दरवाज़ा खोला।

‘मैंने आपके आराम में खलल डाला... माफ करें... भोजन का समय हो चुका था... अतः...’

आदमी का रूप एक सा!

१४३

‘कोई बात नहीं... मैंने पर्याप्त आराम कर लिया है...।’

सुरसुंदरी ने शांति से भोजन किया। उसने परिचारिका से पूछा :

‘अरे, मैंने तेरा नाम तो पूछा भी नहीं। तूने बताया नहीं...। तू कितनी अच्छी परिचारिका है... मेरे जैसी अनजान के साथ भी सलीके से बोलती है... बात करती है।’

अपनी प्रशंसा सुनकर परिचारिका शरमा गई... वह बोली :

‘मेरा नाम रत्ना है।’

‘रत्ना, तेरी महारानी का क्या नाम है?’

‘मैं खुद ही बता दूँगी वह नाम... सुरसुंदरी।’ मदनसेना को खंड में आती देख परिचारिका सकपका गई। ‘मेरा नाम मदनसेना है... सुंदरी।’ चेहरे पर स्मित को बिखरेती हुई मदनसेना पलंग पर बैठी। सुरसुंदरी मदनसेना के सामने देख रही थी। रत्ना भोजन की खाली थाली लेकर कमरे में से बाहर निकल गयी थी।

‘आपका दर्शन करके मुझे आनंद हुआ।’ सुरसुंदरी ने बात शुरूआत की।

‘अतिथि की कुशलता पूछने के लिए तो आना ही चाहिए न?’ चाहे तू निराधार अबला हो... पर आज तो राजमहल की मेहमान हो।’

‘यह तो आपकी उदार दृष्टि है... वरना, निराधार नारी को आश्रय दे भी कौन, महारानी?’

‘तेरी बातें... तेरे बोलना के ढंग... इससे मुझे लगता है कि तू किसी ऊँचे घराने की स्त्री है। मेरा अनुमान सही है या गलत? सच कहना तू।’

‘आप सही हैं... देवी! मेरे पिता राजा हैं... और मेरे पति एक धनाढ्य श्रेष्ठी हैं।’

‘तो फिर तू निराधार हुई कैसे? यहाँ कैसे आ पहुँची? यदि तुझे एतराज न हो तो मुझे सारी बात बता।’

सुरसुंदरी ने अपनी सारी जीवन-कहानी कह सुनायी मदनसेना से। सुनते-सुनते मदनसेना ने कई बार अपनी आँखें पोंछी... सुरसुंदरी के प्रति हार्दिक सहानुभूति व्यक्त करते हुए उसने कहा :

‘बहन... तेरे शील को बचाने के लिए तू सरोवर में कूद गयी... कितना साहस है तुझमें? शीलरक्षा के लिए तूने कितने कष्ट उठाये...? और तू यहाँ कैसे

आदमी का रूप एक सा!

१४४

स्थान में आ फँसी हो? महाराजा तुझे रानी बनाने का इरादा कर रहे हैं।'

'नहीं... नहीं, यह कभी नहीं हो सकता... महारानी!'

'यह तो मैं समझ चुकी हूँ। तू दाँतो तले जीभ दबाकर मर जाएगी... पर राजा की इच्छा के अधीन नहीं होगी।'

'अब तो वैसे भी जीने की मेरी इच्छा ही नहीं है... जीकर करूँ भी क्या? पर मौत भी कहाँ आती है? मरने जाती हूँ तो किसी न किसी बहाने बच जाती हूँ।'

'इतनी निराश मत हो। नवकार मंत्र के प्रभाव से तू अपने पति से ज़रूर मिलेगी।'

'कैसे मिल सकूँगी? मैं यहाँ फँस जो गयी हूँ।'

'इस आफत से तो मैं तुझे छुड़वा दूँगी... सुंदरी।'

'क्या कह रही हो, देवी! तो, तो मैं आपका उपकार कभी नहीं भूलूँगी... मेरे पर कृपा करो... मुझे यहाँ से मुक्त कर दो।'

'धीरे बोल... दीवार के भी कान होते हैं।'

सुरसुंदरी की दुविधा दूर हुई। वह मदनसेना के निकट जाकर बैठी।

'देख, बराबर ध्यान से सुन। अभी यहाँ महाराजा आएँगे। इस वक्त तो मैं यहाँ पर हूँ तो तू निश्चित है। महाराजा को अपने कक्ष में ले जाऊँगी। वे दूसरा प्रहर पूरा होने के बाद अपने शयनकक्ष में चले जाएँगे। इसके बाद मैं तेरे पास आऊँगी।'

मैं तेरे कमरे के दरवाज़े पर तीन बार दस्तक दूँगी। तू धीरे से दरवाजा खोलकर बाहर सरक आना। चुपचाप मेरे पीछे-पीछे चली आना। मैं तुझे इस महल के गुप्त दरवाज़े में से बाहर निकाल दूँगी। फिर किले के गुप्त दरवाज़े से बाहर निकलवा दूँगी। बस, फिर तू जंगलों में खो जाना। तेरा नवकार मंत्र तेरी रक्षा करेगा।'

सुरसुंदरी तो सुनकर हर्ष विभोर हो उठी।

इतने में राजा मकरध्वज आ गया।

'आइये स्वामी।' मदनसेना ने स्वागत किया।

'क्यों सुरसुंदरी कुशल तो है न?'

आदमी का रूप एक सा!

१४५

‘आपकी कृपादृष्टि हो, फिर मुझे कुशलता ही होगी न?’

सुरसुंदरी ने आँखें मदनसेना की ओर रखकर जवाब दिया।

‘स्वामिन्, आपकी इच्छा सफल होगी।’

‘क्या तू ने सुरसुंदरी के साथ बात कर ली?’

‘हाँ... कर ली बात तो। पर आपको तीन दिन ज़रा सब्र करना होगा।’

‘अरे, तीन दिन क्या तेरह दिन भी मैं सब्र कर सकता हूँ सुंदरी के लिए!’

‘बस, तो फिर एक पक्की! अब आप मेरे शयनगृह में पधारें। सुरसुंदरी को अभी ज्यादा आराम की आवश्यकता है।’

मकरध्वज को लेकर मदनसेना अपने शयनकक्ष में चली गयी। सुरसुंदरी ने अपने कमरे के दरवाज़े बंद किये।

नई आफत से छुटकारा पाने का आनंद सुरसुंदरी को आश्वस्त कर रहा था। वह पलंग में लेटी... पर ‘यहाँ से वापस जाऊँगी कहाँ? फिर डरावने जंगल...। हाय... कितनी बदकिस्मती है मेरी...? न जाने कब यह सब दूर होगा?’

अस्वस्थ मन को पंचपरमेष्ठी के ध्यान में लगाती हुई वह नींद की गोद में सरक गयी।





घनी अँधेरी रात थी।

डरावना जंगल था।

सनसनाती हुई सर्द हवा के साथ खड़कते पत्तों की आवाज भी वातावरण को भयानक बना रही थी।

निपट अकेली सुरसुंदरी अनजान रास्ते पर बेतहाशा दौड़ी जा रही थी। उसे अपने विनश्वर प्राणों की तनिक भी परवाह नहीं थी, वह चिंतित थी केवल अपने शीलधर्म की रक्षा के लिए। खुद की जिंदगी के प्रति वह बेपरवाह हो चूकी थी। उसकी तमाम सुख की इच्छाएँ दुःख के दावानल में राख हो चूकी थी। उसने दो-दो बार मौत के मुँह में जाने के कोशिश की, पर मौत उससे कतराती रही। चाहने पर भी मृत्यु उसे मिल नहीं पा रही थी।

कुछ देर चलती... कुछ देर दौड़ती... सुरसुंदरी एक विकट अटवी में भटक गई, रात का दूसरा प्रहर पूरा हो चूका था। वह थक गई थी। 'कहीं सुरक्षित जगह मिल जाए तो आराम करलूँ।' सोच रही थी कि एक आवाज़ उभरी : 'कौन है? जो भी हो... वह खड़े रहना।' और जैसे ज़मीन में से फूट पड़े हो, वैसे अचानक दस बारह लुटेरों ने आकर सुरसुंदरी को घेर लिया। सुरसुंदरी डर के मारे काँप उठी एक लुटेरा आया... सुरसुंदरी के समीप आकर टुकुर-टुकुर उसे देखने लगा। सुरसुंदरी के सौंदर्य का नशा उस पर चढ़ने लगा।

'दोस्तो, हूर है हूर... यह तो! बिलकुल परी जैसी सुंदरी है! वाह! क्या माल मिला है? आज और तो कुछ नहीं मिला... पर अफ़सोस नहीं, यह तो सब से क्रीमती माल मिल गया।'

'तब तो आज रात हम कहीं नहीं जाएँगे... यहीं पर इस सुंदरी के साथ... ही रात...।'

'चुप मर... यह परी अपने लिए नहीं है... अपने मालिक के लिए है। पल्लीपति को भेंट देंगे तो वह बड़े खुश होंगे।'

'तो फिर ले चलो इसे पल्लीपति के पास!' लुटेरों के अगुआ ने सुरसुंदरी का हाथ पकड़ा। सुरसुंदरी ने झटका देकर अपना हाथ छुड़ा लिया। उसने कहा : 'मुझे छूना मत। मैं तुम्हारे साथ चल रही हूँ।'

आखिर 'भाई' मिला!

१४७

लुटेरे नाचते-कुदते हुए सुरसुंदरी को लेकर पल्ली की ओर चल दिये। सुरसुंदरी ने अपनी मानसिक शान्ति और धैर्य को सहेज लिया था। वह निश्चिंत होकर चल रही थी। जिसे मौत से डर न हो उसे फिर फिक्र किस बात की? जैसे कि सुरसुंदरी इन सभी आफतों की आदी हो गयी थी।

पल्ली आ गयी।

मशालों का प्रकाश था। सुरसुंदरी ने प्रकाश में लुटेरों के अड्डे की जगह को देख लिया। लुटेरे उसे एक मकान में ले गये। मकान क्या, मिट्टी का बनाया हुआ झोंपड़ा था।

मकान में घुसते ही उसने पल्लीपति को देखा... पलभर तो सुरसुंदरी भय से काँप उठी। उसे लगा वह किसी क्रूर बधेरे की गुफा में आ फँसी हो। पल्लीपति का शरीर एकदम स्थूल व भोंडा सा लग रहा था। उसके शरीर में रीछ से बाल उगे हुए थे। उसकी आँखे बड़ी-बड़ी और डरावनी थी। शरीर पर एक मात्र काला कपड़ा उसने लपेट रखा था, जो कि उसके शरीर के रंग में समा गया था। उसके समीप ही खून से सनी हुई दो तलवारें रखी हुई थीं। एक मैली-सी गोदड़ी पर वह करवट के बल लेटा हुआ था। लुटेरों के साथ रूपसी औरत को देखकर वह तुरंत उठ बैठा :

‘अरे वाह! दोस्तो... यह क्या चीज़ ले आये हो आज?’

‘मालिक, जंगल में से मिली है... परी है परी! देवलोक की अप्सरा से भी ज्यादा सुंदर लाये हैं आपके लिए सरदार!’

पल्लीपति आँखें फाड़कर जैसे सुरसुंदरी को कच्ची ही निगल जानेवाला हो, उस तरह घूर रहा था। सुरसुंदरी नज़र झुकाये हुए खड़ी थी।

‘सचमुच परी है, यह तो। मैं इसे मेरी पत्नी बनाऊँगा। जाओ, आज तुम्हें चोरी में जो भी माल मिले... वह सब तुम्हारा। हम तुम्हारे पर खुश हैं।’ लुटेरे खुश-खुश होकर नाचते हुए चले गये। पल्लीपति खड़ा हुआ। सुरसुंदरी के करीब आया। ‘देख सुंदरी। मैं इस पल्ली का मालिक हूँ... तुझे मैं अपनी औरत बनाऊँगा। तू मेरी रानी बनेगी। इस पूरे इलाके की महारानी! वाह! फिर क्या मजा आएगा!

‘अपना मुँह बंद कर। और मुझसे दूर खड़े रहना, यदि खैरियत चाहता हो तो।’ सुरसुंदरी ने घुड़कते हुए कहा।

‘तुझे मालूम है छोकरी, तू किससे बात कर रही है...?’

आखिर 'भाई' मिला!

१४८

'हाँ... हाँ... भली-भाँति जानती हूँ, मैं चोर-लुटेरों के सरदार से बात कर रही हूँ...'

'तुझे मेरी बात माननी होगी...।'

'नही मानूँगी तो?'

'इसका परिणाम बुरा होगा...'

'परिणाम की परवाह मैं नहीं करती।'

'तब मुझे जबरदस्ती तुझ पर काबू पाना होगा...। मैं तेरे रूप को कुचल डालूँगा अपने हाथों...।' और पल्लीपति सुरसुंदरी को अपने बाहों में भरने के लिए आगे बढ़ा... पर सुरसुंदरी चार-छह कदम पीछे हट गयी...।

'तू मेरे शील को नहीं लूट सकता, पागल... जहाँ खड़ा है वहीं खड़ा रहना... वरना।'

'ओहो... मेंढकी को भी जुकाम होने लगा... अरी क्या बिगाड़ लेगी तू मेरा?'

'मैं क्या करूँगी, यह जानने की तुझे बेसब्री है?'

'हो... हो... हो... यहाँ पर राजा मैं हूँ... मैं जो चाहूँ वह यहाँ पर होगा...। सीधे ढंग से मेरे वश में हो जा... नहीं तो मुझे हारकर इस सुंदर मुखड़े को खून से नहलाना होगा... हूँ हूँ... समझती क्या है, छोकरी! मैं तेरा सर उतारकर रख दूँगा धड़ पर से!'

'ऐसा डर किसी और को दिखाना... कायर! यदि ताकत हो, तो उठा तलवार और कर प्रहार!'

'अच्छा? इतनी हिम्मत तेरी?'

'अरे... बकबक किये वगैर हथियार उठाकर कुछ कर दिखा, ओ डरपोक!'

पल्लीपति का गुस्सा आपे से बाहर हो गया...। वह तलवार खिंचकर सुरसुंदरी की तरफ लपका।

सुरसुंदरी, आस-पास के वातावरण से अलग हटकर श्री नवकार महामंत्र के ध्यान में लीन हो गयी...। उसके इर्दगिर्द प्रखर-प्रकाश का एक वर्तुल खड़ा हो गया! कुछ पल बीते-न-बीते इतने में तो एक दिव्य आकृति प्रकट हुई...

पल्लीपति तो हक्का-बक्का रह गया। उसके हाथ में उपर उठी तलवार ज्यों-की-त्यों धरी रह गयी। दिव्य आकृति आगे बढ़ी... पल्लीपति के सीने पर कड़ा प्रहार किया। और एक दिव्य आवाज उभरी :

आखिर 'भाई' मिला!

१४९

'दुष्ट! नराधम! इस महासती पर तू प्रहार करना चाहता है...? तेरी जान ले लूँगी।'

पल्लीपति ज़मीन पर लूढ़क गया... उसकी तलवार दूर उछल गयी... उसके मुँह में से खून आने लगा... पूरा शरीर पसीने से तर-बतर हो गया... उसकी आँखें फटी-फटी रह गयी... भय... त्रास व पीड़ा से वह चीख उठा : 'मुझे बचाओ... मैं तुम्हें माँ मानता हूँ... मेरी माँ!... बचाओ...।'

देवी ने सुरसुंदरी के सिर पर हाथ रखा। सुरसुंदरी तो पंचपरमेष्ठी के ध्यान में लीन थी। सिर पर देवी का दिव्य कर-स्पर्श होते ही उसने आंखें खोली... शासनदेवी को हाजरा-हज़ूर देखकर वह हर्ष से विभोर हो उठी। उसने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और देवी अदृश्य हो गयी।

सुरसुंदरी ने पल्लीपति को देखा। वह बेचारा डर के मारे आँधी में पत्ते की भाँति काँप रहा था। उसके मुँह में से अब भी खून बह रहा था।... खड़े रहने की भी उसमें ताकत नहीं थी... वह बड़ी मुश्किल से बोल पाया :

'माँ... माफ करो मुझे! मेरी बड़ी गलती हुई... मैं तुम्हें नहीं पहचान पाया। तुम तो साक्षात् जगदम्बा हो! तुम्हारी करुणा से ही मैं जीवित रह सका हूँ। वरना मैं तो मर ही जाता... जाओ माँ! तुम्हे जहाँ जाना हो... तुम तो महासती हो...'

रात का तीसरा प्रहार पूरा हो चूका था। चौथा प्रहार प्रारंभ हो गया था। चाँद भी उग गया था, आकाश में। सुरसुंदरी एक पल भी देर किए बगैर, पल्ली में से निकल गयी... और जंगल के रास्ते आगे बढ़ गयी।

उसके शरीर में फुरती आ गई थी। उसकी कल्पना में से शासनदेवी की आकृति हट नहीं रही थी। श्री नवकार महामंत्र के अचित्य प्रभाव का प्रत्यक्ष अनुभव करके वह हर्षविभोर हुई जा रही थी।

और वह पल्लीपति सरदार! जब उसके साथी लुटेरे वापस पल्ली में लौटे, तो वह उन पर आगबबूला होता हुआ बरस पड़ा :

'दुष्टो! तुम किसे ले आये थे यहाँ? जानते हो?'

बेचारे लुटेरे तो पल्लीपति का इतना खोफनाक रूप देखकर सकते आ गये थे।

'वह तो साक्षात् जगदम्बा थी... तुम्हारे पापों से आज मैं मर ही जाता... भला हो उस जगदम्बा माँ का, उसने मुझे बचाया, पापियों! अब कभी भी

आखिर 'भाई' मिला!

१५०

किसी औरत को परेशान मत करना। किसी की इज्जत पर हाथ मत डालना। वरना मैं तुम्हें एक-एक को काटकर जमीन में गाड़ दूँगा।'

लुटेरों ने पल्लीपति की आज्ञा को माथे पर चढ़ाया। पल्लीपति ने जब सारी बात कही तब तो वे बेचारे काँपने लगे। उन्होंने क्रम खा ली फिर कभी किसी भी औरत को बुरी नज़र से नहीं देखेंगे।



सुरसुंदरी चलती रही सबेरे तक। वह एक भरे-पूरे सरोवर के निकट पहुँची। सरोवर की मेड़ पर चढ़कर देखा तो सरोवर में स्वच्छ पानी हिलोरें ले रहा था। हंसों के बच्चे तैर रहे थे पानी में।

सुरसुंदरी को प्यास लगी थी। उसने पानी पिया। वह थकान से चूर हो रही थी। किनारे पर के वृक्षकी छाया में जमीन पर ही लेट गयी सुरसुंदरी, आराम करने के इरादे से। कुछी ही देर में उसकी आँखें मूँद गयीं... वह नींद में खो गयी।

शासनदेवी के प्रत्यक्ष दर्शन होने के बाद सुरसुंदरी ने अनुमान लगाया था कि अब लगता है... मेरे दुःख के दिन बीत गये... पुण्य के उदय बगैर देवी-देवता का दर्शन होता नहीं।' इस अनुमान ने सुरसुंदरी के दिल में आशा, उमंग और आनंद भर दिया था। वह आश्वस्त हो चुकी थी। 'अब जल्द अमर से मिलन होना चाहिए।'

वह गहरी नींद में डूबी थी।

इतने में वहाँ एक विराटकाय पक्षी आया... और सुरसुंदरी के समीप बैठा... वह था भारंड पक्षी।

भारंड पक्षी का पेट एक होता है... उसकी ग्रीवा दो कान व आँखें चार-चार होती हैं। पैर तीन होते हैं... बोली वह मनुष्य की बोलता है... उस के मन भी होता है।

भारंड पक्षी ने सुरसुंदरी को देखा। उसने मृत देह समझकर सुरसुंदरी को अपने बड़ी चोंच में जकड़ा और वह आकाश में उड़ने लगा।

ज्यों-ज्यों भारंड आकाश में ऊपर उड़ने लगा... त्यों-त्यों ठंडी हवा के थपेड़े उसे लगने लगे। हवा के झोंकों ने सुरसुंदरी को जगा दिया... अपने आपको भारंड पक्षी के मुँह में फँसी देखकर... वह चीख उठी... छूटने के लिए

आखिर 'भाई' मिला!

१५१

भरसक कोशिश करने लगी... भारंड पक्षी ने जब जाना कि 'यह कोई लाश नहीं है... यह तो जिंदा स्त्री है। उसने अपनी चोंच को खोला...

सुरसुंदरी आकाश में फेंकी गयी। उसी समय आकाश में एक विमान चला जा रहा था। विमानचालक ने आकाश में इस रोमहर्षक दृश्य को देखा... सुरसुंदरी को भारंड पक्षी की चोंच से नीचे गिरते देखा... विमानचालक ने अपने विमान में तेजी से गिरती सुरसुंदरी को सावधानी से पकड़ लिया।

सुरसुंदरी विमान में गिरते ही बेसुध होकर लुढ़क गयी... विमानचालक ने उपचार वगैरह करके उसे सचेत कर दिया। जगकर उसने अपने सामने किसी अनजान खूबसूरत युवक को देखा। वह चौंकी। सावधान हो गई। मौका देखकर विमान में से कूदने के लिए तैयार हो गयी। विमान चालक ने उसको पकड़ लिया। 'मुझे रोको मत। मुझे जीना नहीं हैं... मुझे मर जाने दो।'

'तू है कौन? तेरा परिचय तो दे मुझे? तू क्यों मर जाना चाहती हो? ऐसी किस आफत में फँसी हो?'

तुम क्या करोगे, यह सब जानकर? मैं अच्छी तरह जानती हूँ... तुम मर्दों को। तुम मुझे अपनी पत्नी बनाने की बात करोगे... पर यह बात कभी भी हो नहीं सकेगी। तुम जैसे आदमी मुझे इससे पहले भी मिल चुके हैं।'

'बहन! हाथ की पाँचो ऊंगलियाँ एक सी नहीं होती। दुनिया में सभी आदमी कामी या लंपट ही होते हैं क्या? मैं तुझे मेरी बहन मानूँगा। तू मुझे भाई मान। अपना मुझे परिचय दे। मैं तुझे सहायक होऊँगा। तेरे दुःख को, जैसे भी हो दूर करने का प्रयत्न करूँगा।'

सुरसुंदरी ने कहा : पहले तुम विमान को आकश में रोक दो। या फिर ज़मीन पर उतारो... फिर मैं तुम्हें अपना परिचय दूँगी।'

विमानचालक ने आकाश में अपना विमान स्थिर किया। सुरसुंदरी ने अपनी रामकहानी शुरु से लेकर आज तक की कह सुनायी।

विमानचालक ने एकाग्रता-पूर्वक... सहानुभूति के साथ सारी बात सुनी। उसे एक महासती जैसी स्त्री बहन के रूप में मिलने का आनंद हुआ।

सुरसुंदरी ने पूछा: 'तुम कौन हो? अपना परिचय करा दो?'

'बहन, अब मैं अपना परिचय दूँगा। वैताढ्य पर्वत का नाम तो तूने सुना होगा?'

'हाँ... वैताढ्य पर्वत पर तो विद्याधर राजाओं के नगर हैं।'

नई दुनिया की सैर

१५२

‘उसकी उत्तर श्रेणी का मैं राजा हूँ। मेरा नाम है रत्नजटी। मेरे पिता का नाम है मणिशंख व मेरी माँ का नाम है गुणवती। मेरे पिता ने इस असार-संसार का त्याग किया है। उन्होंने चरित्रधर्म अंगीकार किया है। नंदीश्वर द्वीप पर वे कठोर तप कर रहे हैं। वे समता के सागर हैं। मैं उन्हीं के दर्शन-वंदन करने के लिए नंदीश्वर द्वीप में गया था। वहाँ से लौटते वक्त अचानक मुझे बहन सुरसुंदरी मिल गयी। पूर्व-जन्म के अनंत-अनंत पुण्य हो तब तेरे जैसी बहन मिले। अब तू बिलकुल निश्चिंत होकर मेरे साथ मेरे नगर में चल। मेरी चार पत्नियाँ हैं। उनमें से हर एक बड़े-बड़े राजा-महाराजा की बेटी हैं। उनमें रूप, रंग व रस का अद्भुत सामंजस्य है।’

‘मैं तुम्हारे साथ आऊँ तो सही... पर मेरी एक इच्छा यदि तुम पूर्ण करो तो?’



२४. नई दुनिया की सैर!

‘कह बहन! मेरी शक्ति व सामर्थ्य की मर्यादा में जो भी तेरा काम होगा मैं ज़रूर करूँगा।’

‘तुम जिस नंदीश्वर द्वीप की यात्रा कर आये... उस नंदीश्वर द्वीप की यात्रा मुझे नहीं करवा सकते?’

‘क्यों नहीं? ज़रूर... जरूर! करवाऊँगा मेरी बहन! नंदीश्वर द्वीप तो देव व विद्याधरों का महान् शाश्वत् तीर्थ है...। पर है बहुत दूर। फिर भी मेरा यह विमान हवा की गति का है। हम कहीं भी रुके बगैर... सीधे चलेंगे। कहीं उतरना नहीं पड़ेगा बीच में।’

‘पर रास्ते में आनेवाले द्वीप-समुद्र उन सबकी पहचान तो मुझे करवानी ही होगी।’ सुरसुंदरी हर्ष से पुलकित हो उठी। उसने साध्वीजी के पास ‘मध्यलोक’ का अध्ययन किया था। नंदीश्वर द्वीप के बारे में ढेर-सारी जानकारी उसके पास थी। आज यकायक... वह उस अद्भुत द्वीप की यात्रा करने के सौभाग्य को प्राप्त की।

जन-साधारण की, मामूली आदमी की औकात नहीं उस द्वीप पर जाने की। विशिष्ट विद्याशक्तिकाले मनुष्य ही वहाँ जा सकते हैं। रत्नजटी विद्याधर राजा था। उसके पास विशिष्ट प्रकार की विद्याशक्तियों थी।

रत्नजटी ने विमान को गतिशील बनाया। थोड़े ही क्षणों में विमान आकाश में ऊपर चढ़ गया व पूर्वदिशा की ओर तेज गति से आगे बढ़ा।

‘बहन, अभी हम जंबूद्वीप में से गुजर रहे हैं। अभी तुझे मेरुपर्वत दिखायी देगा। बिलकुल सोने का बना हुआ है, तू देखकर ठगी-ठगी रह जाएगी। अपना विमान मेरुपर्वत के समीप से ही गुजरेगा।’

सुरसुंदरी ने सोने का मेरुपर्वत देखा... वह बोल उठी, ‘अद्भुत! अद्भुत! कितना ऊँचा... आँख ठहरती ही नहीं। नहीं, भाई नहीं... नजर जाएगी भी कैसे? पूरे लाख योजन की ऊँचाई है उसकी।’

‘अब कुछ ही देर में अपना विमान लवणसमुद्र के ऊपर से उड़ेगा।’

‘हाँ... दो लाख योजन विस्तृत लवण समुद्र है न? सारे जंबूद्वीप के चारों ओर घेरा किये हुए फैला है।’

नई दुनिया की सैर

१५४

विमान 'लवणसमुद्र' पर से गुजर रहा था। नीचे पानी ही पानी...। सुरसुंदरी उस अपार अनंत जलराशि को अपलक निहारती ही रही। इतने में रत्नजटी ने कहा :

'अरे... इस समुद्र में क्या खो गयी? इससे भी बड़े-बड़े, लंबे-चौड़े... समुद्र हमको पार करने हैं।'

'वह तो है ही... कालोदधि सागर तो आठ योजन का है न?'

'तुझे तो द्वीप समुद्र की लंबाई-चौड़ाई भी याद है... कमाल है!'

'मैंने अपने पिता के घर यह सारा अध्ययन किया हुआ है न?'

'इधर देख बहन, अपन अब 'घातकी खंड' के ऊपर से उड़े जा रहे हैं।'

'यह भी जंबूद्वीप के जैसा मनुष्य क्षेत्र है... पर यहाँ की दुनिया तो निराली है...।'

विमान अति वेग से घातकी खंड को पार कर गया और कालोदधि सागर पर उड़ान भरने लगा। सुरसुंदरी तो जैसे अपने सारे दुःख भूल गई थी... उसके मुँह पर का विषाद पिघलकर बह गया था। जैसे ही विमान कालोदधि को पार करके 'पुष्करवर द्वीप' के आकाश मार्ग में प्रविष्ट हुआ कि सुरसुंदरी बोल उठी 'यह है 'पुष्करवर द्वीप' इसके आधे हिस्से में ही मानव सृष्टि है... आधे में नहीं। बराबर न?' उसने रत्नजटी के सामने देखा।

'सही बात है तेरी... अब अपन मनुष्य-क्षेत्र के बाहरी इलाके पर से उड़ान भरेंगे।'

पुष्करवर द्वीप पर से विमान ने पुष्करवर समुद्र में प्रवेश किया। रत्नजटी ने सुरसुंदरी से पूछा :

बहन, मैं एक विवेक तो भूल ही गया।'

'वह क्या?'

'तुझे भोजन के बारे में तो पूछा ही नहीं?'

'मुझे भूख-प्यास सताती ही नहीं। ऐसी यात्रा में खाना-पीना याद ही नहीं आता। कितनी अद्भुत यात्रा हो रही है अपनी। ओह, देखो तो सही, अपन अब वारुणीवर द्वीप पर आ पहुँचे।'

'हाँ... यह वारुणीवर द्वीप ही है... यहाँ मानवसृष्टि नहीं है।'

'अब तो किसी भी द्वीप पर मानवसृष्टि नहीं है।' मानवसृष्टि तो ढाई द्वीप में ही होती है।'

नई दुनिया की सैर

१५५

‘वाह! क्या सतेज स्मृति है तेरी। पर यह सब तूने पढ़ा किसके पास?’
रत्नजटी ने पूछा।

‘मेरी उपकारिणी साध्वी माता के पास। उनका नाम है सुव्रता।’

‘देख नीचे जरा। वह वारुणीवर समुद्र है... इस समुद्र के पानी को जो पीता है... उसे नशा चढ़ता है।’

सुरसुंदरी उस शांत महासागर को निहारती ही रही, न ज्वार न भाटा... न किसी तरह का समुद्री तूफान। काश, मेरी जिदगी भी ऐसी होती तो? नहीं... फिर यह सब देखने को नहीं मिलता! ‘अब जो आएगा वह है क्षीरवर द्वीप और इसके बाद क्षीरवर समुद्र।’

‘हाँ... क्षीरोदधि समुद्र का पानी तो देवलोक के देव तीर्थंकर परमात्मा के जन्माभिषेक के वक्त ले आते हैं। यह पानी यानी निरा दूध।’

‘हाँ... इस समुद्र के पानी का रंग दूध जैसा ही सफेद होता है... इसलिए तो इसका नाम क्षीरोदधि है।’

‘लो, हम क्षीरोदधि पर आ गये। सचमुच, पानी दूध जैसा ही है!’

‘अब जो द्वीप आएगा... उसका नाम घृतवर द्वीप।’

‘और इसके बाद आएगा, घृतवर समुद्र। द्वीप का जो नाम, उसी नाम का समुद्र।’

विमान तीव्र गति से उड़ रहा था। लाखों योजन के द्वीप-समुद्रों को बात ही बात उलांघ रहा था। घृतवर द्वीप व घृतवर समुद्र पर से गुजरकर विमान अब ईक्षुवर द्वीप पर से उड़ा जा रहा था।

‘ईक्षुवर समुद्र का पानी वास्तव में गन्ने के रस जितना ही मधुर होता है। अतएव इस समुद्र का नाम ईक्षुवर समुद्र है।’ रत्नजटी ने कहा।

‘सर्वज्ञ वीतराग भगवान यह सब अपने पूर्णज्ञान की दृष्टि से देखते रहते हैं। कितना यथार्थ ज्ञान! कितना वास्तव दर्शन!’

‘अब आएगा नंदीश्वर द्वीप! देवों का विद्याधरों का शाश्वत तीर्थ।’ रत्नजटी के स्वर में भक्ति का पुट था।

‘हाँ..हाँ.. वे दूर-दूर जो उत्तुंग पर्वत दिखायी दे रहे हैं। वे शायद नंदीश्वर द्वीप के ही पहाड़ होंगे।’

‘बस... अब अपन पहुँचने में ही हैं।’

नई दुनिया की सैर

१५६

‘मेरा तो जीवन धन्य हो गया। मैं तुम्हारा यह उपकार इस जन्म में तो क्या जनम-जनम तक नहीं भूला पाऊँगी।’

‘ऐसा मत बोल। इसमें उपकार क्या बहन! यह तो मेरे जैसे भाई का फर्ज है। तेरे जैसी बहन के लिए तो सब कुछ करने के लिए मन लालायित है।’

सुरसुंदरी... हर्ष भरे-पूरे नयनों से रत्नजटी की ओर देखती रही।

‘नंदीश्वर द्वीप आ गया! मैं विमान को नीचे उतार रहा हूँ।’

रत्नजटी ने विमान को धीरे से नीचे उतारा। एक स्वच्छ भूमि पर विमान को स्थिर किया। रत्नजटी व सुरसुंदरी दोनों विमान में से नीचे उतरे। रत्नजटी ने सुरसुंदरी से पूछा :

‘बहन, तेरी क्या इच्छा है? पहले जिनमंदिरों की यात्रा करना है या फिर पहले गुरुदेव मणीशंख मुनिवर के दर्शन करने चलना है?’

‘पहले शाश्वत जिनमंदिरों के दर्शन करें... शाश्वत जिनप्रतिमाओं की वंदना करें... और तत्पश्चात् गुरुदेव के चरणों में चलें। ठीक है न भाई?’

‘जैसी तेरी इच्छा यहाँ पर कुल बावन जिनमंदिर हैं। ‘अंजनगिरि’ पर चार जिनमंदिर हैं... ‘दधिमुख’ पर्वत पर सोलह जिनप्रासाद हैं, जबकि ‘रतिकर’ पर्वत पर बीस जिनालय हैं।’

‘तुमने बिलकुल सही संख्या बतायी... अब मैं उन जिनमंदिरों की लम्बाई-चौड़ाई बता दूँ?’

‘बोल!’

‘जिनमंदिर सौ योजन लंबे हैं... पचास योजन चौड़े हैं... एवं बारह योजन ऊँचे हैं।’

‘बिलकुल सच। बहन... तेरा श्रुतज्ञान वास्तविक है। अब अपन विमान से उन पर्वतों पर चलें। पहले, चल तुझे अंजनगिरि पर ले चलूँ।’

दोनों बैठ गये विमान में। कुछ ही देर में अंजनगिरि पर पहुँच गये। अंजनगिरि पर के अत्यंत आलीशान व मनोहारी जिनमंदिर देखकर सुरसुंदरी का मनमयूर नाचने लगा।

विधिपूर्वक उसने जिनमंदिर में प्रवेश किया... शाश्वत जिनप्रतिमा के दर्शन किये... उसकी आँखें हर्ष के आँसू से छलक उठे... अनिमेष आँखों से वह जिनेश्वर भगवान को निहारती रही।

नई दुनिया की सैर

१५७

मधुर, अर्थगंभीर एवं भावसभर शब्दों में उसने स्तुति प्रारंभ की।

विश्वाधार! जिणेसरू! निर्भय! परमानंद!

रूपातीत! रसादतीत! वर्णातीत! जिणंद!

स्पर्श-क्रियातीतं नमो! संगविवर्जित सर्व!

निरहंकार-मलक्षय! सादिनान्त! गतगर्व!

कर्माष्टक-दल पंक्तिभेतुः! -वीर्यानन्त! पसत्थ!

अकलामल! निष्कलंक! तात! नौमि प्रलब्धमहत्थ!

सुरसुंदरी ने विधिवत् भावपूजा की। चारों जिनमंदिरो में जाकर उसके दर्शन से अपनी आँखों की प्यास बुझायी। स्तुति करके अपनी जिह्वा को धन्य कर दिया।

वहाँ से विमान में बैठकर दधिमुख पर्वत पर जाकर सोलह जिनमंदिर की यात्रा की। सुरसुंदरी का हर्ष... उल्लास, आनंद पल-पल उफन रहा था दिल के सागर में!

रतिकर पर्वत के बीस जिनमंदिरों की यात्रा की। सुरसुंदरी कृतार्थता से छलाछल हुई जा रही थी। विमान के निकट आकर उसने भरी-भरी आवाज में कहा :

‘आज मैं उनका आभार व उपकार मान रही हूँ, भैया।’

‘उनका यानी किसका?’

‘जो यक्षद्वीप पर मेरा त्याग करके चले गये... उनका?’

‘ओह... अमरकुमार का?’

‘हाँ... उन्हीं का। वे जो यदि मेरा त्याग न कर गये होते, तो तुम कहाँ से मिलते? और यदि तुम नहीं मिलते तो नंदीश्वर द्वीप की यात्रा का सद्भाग्य... इतनी महान् यात्रा करने का परम सौभाग्य मुझे मिलने वाला कहाँ था?’

‘बहन! ‘जो होता है सो अच्छे के लिए। ऐसा ज्ञानी पुरुषों ने कहा है न?’

‘कहा है! परंतु अच्छा नहीं होता वहाँ तक..., जो अधीरता उफनती है..., वह जीवात्मा को न किये जानेवाले विचारों में डूबो देती है। यक्षद्वीप पर छोड़ने के बाद एक के बाद एक जो घटनाएँ मेरे आस-पास पैदा हुई... वे सब कितनी दुःखद थी। कितनी सारी डरावनी थी। उस समय मैं सोच ही नहीं सकती कि

नई दुनिया की सैर

१५८

‘जो भी हो सो अच्छे के लिए। मुझे लगता था कि मेरे पति ने मेरा त्याग करके मुझे दुःख के सागर में धकेल दिया।’

‘चूँकि, तूने हमेंशा सुख की बजाय शील को बड़ा किमती माना है। तू आदर्शनिष्ठ नारी है। किसी न किसी आदर्श को दिल में स्थापित करके उस मुताबिक जीवन जीनेवालों को अनेक आपत्तियों का सामना करना ही पड़ता है। यदि तूने सुख से ही प्यार किया होता तो तुझे ये सारे कष्ट उठाने पड़ते क्या? क्या धनंजय तुझे सुख देने के लिए तैयार नहीं था? क्या फानहान तुझे अपना सर्वस्व समर्पित करने के लिए तैयार नहीं था? किसलिए तूने उन सबका तिरस्कारपूर्वक त्याग किया? तेरे मन में सुख की स्पृहा से भी कहीं ज्यादा शील धर्म की रक्षा का विचार प्रबल था।’

‘उस धर्म के प्रभाव से ही तो आज मैं इस दिव्य सुख को पा सकी हूँ! वरना मुझ जैसी साधारण स्त्री के नसीब में नंदीश्वर द्वीप की यात्रा हो ही नहीं सकती?’

‘और मुझे किस धर्म के प्रताप से ऐसी शीलवंत बहन मिली?’

‘तुम्हारे पिताजी के द्वारा तुम्हें प्राप्त हुए ऊँची कक्षा के संस्कार... यह क्या मामूली धर्म है?’

‘प्यारी बहन! पिता मुनिराज मात्र घोर तपस्वी ही नहीं हैं... वे विशिष्टज्ञानी महात्मा भी हैं... कभी-कभार उनके दर्शन-वंदन करके, उनका धर्मोपदेश सुनकर असीम आत्म-तृप्ति प्राप्त करता हूँ।’

‘तुम सचमुच महान् पुण्यशाली हो, भाई! ऐसे शाश्वत तीर्थ की अनेक बार यात्रा करने का पुण्य अवसर तुम्हें मिलता है... पिता मुनिवर के दर्शन-वंदन करने की भी भावना तुम्हारे दिल में उठती है। ऐसे उत्तम पुरुषों के दर्शन मात्र से जीवात्मा के पाप नष्ट हो जाते हैं। ऐसे निष्कारण-वत्सल महात्माओं के दो शब्द भी मनुष्य की ज्ञानदृष्टि को खोलने में सक्षम बन जाते हैं।’

‘तो अब अपन उन महात्मा के चरणों में चलें?’

‘हाँ... उनके दर्शन-वंदन करके पावन बनें।’

दोनों विमान में अपने-अपने स्थान पर विराजमान हो गये। विमान उड़ा। एक अत्यंत रमणीय भू-भाग पर विमान को धीरे से उतारा रत्नजटी ने। सृष्टि का श्रेष्ठ सौंदर्य मानो इस जगह पर नृत्य कर रहा था।

नई दुनिया की सैर

१५९

जैसा सौंदर्य छलक रहा था... उतनी ही पवित्रता उभर रही थी वहाँ के वातावरण में। वहाँ की हवा की लहरों पर मानो वैराग्य के संदेश लिखे हुए नजर आते थे।

‘कितनी अद्भुत जगह है यह?’ सुरसुंदरी बोल उठी :

‘इससे भी ज्यादा अद्भुत है, उन महामुनि के दर्शन।’

रत्नजटी सुरसुंदरी को लेकर, जिस पर्वत गुफा में मुनिराज थे वहाँ चला। सुरसुंदरी के लिए सुख का अरुणोदय हो चुका था। उसका मन खुशी से छलक उठा था। उसके प्राणों में प्रसन्नता के फूल खिल उठे थे। दुःखद भूतकाल का कारवाँ बहुत पीछे छूट चुका था... एक नया सवेरा उसको सुख का संदेश देने के लिए निखर-निखर कर आ रहा था।





सौम्य मुखाकृति!

संयम-सुवासित देहयष्टि!

तप के तेज से चमकती आँखें!

दिव्य प्रभाव का उजाला फैलाता हुआ आभा - मंडल!

‘मणिशंख’ मुनिराज के दर्शन कर के सुरसुंदरी के नयन उत्फुल्ल हो उठे। उसका हृदय-कमल खिल उठा!

रत्नजटी एवं सुरसुंदरी ने सविधि वंदन की। दोनों मुनिराज के सामने विनयपूर्वक बैठ गये। मुनिराज ने धर्मलाभ का गंभीर स्वर में आशीर्वाद दिया। दो पल आँखें मूँद दी... एवं अमृत-सी मधुर वाणी की मंदाकिनी प्रवाहित होने लगी।

‘महानुभाव! धर्म का प्रबल पुरुषार्थ करके इस मनुष्य जीव को सफल बना लेना चाहिए। तुम्हें मैं ऐसे पाँच प्रकार बतलाता हूँ धर्म के, जिसका कथन सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा ने किया है।

दया, दान, देवपूजा, दमन एवं दीक्षा-इन पाँच प्रकार का धर्म-पुरुषार्थ करनेवाला मनुष्य सुख-शांति को प्राप्त करता है... आत्मा को पावन करता हुआ परमात्मा के निकट ले जाता है एवं अंत में निर्वाण को भी प्राप्त कर लेता है।

मनुष्य यह धर्म-पुरुषार्थ तब ही जाकर कर सकता है जबकि वह अप्रमत्त बने... प्रमाद का त्याग करे... विषयोपभोग एवं कषाय परवशता का त्याग करे। चूँकि ये दोनों सबसे बड़े प्रमाद हैं... और प्रमाद आत्मा का भयंकर एवं सबसे बड़ा शत्रु है।

जिनेश्वर भगवंतो ने दान, शील, तप एवं भाव इस तरह चार को धर्म-पुरुषार्थ भी बतलाया है। यह चतुर्विध-धर्म गृहस्थ-जीवन का श्रृंगार है... शोभा है... उसमें भी शीलधर्म तो सर्वोपरि है। रत्नजटी, सुरसुंदरी की भाँति शीलधर्म का निर्वाह करनेवाला मनुष्य परम सुख को प्राप्त करता है।’

‘गुरुदेव, यह सुरसुंदरी कौन है?’

राज को राज ही रहने दो

१६१

‘वत्स, यह जो गुणवती नारी तेरे पास बैठी है... वही सुरसुंदरी है।’

रत्नजटी पल-दो-पल तो स्तब्ध रह गया... गुरुदेव के श्रीमुख से प्रशंसित सुरसुंदरी को उसने हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर प्रणाम किया। रत्नजटी हर्ष से गद्गद् हो उठा।

‘ओह... मुझे विश्व की श्रेष्ठ नारी बहन के रूप में अनायास प्राप्त हो गयी है...’

सुरसुंदरी ने विनयपूर्वक मुनिराज से पूछा :

‘गुरुदेव अभी मेरे पापकर्म कितने बाकी हैं? कहाँ तक मुझे इन पापकर्मों का फल भुगतना पड़ेगा... कृपा करके...’

‘भद्रे, अब तेरे पापकर्म करीब-करीब भोगे गये हैं... अब जरा भी संतप्त मत बन। बेनातट नगर में तुझसे अपने पति का मिलन हो जाएगा। अब तू निर्भय एवं निश्चिंत रहना।’

‘गुरुदेव, आपने मेरे भविष्य का रहस्य खोलकर मुझे आश्चस्त किया... आपने मुझ पर महान उपकार किया है।’ सुरसुंदरी ने ज़मीन पर मस्तक लगाकर पुनः वंदना की।

मुनिराज ने रत्नजटी की ओर सूचक दृष्टि से देखा। रत्नजटी ने गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य की।

‘गुरुदेव, आपके गुणनिधि सुपुत्र ने मुझे इस शाश्वत तीर्थ की यात्रा करवाकर मुझपर अनंत उपकार किया है... सही अर्थ में वे मेरे धर्मबन्धु बने हैं...’ सुरसुंदरी ने कहा। ‘और गुरुदेव,’ रत्नजटी का स्वर भावकुता से भीग रहा था, ‘आपने जिसका नाम गाया... वैसी महान शीलवती सुरसुंदरी को अपनी धर्म-बहन बनाकर अपने नगर में... मेरे महल में ले जा रहा हूँ... हम सब बहन की भक्ति करके कृतार्थ होंगे... और समय आने पर मैं उसे बेनातट नगर में छोड़ आऊँगा।’

दोनों ने गुरुदेव को भावपूर्ण वंदना की और वे गुफा में से बाहर निकले। रत्नजटी का हृदय प्रसन्नता से छलक रहा था। रत्नजटी को शब्द नहीं मिल रहे थे, सुरसुंदरी की प्रशंसा करे तो भी कैसे करे?

दोनों विमान के पास आये... सुरसुंदरी को आदरपूर्वक विमान में बिठाकर रत्नजटी ने विमान को आकाश में उपर-उपर चढ़ाया... एवं जंबूद्वीप की दिशा में गतिशील बनाया।

राज को राज ही रहने दो

१६२

सुरसुंदरी के समग्र चित्ततंत्र पर नंदीश्वर द्वीप छाया हुआ था। मुनिराज के शब्द उसके कानों में रूपहली घंटियों की भाँति गूँज रहे थे : 'अमरकुमार बेनातट में मिलेगा', वह अव्यक्त आनंद की अनुभूति में डूबी जा रही थी कि रत्नजटी ने उसको मनोजगत में से बाहर निकाला : 'बहन एक महत्त्व की बात कहना चाहता हूँ।'

'कहिए न... बेझिझक...'

'मैंने तुझसे पहले भी कहा था कि मेरी चार रानियाँ हैं... तुझ-सी ननद को देखकर वे पगला हो जाएँगी... तुझ से ढेर सारी बातें पूछेंगी... परंतु यक्षद्वीप से लेकर यहाँ तक की कोई भी बात उससे कहना मत।'

'क्यों? जो हो चुका है... उसे कहने में एतराज क्या?'

बहुत बड़ा एतराज है... बहन! तुझे नहीं, पर मुझे मेरी प्यारी बहन... तुझे मेरी रानियाँ दुखियारिन समझें... इस पर सबसे बड़ा एतराज है... मेरी बहन को कोई अभागिन समझे या उसकी तरफ दया... करुणा या सहानुभूति के दृष्टिकोण से देखे, यह मुझे जरा भी स्वीकार्य नहीं... मैं इसे पसंद नहीं कर सकता।'

'पर... मेरी दुःखभरी कहानी सुनने के साथ-साथ क्या उन्हें श्री नमस्कार महामंत्र के अचित्य प्रभाव की बातें सुनकर नवकार की महिमा पर श्रद्धा नहीं होगी?'

'वह श्रद्धा तो तू किसी अन्य उपाय से भी पैदा कर सकेगी... तेरी निजी बातें सिर्फ मैं और तू - दो ही जानते हैं। निजी बातें छठे कानों तक नहीं पहुँचनी चाहिए। वरना कभी बड़ा अनर्थ होने की संभावना है... देख... मैं तुझे इस बारे में एक कहानी सुनाता हूँ :

'कहो... कहो... समय भी आनंद से जल्दी गुजर जाएगा... और तुम्हारी बात की गंभीरता भी मेरे ख्याल में जम जाएगी।'

रत्नजटी ने कहानी शुरू की :

लीलावती नाम की नगरी थी।

राजा का नाम मुकुन्द एवं रानी का नाम था सुशीला। एक दिन राजा मुकुन्द अपने सामन्तों के साथ जंगल में सैर हेतु गया था। जब वह वापस लौटा तो रास्ते में नगर के दरवाजे पर एक कुबड़े आदमी को नाचते-गाते हुए देखा। राजा उसे अपने महल में ले गया।

राज को राज ही रहने दो

१६३

अलग-अलग तरह की चेष्टाएँ एवं मुँह चिढ़ाना वगैरह करके वह कुबड़ा राजा-रानी का मनोरंजन करने लगा। राजसभा में भी वह आता और रानीवास में भी बेधड़क चला जाता। उसे कही भी जाने की, घूमने की इजाज़त मिल गयी थी।

एक दिन महामंत्री मतिसार गुप्त मंत्रणा करने के लिए राजा के पास आये... राजा के पास कुबड़े को बैठा हुआ देखकर महामंत्री ने कहा :

‘महाराज, गुप्तखंड की बातें बाहर के व्यक्ति के कानों पर नहीं पड़नी चाहिए। गुप्त बातें चार कानों तक सीमित रहे, यही अच्छा है। वरना छठे कान तक बात फैलने से कभी मुश्किल पैदा हो सकती है...’

‘यह कुबड़ा तो अपना विश्वास-पात्र है... उसके कान पर पड़ी बात गुप्त ही रहेगी...’

‘हो सकता है गुप्त रहे... पर... कभी-कभार...’

‘चिंता न करें...’ राजा ने कुबड़े को दूर नहीं किया। महामंत्री मन मसोसकर रह गये... उन्होंने इधर-उधर की गपशप करके बिदा ली।

एक दिन एक योगी पुरुष राजसभा में आया। वह सिद्ध मांत्रिक था। राजा की सेवा - भक्ति से प्रसन्न होकर उसने राजा को परकाया प्रवेशी विद्या दी। मंत्र देकर वह मांत्रिक वहाँ से चला गया।

राजा जब मंत्र सीख रहा था, उस समय वह कुबड़ा भी वहीं पर बैठा हुआ था। उस योगी के शब्द सुने थे। अब जब राजा रोजाना मंत्रजाप बोलकर करता है... तो उस कुबड़े ने भी वह मंत्र सुन-सुनकर याद कर लिया। राजा को इस बात का ध्यान नहीं रहा... उस कुबड़े पर कोई शंका या संदेह तो था ही नहीं।

एक दिन राजा घुड़सवारी करता हुआ कुबड़े को साथ लेकर जंगल में वन विहार करने गया। वहाँ किसी ब्राह्मण का शव पड़ा हुआ था। राजा ने वह शव देखा। राजा को ‘परकाया प्रवेश’ विद्या का प्रयोग करने की इच्छा हुई। उसने कुबड़े से पूछा :

‘बोल, मंत्र की महिमा तू सचमुच मानता है या नहीं?’

‘नहीं महाराजा, मैं किसी भी तंत्र-मंत्र में बिलकुल भरोसा नहीं रखता।’

‘पर यदि मैं तुझे प्रत्यक्ष मंत्र की महिमा दिखा दूँ तो?’

राज को राज ही रहने दो

१६४

‘तब तो मानना ही पड़ेगा न?’

‘तो ले... मेरे इस घोड़े को सम्हालना। मैं इस मृत देह में प्रवेश करूँगा। यह मृतदेह जिंदा हो उठेगा।’

‘और आपकी देह का क्या होगा?’

‘वह मुरदे की भाँति पड़ी रहेगी।’

‘फिर?’

‘फिर मैं अपनी देह में प्रवेश कर दूँगा... तब यह ब्राह्मण का शरीर वापस मुरदा बन जाएगा। वह मृत देह हो जाएगा।’

राजा घोड़े पर से नीचे उतरा। घोड़ा कुबड़े को सौंपकर उसने मंत्र स्मरण किया। उसकी आत्मा ने विप्र के मृतदेह में प्रवेश कर दिया। विप्रदेह-ब्राह्मण का शरीर सजीव हो उठा। राजा का शरीर निश्चेष्ट-निष्प्राण होकर पड़ा रहा। ब्राह्मण के शरीर में बैठा हुआ राजा कुबड़े से पूछता है :

‘देखा न मंत्र का प्रभाव?’

‘हाँ, महाराजा! अब मैं भी यही प्रयोग करता हूँ...’ यों कहकर तुरंत उसने मंत्र का स्मरण किया। और राजा के मृतदेह में प्रवेश कर दिया। कुबड़े का शरीर निष्प्राण हो गया।

कुबड़ा राजा हो गया... राजा तो ब्राह्मण के शरीर में ही था।

राजा तो सकपका गया उसने पूछा : ‘तूने यह मंत्र सीखा कब?’

कुबड़ा अब हँसता हुआ कहता है... ‘आपके मुँह से सुन-सुनकर...।’

राजा ने कहा : ‘ठीक है... तूने सीखा... मुझे कोई एतराज नहीं है... अब तू मेरे शरीर में से निकल जा... ताकि मैं पुनश्च अपने शरीर में प्रवेश कर सकूँ?’

कुबड़ा ठहाका मारकर हँसा और बोला : अब मैं इस शरीर को छोड़ूँ? इतना मूर्ख थोड़े ही हूँ... अब तो मैं ही राजा हो गया हूँ... तू तेरे इस ब्राह्मण के शरीर में रहकर भटकते रहना... यों कहकर वह घोड़े पर सवार होकर नगर में आ गया.. राजमहल में गया। अंतःपुर में जाकर रानी से मिला... और राजा की भाँति जीने लगा।

इधर राजा के पछतावे का पार नहीं है... पर अब उसकी सही बात को भी माने कौन? कोई सबूत तो था नहीं? वह राजा बेचारा ब्राह्मण के वेश में परदेश चला गया।

राज को राज ही रहने दो

१६५

उधर एक बार रानी ने राजा बने हुए कुबड़े से पूछा : 'स्वामिन्, आपका वह कुबड़ा क्यों नहीं दिख रहा है... आज कल? पहले तो बेशरम कितना आता-जाता था!'

राजा ने कहा : 'जंगल में जानवर ने उसको मार डाला...'

अच्छा हुआ बला टली... कितनी गंदी हरकते करता था, कभी-कभार तो।'

राजा मन में सोचता है : 'बला टली नहीं है... बला तो तुझे पर सवार है... तेरे साथ है... और साथ रहेगा... तुझे अभी पता कहाँ है'

राजा रोजाना अंतःपुर में आता है... घंटों तक वही पड़ा रहता है... राजकाज में ध्यान नहीं देता है... कभी-कभार तो बचकानी हरकते करता है... रानी को ताज्जुबी होने लगी : कुबड़े के मरने के पश्चात महाराजा में बहुत बदलाव आ गया है... उनकी वाणी... उनकी बोलचाल... उनकी भाषा... उनके तौर-तरीके... सब कुछ बदला-बदला-सा लगता है। क्या हो गया है राजा को?'

रानी ने एक दिन महामंत्री मतिसार के समक्ष अपनी उलझन रखी। महामंत्री अनुभवी थे। विचक्षण थे। उन्हें भी राजा का बरताव अजीबो-गरीब तो लग ही रहा था। उन्होंने रानी से कहा :

'महादेवी, आप चिंता न करे... कुछ ही दिन में भेद का पता लग जाएगा।'

महामंत्री को मालूम था कि योगी ने राजा को 'परकाया प्रवेश' की विद्या दी हुई थी। उसके आधार पर उन्होंने कुछ अनुमान लगाया। महामंत्री ने एक दिन राजा से कहा : 'महाराजा, आपके ग्रहयोग अभी ठीक नहीं हैं... अतः राजपुरोहित के कहे अनुसार यदि दानशाला खोल दें, काफी दान-पुण्य करें तो ग्रहदशा सुधर जाएगी।'

राजा ने अनुमति दे दी। महामंत्री ने दानशाला खोल दी।

दानशाला में कई तरह के याचक-ब्राह्मण आने लगे। महामंत्री स्वयं उन सबके पैर धोते हैं एवं पैर धोते समय आधा श्लोक बोलते हैं :

‘षट्कर्णो भिद्यते मंत्रः कुब्जकान्नैव भिद्यते।’

इसके बाद सबको भोजन वगैरह करवाते हैं। हज़ारों ब्राह्मण इस दानशाला की प्रशंसा सुनकर दूर-दूर से वहाँ पर आने लगे। विप्र देह में रहा हुआ राजा मुकुंद भी एक दिन अपनी नगरी लीलावती की दानशाला में चला आया।

राज को राज ही रहने दो

१६६

उसका मन काफी उदास था। मंत्री ने उसके पैर भी धोये एवं आधा श्लोक बोला... वह सुनकर राजा चौंका और उसने जवाब दिया :

‘कुब्जोऽयं जायते राजा, राजा भवति भिक्षुकः।’

यानी कि मंत्री ने कहा : ‘छटे कान में गयीं हुई बात फैल जाती है, पर कुबड़े से नहीं फैलती...’ राजा ने कहा : ‘यह कुबड़ा राजा बनता है... एवं राजा भिखारी बनता है...’

मंत्री सुनकर खुश हो उठे। उन्हें जिनकी तलाश थी, वह असली राजा ब्राह्मण के रूप में मिल गया था। मंत्री ने राजा को अपनी हवेली में ले जाकर छिपाकर रखा। राजा से सारी बात जान ली।

फिर महामंत्री रानी के पास गये... तो रानी का तोता मरा हुआ रानी की गोद में पड़ा था... रानी आँसू बहा रही थी। चूँकि उसे अपना तोता बड़ा प्यारा था। मंत्री ने अवसर देखकर कहा :

‘महादेवी, महाराजा को बुलाकर कहिए कि इस तोते को किसी दुष्ट बिल्ली ने मार डाला है... तोता मुझे जान से भी ज्यादा प्यारा है... आप इसे किसी भी उपाय से सजीव कीजिए... योगी... सन्यासी को बुलाकर, मंत्र पढ़वाकर भी इस तोते को सजीव कीजिए... बस फिर मैं आप कहेंगे वैसा करूँगी... यदि आपका मुझसे सच्चा प्यार है, तो किसी भी तरीके से इस तोते को सजीव करें... वरना इस तोते के साथ मैं भी अग्निस्नान कर लूँगी।’

रानी ने राजा को बुलाकर उसी तरह से बात कही। राजा के शरीर में रहे हुए कुबड़े ने सोचा : मैं खुद ही तो मांत्रिक हूँ... मेरी परकाया प्रवेश विद्या के बल पर तोते के मृतदेह में प्रवेश करके एक बार उसे जिंदा कर के बता दूँ... रानी मुझ पर खुश हो जाएगी... वह फिर मेरी दासी बन जाएगी...’ यों सोचकर उसने रानी से कहा : ‘देख, तेरा यह तोता अभी जिंदा हो जाएगा... पर तब तक मेरा शरीर निष्प्राण होकर पड़ा रहेगा... तू उसे सम्हालना। एकाध प्रहर के बाद मैं फिर अपने शरीर में लौट आऊँगा।’

‘ओह... यह तो काफी गज़ब! क्या आप खुद यह चमत्कार कर दिखायेंगे?’

कुबड़े ने राजा का शरीर छोड़ा और तोते के शरीर में प्रवेश कर दिया। तोता जिंदा हो उठा। रानी नाच उठी। तोते को खिलाती हुई वह दूसरे कक्ष में चली गयी।

राज को राज ही रहने दो

१६७

इधर महामंत्री आनन-फानन में जाकर असली राजा को रानी के कमरे में लिवा लाये। राजा ने तुरंत मंत्र जाप करके अपने शरीर में प्रवेश कर दिया।

राजा ने महामंत्री का बहुत-बहुत आभार माना।

महामंत्री ने रानी से तोता लेकर उसे मार डाला।

रानी को अपना असली राजा मिल गया। राजा को भी अब अक्ल आ गयी। महामंत्री की बात अब उसे समझ में आयी।

‘वाह! भाई, वाह... तुमने तो कितनी सुंदर एवं मजेदार कहानी सुनायी... बहुत अच्छी... अच्छा तुम्हारी सलाह के मुताबिक मैं अपने जीवन की कोई भी बात मेरी भाभियों से नहीं करूंगी... भरोसा रखना।’

अपना विमान वैताढ्य पर्वत पर से उड़ रहा है... देख, नीचे, विद्याधरों के हज़ारों नगर दिख रहे हैं।

सुरसुंदरी ने नीचे निगाहें की तो विद्याधरों की अद्भुत दुनिया दिखने लगी।

‘अपना नगर कहाँ है?’

‘अब बस... सुरसंगीत नगर के बाहरी इलाके में ही विमान को उतारता हूँ।’

‘सीधे महल की छत पर ही उतारों ना? भाभियाँ आश्चर्यचकित हो उठेंगी।’

‘नहीं... नहीं... मेरी महान भगिनी को तो मैं भव्य नगर प्रवेश करवाऊँगा। फिर न जाने कब मेरी यह बहन मेरे नगर में आनेवाली है? उसमें भी अमरकुमार के मिलने के बाद तो...’

‘बस... बस... अब...’ सुरसुंदरी का चेहरा शर्म से लाल टेसू-सा निखर उठा।





बहन, अपना विमान सुरसंगीत नगर के ऊपर आ गया है। अब मैं विमान को थोड़े नीचे पर ऊड़ाऊँगा। तुझे मेरे सुंदर नगर के दर्शन करवाऊँगा।'

रत्नजटी ने सुरसुंदरी को नगर का दर्शन करवाया। सुरसुंदरी पुलकित होकर प्रसन्नता व्यक्त करने लगी। सचमुच सुरसंगीत नगर रमणीय था। विशाल व स्वच्छ राजमार्ग... एक जैसे भव्य एवं उन्नत महल, उत्तुंग स्तूप... गगन को छूते हुए मंदिरों के शिखर... उन पर लहराती हुई ध्वजाएँ... बड़े लंबे-चौड़े रमणीय उद्यान-बगीचे... नगर की चारों दिशाओं में कलात्मक प्रवेशद्वार!

रत्नजटी ने नगर के बाहरी उद्यान में विमान को उतारा।

'बहन, अब हम रथ में बैठकर नगर में प्रवेश करेंगे। मेरे नगरवासी तेरे दर्शन करके, मेरी भगिनी के दर्शन करके आनंद-विभोर बन उठेंगे।'

'नहीं... नहीं भैया... ऐसा कुछ भी मत करना। मुझ में ऐसी कोई विशेषता है ही नहीं कि लोग मेरे दर्शन करें, मेरा स्वागत करें। मैं तो एक तुच्छ नारी हूँ... अनंत-अनंत दोषों से भरी हुई...'

सुरसुंदरी शरमा गयी।

'वह तेरा भीतरी चिंतन है बहन! पूज्य पिता मुनि ने जिसे 'महासती' सन्नारी कहा है... वह मेरे लिए महान है... उत्तम है... पूजनीया है...।'

रत्नजड़ित सुवर्णरथ आ चुका था। रत्नजटी स्वयं रथ के सारथी के समीप में बैठा एवं सुरसुंदरी को भीतर बिठाया। रथ नगर के मुख्य प्रवेशद्वार में प्रविष्ट हुआ। सुरसुंदरी आश्चर्य से चकित रह गयी।

नगर के सभी राजमार्ग सजाए हुए थे। एक-एक महालय के द्वार पर तोरण बँधे हुए थे। हज़ारों सुंदर स्त्री-पुरुष राजमार्गों के दोनों ओर खड़े थे। हाथ ऊँचे कर-करके वे रत्नजटी का जय-जयकार करते हुए अभिवादन कर रहे थे। सुरसुंदरी को लगा कि रत्नजटी ने विमान में से ही विद्याशक्ति के माध्यम से नगर में संदेशा भिजवा दिया था। उसके मन में रत्नजटी के प्रति आदर बढ़ गया।

प्रजाजन सुरसुंदरी का भी अभिवादन कर रहे थे। सुरसुंदरी स्वयं भी दोनो हाथ जोड़कर, सर झुकाकर, अभिवादन का जवाब दे रही थी। आकाश में से

भाई का घर

१६९

जगह-जगह पर फूलों की वृष्टि हो रही थी। सुरसुंदरी के नाम का जय-जयकार हो रहा था।

रथ राजमहल के प्रांगण में पहुँचा। रत्नजटी रथ में से नीचे उतरा एवं सुरसुंदरी को सहारा देकर नीचे उतारा। उसे लेकर वह राजमहल के मुख्य प्रवेशद्वार में प्रविष्ट हुआ। वहाँ पर रत्नजटी की चारों रानियों ने सच्चे मोती उछालकर दोनों का स्वागत किया।

रत्नजटी ने रानियों के सामने देखा। रानियों की आँखों में उठती जिज्ञासा को पढ़ा... उसके चेहरे पर स्मित उभरा... उसने कहा :

‘अपनी प्यारी भगिनी को ले आया हूँ...।’ चारों रानियाँ हर्षविभोर हो उठीं। एक के बाद एक सभी रानियाँ सुरसुंदरी के गले मिली।

‘ओह, जैसा भाई का रूप है... वैसा ही बहन का रूप है...’ एक रानी ने कहा।

‘नहीं... नहीं... तुम गलती कर रही हो... मुझसे तो बहन का रूप कहीं ज्यादा सुंदर है... और रूप से कहीं ज्यादा सुंदर तो इसके महान गुण हैं।’

सभी ने महल में प्रवेश किया। रत्नजटी सुरसुंदरी को रानियों के पास छोड़कर अपने कमरे में चला गया। स्नान वगैरह नित्यकर्म से निवृत्त हुआ।

सुरसुंदरी को भी रानियों ने स्नान वगैरह करवाकर सुंदर वस्त्र पहनाये... रत्नजटी आ पहुँचा। उसने कहा : ‘अब भोजन कर लें... मैं तो आज बहन के साथ ही भोजन करूँगा।’

‘नहीं... भाई को भोजन करवाकर फिर ही बहन भोजन करेगी।’

‘वाह... ऐसा कैसे हो सकता है? आज तू पहले-पहल अपने भाई के यहाँ आयी है... मेरी अतिथि है, मेहमान है... तेरे पहले मैं कैसे खाना खा सकता हूँ?’

‘भाई के घर में बहन मेहमान नहीं होती। मेहमान तो पराये होते हैं, अपने नहीं। मैं तो घर की ही हूँ न?’

आखिर जीत सुरसुंदरी की ही हुई। उसने रत्नजटी को खाना खिलाया एवं बाद में चारों भाभी-रानियों के साथ बैठकर उसने भोजन किया। रानियों ने काफी आग्रह कर-कर के सुरसुंदरी को खाना खिलाया।

रत्नजटी ने अपनी रानियों से कहा : ‘बहन चाहे यहाँ पर मेहमान के रूप में न रहे... पर तुम उसे थोड़े दिन की मेहमान ही मानना। बहन के साथ जो बातें करनी हो... बहन को जीतना स्नेह देना हो... बहन से धर्म का भी ज्ञान

भाई का घर

१७०

लेना हो... ले लेना। तुम तो सब स्वयं समझदार हो... ज्यादा क्या कहूँ? बहन का मन प्रसन्न हो, प्रफुल्लित रहे... उस ढंग से उसका ध्यान रखना।'

'स्वामिन् आपने हमारी काफी पुरानी इच्छा पूरी की है... हमारी ननद को पाकर हम धन्यता की अनुभूति कर रही हैं... इनकी मुखाकृति ही इनकी गुणों की सूचक है।'

'इसके सुनते हुए यदि उसकी ज्यादा तारीफ की तो यह रूठ जाएगी... इसलिए मैं तुम्हें इसकी अनुपस्थिति में इसकी ढेर सारी विशेषताएँ बताऊँगा... रत्नजटी हँसता-हँसता वहाँ से चल दिया।

चारों रानियाँ सुरसुंदरी को लेकर उनके भव्य आवास में पहुँचीं। एक विशाल... सुंदर एवं सुशोभित खंड था। उसके चारों तरफ चार अलग-अलग खंड थे। उन कक्षों के द्वार उस विशाल खंड में आते थे। चारों रानियों के वे चार शयनकक्ष थे। रानियों ने चारों कक्ष बतालाये एवं पूछा : 'बहन, इन चारों में से तुम्हे कौन सा कमरा पसंद है... जो तुम्हे पसंद हो वह मिलेगा!'

'नहीं... नहीं... मेरे लिए यह बीचवाला कक्ष ही ठीक है...'

'ऊँहूँ... बीचवाले कक्ष में तुम्हें कैसे रखेंगे? चलो, ऊपरी मंजिल पर... वहाँ पर एक सुंदर खंड है...' सुरसुंदरी को ऊपर का कक्ष दिखाया... सुरसुंदरी को वह पसंद आ गया...। उसने कहा : 'बस... यह कमरा ठीक है मेरे लिए। मैं इसी में रहूँगी। तुम्हारा मन हो तब तुम ऊपर चली आना... मेरा मन होगा, तब मैं नीचे चली आऊँगी... ठीक है?'

'तुम्हें जो पसंद हो वह हमें मंजूर है...'

रानियों ने एक परिचारिका को सुरसुंदरी के पास नियुक्त कर दिया। कमरे में सभी तरह की सुविधाएँ जुटा दी।

'बहन... अब तुम एकाध प्रहर विश्राम कर लो। लंबी यात्रा करके आयी हो... फिर हम हाज़िर हो जाएँगी।' चारों रानियाँ नीचे चली आयी।

सुरसुंदरी ने जो पहला कार्य किया वह था श्री नवकार महामंत्र का जाप। तन्मय होकर उसने जाप किया एवं फिर निद्राधीन हो गयी... वह जमीन पर ही सो गयी...।

निश्चित एवं निर्भय थी न? उसे गहरी नींद आयी... जब वह जगी तब उसके चारों ओर रानियाँ प्रसन्नचित से बैठी हुई थी।

'ओह... तुम कब की आयी हो? कैसी चुपचाप बैठ गयी हो? मुझे जगाना तो था?'

भाई का घर

१७१

‘हम तो अभी-अभी ही आयी हैं... तुम्हारी नींद में विक्षेप पड़ा ना?’

‘नहीं... बिलकुल नहीं! मैंने तो पूरी नींद ली है... एकाध प्रहर तो बीता ही होगा।’

‘हाँ... एक प्रहर बीत गया... बाद में ही हम ऊपर आयी... तुम्हारी थकान तो दूर हो गयी है ना?’

‘श्रम तो मेरा तभी दूर हो गया था, जब पहल- पहल तुम्हें महल के दरवाजे पर देखा था। कितनी प्यारी-प्यारी हैं मेरी चारों भाभियाँ? मेरे भाई का पुण्य सचमुच श्रेष्ठ है, जो तुम-सी गुणवती भाभियाँ...’ एक रानी ने सुरसुंदरी के मूँह पर अपनी हथेली दबाकर उसे रोका :

‘हमें शरमाओं मत बहन! तुम्हारे भाई पुण्यशाली तो है हीं... वरना महासती जैसी तुम-सी बहन कैसे मिलती?’

‘यानी की अब तुम सब मिलकर मुझे शरमाना चाहती हो। अरे बाबा! हम सब पुण्यशाली हैं... अन्यथा परमात्मा जिनेश्वर देव का धर्म हमें नहीं मिलता! ऐसा अपूर्व मनुष्य जीवन नहीं मिलता! इतने अच्छे, स्नेही-स्वजन नहीं मिलते। और अचिन्त्य चिन्तामणि समान श्री नवकार मंत्र नहीं मिलता!’

‘बहन, यह ‘पुण्य’ क्या है?’ एक रानी ने जिज्ञासा व्यक्त की।

‘पुण्य कर्म है... बयालीस प्रकार हैं इस पुण्यकर्म के, हर एक पुण्यकर्म अलग-अलग सुख देता है।’

‘पुण्यकर्म का काम सुख ही देना है?’

‘हाँ... जीवात्मा मन से अच्छे विचार करे... अच्छी वाणी बोले... एवं सत्कार्य करे... इससे पुण्यकर्म बंधता है... वह पुण्य कर्म जब उदित होता है तब जीव को सुख देता है। जीव को सुख प्राप्त होता है...।’

‘पर... जीवात्मा हमेशा तो शुभ विचार या शुभ वाणी व क्रिया कर्म जब उदय में आते हैं तब जीवात्मा को दुःख देते हैं... जीवात्मा दुःखी होता है।

‘इस पाप कर्म के भी अलग-अलग प्रकार होंगे ना?’ दूसरी रानी ने जिज्ञासा व्यक्त की।

‘बिलकुल, पाप कर्म के बयासी प्रकार हैं, बड़े-बड़े प्रकार हैं बयासी! बाकी वैसे तो अनंत प्रकार हैं।’

‘यह पुण्यकर्म या पापकर्म दिखते हैं या नहीं?’

भाई का घर

१७२

‘नहीं... बिलकुल नहीं दिखते हैं... पर कार्य को देखकर कारण का अनुमान किया जा सकता है...। बीज दिखता नहीं है, पर वृक्ष नजर आता है...। वृक्ष को देखकर बीज का अनुमान अपन करते हैं ना? ‘बीज के बिना वृक्ष नहीं होता।’ इस सिद्धांत को जानने एवं माननेवाला व्यक्ति वृक्ष के आधार पर बीज का अनुमान करता है, इसी तरह संसार के जीवों के सुख-दुःख देखकर, उन सुख-दुःख के कारणों का अनुमान हो सकता है। एक सुखी... एक दुःखी ऐसी विषमताएँ इस संसार में दिखती ही है।’

‘पर इन विषमताओं के पीछे तो मनुष्य की बेवकूफी... बुद्धिमानी... कार्यदक्षता, आलस... समाज व्यवस्था... राजव्यवस्था वगैरह को भी तो कारण माना जा सकता है ना?’

‘ठीक है... एक अपेक्षा से हम यह मान सकते हैं... पर उस मूर्खता का कारण क्या? एक आदमी कार्यदक्ष क्यों? और दूसरा गँवार क्यों? एक व्यक्ति तंदुरुस्त एवं दूसरा बीमार क्यों? एक गरीब एवं एक अमीर क्यों? इन सबके पीछे मूलभूत कारण के रूप में पुण्य-पाप कर्म को मानना ही होगा।’

एक आदमी को दूसरा आदमी मारता है... तो मार खाने का दुःख तो उसे मारनेवाले ने ही दिया न? वहाँ फिर कर्म कारण कैसे बन सकता है?’ तीसरी रानी ने पूछा।

‘मार खानेवाले के पारपकर्म का उदय हुआ इसलिए दूसरे आदमी ने उसको मारा। उस आदमी के पापोदय ने ही मारने की इच्छा पैदा की। मेरे ऐसे पापकर्म का उदय हो तो तुम्हें भी मुझे मारने की इच्छा होगी। तुम उसमें निमित्त हो जाओगी। मैं यदि इस सिद्धांत को जानती होऊँगी तो मुझे तुम्हारे प्रति द्वेष नहीं होगा...

शत्रुता पैदा नहीं होगी।’

‘पर मारनेवाले को तो पापकर्म बँधेगा न?’

ज़रूर बँधेगा। मार खानेवाला यदि समता न रखे, गुस्सा... क्रोध या दीनता करे... तो उसे भी नये पापकर्म बँधेंगे... समता रखे तो नये पापकर्म नहीं बँधेंगे। और उदित पापकर्मों की निर्जरा हो जाएगी।’

‘क्या हो जाएगी? चौथी रानी पूछ बैठी।

‘निर्जरा! निर्जरा... यानी नष्ट हो जाना। कर्मों की निर्जरा यानी कर्मों का नाश। दुःख के समय यदि जीवात्मा समता’ समाधि-पूर्वक दुखों को सहन कर ले तो उदित हुए पापकर्म की निर्जरा हो जाएगी।’

भाई का घर

१७३

‘यह ‘कर्म’ क्या है?’

‘यह एक तरह के जड़ पुद्गल होते हैं। कार्मण जाति के पुद्गल होते हैं।’

‘आत्मा के साथ ये बँधते कैसे हैं?’

‘अशुद्ध आत्मा के साथ ही इन कर्मों का संबंध होता है... शुभ-अशुभ प्रवृत्ति से वे कर्म आत्मा में बह आते हैं... उसे ‘आश्रव’ कहा जाता है।’

‘तो जीवात्मा कोई न कोई शुभ या अशुभ प्रवृत्ति तो करता ही रहेगा? फिर तो सतत कर्मबंध होता ही रहेगा न?’

‘हाँ... प्रतिक्षण अनंत-अनंत कर्म बँधते हैं...’

‘फिर जीवात्मा की मुक्ति कब हो?’

‘नये कर्म बँधे नहीं... और पुराने बँधे हुए कर्मों को नष्ट कर दे।’

‘क्या आत्मा की ऐसी भी स्थिति आ सकती है कि वह कोई शुभ-अशुभ प्रवृत्ति करता ही न हो?’

‘हाँ... पूर्ण जागृति के वे क्षण होते हैं... शुभ या अशुभ कोई प्रवृत्ति नहीं होती।’

‘तब फिर वह करेगा क्या?’

‘कुछ भी नहीं करेगा, स्वरूप में रमणता। शुद्ध आत्मस्वरूप में रमणता। आत्मगुणों में रमणता।’

‘यह तो अद्भुत बात है...’ पहली रानी ने कहा। चौथा प्रहर बीत रहा था..., भोजन का समय हो चुका था।

‘चलो, नीचे चलें। भोजन का समय हो गया है।’ रानी ने कहा।

‘तुम रात को नहीं खाती क्या?’

बिलकुल नहीं। तुम्हारे भाई एवं हम सभी सूर्यास्त के पूर्व ही भोजन कर लेते हैं।’

‘बहुत बढ़िया, कितना उत्तम परिवार है!’

भाभियों के साथ सुरसुंदरी नीचे आयी। इतने में रत्नजटी भी वहाँ पर आ पहुँचा। सुरसुंदरी की ओर देखकर पूछा :

‘बहन, तेरी इन भाभियों ने तुझे आराम भी करने दिया या नहीं?’

‘पूरे एक प्रहर तक!’

सभी ने प्रसन्न मन से भोजन किया।



२७. भीतर का शृंगार

सच्चा प्रेम, दिये बगैर नहीं रहता! वास्तविक-आंतरिक स्नेह, प्रदान किये बगैर नहीं रहता! खुद के पास जो अच्छा हो... उत्तम हो... श्रेष्ठ हो... सुंदर हो... उसका अर्पण करेगा ही वह अपने प्रिय के लिए।

विद्याधर राजा की चारों रानियाँ सुरसुंदरी के ज्ञान एवं गुणों पर मुग्ध हो गयी थीं। सुरसुंदरी का व्यक्तित्व धीरे-धीरे समग्र राजमहल पर छाने लगा था। इतना ही नहीं... नगर में भी सुरसुंदरी के गुणों के गीत गाये जाने लगे थे। उसके आने पर मानों सुरसंगीतपुर नगर धन्य हो उठा था।

एक दिन की बात है।

सुरसुंदरी श्री नवकारमंत्र का जाप पूर्ण कर के उठी ही थी कि चारों रानियाँ उसके पास आ पहुँची।

सुरसुंदरी ने प्रेम से सबका स्वागत किया। एक रानी ने कहा :

‘दीदी...’

‘वाह! क्या संबोधन खोज निकाला है!’ सुरसुंदरी खिलखिला उठी।

‘क्यों? तुम तो हम सब की बड़ी बहन-सी हो ना?’

‘अच्छा बाबा! कहो जो कुछ भी कहना हो!’

‘दीदी... आज तो तुम्हारे चेहरे पर कितनी प्रसन्नता छलक रही है... क्या बात है? बहुत खुश नजर आ रही हो?’

‘सही बात है तुम्हारी... आज मैं सचमुच बड़ी खुश हूँ... आज मेरा मन पंचपरमेष्ठी भगवंतो के ध्यान में आनंद से भर उठा! मन डूब गया था भगवद्‌ध्यान में! जब भी मेरा मन परमेष्ठी के ध्यान में डूब जाता है... मेरा सारा अस्तित्व धन्य हो जाता है!’

‘दीदी... हमको भी ध्यान करना सिखाओ ना?’

‘ज़रूर... तुम्हें ध्यान सिखाने में मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी!’

‘कब सिखाओगी?’

‘अभी... आज ही...!’

भीतर का शृंगार

१७५

‘नहीं... नहीं... अभी तो हम आपको कुछ सिखाने के लिए आयी है’ और चारों रानियाँ एक-दूसरों की तरफ देखती हुई हँस दी! सुरसुंदरी को कुछ समझ में नहीं आया...!!! वह सभी रानियों के मुँह ताकने लगी। बड़ी रानी ने सुंदरी का हाथ अपनी हथेलियों में कसते हुए कहा :

‘प्यारी-प्यारी दीदी... आज तुम्हें हमारी एक बात माननी होगी!’

‘ओफ़... पर तुम्हारी कौन सी बात मैंने नहीं मानी?’

‘अरे... इसलिए तो हम तुम्हारे प्रेम में डूब गयी हैं... आज तो हम एक पक्का इरादा करके आयी हैं... आज हम अपनी ननदजी को सुंदर कपड़ों एवं कीमती आभूषणों से सजाएँगी! तुम मना मत करना...! नहीं करोगी ना?’

सुरसुंदरी हँस पड़ी। उसने कहा : ‘ओह, यही बात कहने के लिए इतनी लंबी प्रस्तावना की?’

‘और नहीं तो क्या? उस दिन पहले-पहले दिन जब हम तुम्हें सजाने-सँवारने लगी, तो तुमने साफ मना कर दिया था!’

‘सही कहा तुमने... उस रोज़ मैंने मना किया था, पर अब आज मैं मना नहीं कर सकती ना?’

‘क्यों? चारों रानियाँ एक साथ बोल उठीं!’

‘तुम्हारे प्यार ने मेरे दिल को जीत लिया है... मैं तुम्हारी किसी बात का इन्कार नहीं कर सकती!’

चारों रानियों की आँखें खुशी के आँसुओं से नम हो उठीं... उनका स्वर गद्गद् हो उठा... सुरसुंदरी ने कहा :

‘तुम मुझे स्नेह का अमृत-पान करवा रही हो, वह मैं कभी भी नहीं भूल सकती! मैंने तुम्हें पहले दिन क्यों शृंगार सजाने से रोका था, उसका कारण बताऊँ?’

‘हाँ...हाँ जरूर बताओ।’

‘पति के विरह में शृंगार रचाना पसंद नहीं करती और फिर मुझे बाहरी साज-सज्जा का इतना शौक भी नहीं है... परंतु आज मैं मना नहीं करनेवाली, बस!! खुश हो ना?’

‘अरे बहुत खुश, दीदी!!!’

चारों रानियाँ झूम उठी। उन्होंने सुरसुंदरी को बढ़िया वस्त्र पहनाये,

भीतर का शृंगार

१७६

क्रीमती आभूषणों से उसे सजाया... सुरसुंदरी का रूप पूनम के चाँद-सा खिल उठा।

‘अच्छा, तुमने मुझे बाहरी शृंगार दिया... अब मैं तुम्हें अपना भीतरी शृंगार बताऊँ क्या?’

‘हाँ हाँ... जरूर... हम तो जानने के उत्सुक हैं...’ चारों रानियाँ सुरसुंदरी के सामने बैठ गयीं।

‘देखो... भाभी! हमें सम्यग्दर्शन की सुंदर साड़ी पहननी चाहिए! सम्यग्दर्शन यानी सच्ची श्रद्धा! वीतरागसर्वज्ञ परमात्मा पर, मोक्षमार्ग की आराधना-साधना में रत सद्गुरुओं पर... एवं सर्वज्ञ के द्वारा बताये गये धर्ममार्ग पर श्रद्धा के वस्त्र! यह अपना पहला शृंगार है।’

‘हम स्त्रियों के वस्त्रों में सबसे महत्वपूर्ण वस्त्र है कंचुकी! दया एवं करुणा के कंचुकी हमें पहनना है! स्त्री करुणा की जीवंत मूर्ती होती है... क्षमा एवं दया की जीवंत प्रतिमा-सी होती है।’

‘अपने गले में शील एवं सदाचार का नौलखा हार सुशोभित हो रहा हो! यह अपना क्रीमती में क्रीमती हार है...!! प्राण चले जाएँ तो भले... पर अपना शील नहीं लुटना चाहिए।

अपने मस्तक पर... ललाट पर तिलक चाहिए ना? वह तिलक करना है तपश्चर्या का! अपने जीवन में छोटी या बड़ी... कोई न कोई तपश्चर्या होनी ही चाहिए।

यह तुमने जो मेरे हाथ में रत्नों व मोतियों से जड़े हुए कंगन पहनाये हैं... ये सुशोभित तो होंगे अगर मैं इन हाथों से सुपात्र दान दूँ! अनुकंपा दान दूँ... हाथ की शोभा दान से है। दान यही अपना सच्चा कंगन है।

अपने होंठ हम पान से - तांबूल से लाल करते हैं... पर सचमुच तो सत्य एवं प्रिय वाणी ही अपना तांबूल है... अपनी वाणी असत्य एवं अप्रिय नहीं होनी चाहिए। मेरी चारों भाभियों की वाणी कितनी मीठी है? कितनी सच्ची एवं अच्छी है? इसलिए तो मैं तुम सब पर मोहित हो गयी हूँ।’

चारों रानियाँ शरमा गयी... उनकी आँखें ज़मीन पर टिकी रही... सुरसुंदरी ने प्रेम से चारों के चेहरे ऊपर किये... और अपनी बात आगे चलायी...

‘मेरी आँखों में तुमने काजल लगाया है। अब मेरी आँखें पहले से ज्यादा सुंदर लग रही है न? पर इससे भी ज्यादा सुंदर आँखें मुझे तुम्हारी लग रही

भीतर का शृंगार

१७१

हैं। चूँकि तुम्हारी आँखों में लज्जा का काजल लगाया हुआ है... स्त्री की आँखों में लज्जा का काजल होना ही चाहिए... वह स्त्री सबको प्यारी लगती है... सब के दिल में बस जाती है... शृंगार रचाने का हेतु भी तो दूसरों को अच्छा लगना... दूसरों के दिल में बसना ही होता है न?’

‘अरे वाह! कितना प्यारा-प्यारा शृंगार बताया है, दीदी, तुमने तो! वाकई मजा आ गया आज तो तुम्हारी बातें सुनकर! मैंने तो अभी तक ऐसी बातें सुनी भी नहीं! सचमुच दीदी! यही सच्चा शृंगार है स्त्री का! और अब तुम्हारी ये बातें सुनने के बाद हमें समझ में आ गया कि क्यों तुम शृंगार सजाना पसंद नहीं करती हो।

‘और... ऐसे अद्भुत गुणों का शृंगार तो तुमने सजा ही रखा है... फिर भला इस बाहरी लीपापोती की तुम्हें क्योंकर चाह रहेगी?’ दूसरी रानी बोल उठी।

‘पर... एक बात मेरी समझ में नहीं आ रही है...’ तीसरी स्त्री ने प्रश्न किया।

‘कौन-सी बात?’ सुरसुंदरी ने पूछा।

‘पति के विरह में स्त्री को बाहरी शृंगार क्यों नहीं करना चाहिए?’

यह बात मैं तुम्हें समझाती हूँ... इस दुनिया में शीलवती नारी का यदि कोई सबसे बड़ा दुश्मन है तो वह है उसका रूप! इस दुनिया के अधिकांश पुरुष परस्त्री के शील को लूटने पर उतर आते हैं। अब यदि सौंदर्यवाली स्त्री पति की अनुपस्थिति में शृंगार सजाए, तो उसके शील के लिए बड़ा खतरा होगा या नहीं?’

‘मेरे सामने यदि ऐसा कोई लंपट आ जाए तो मैं मार-मार उसका भुरता बना दूँ! तीसरी रानी बोल उठी!

‘वह तो बहन तुम्हारे पास विद्याशक्तियाँ हैं... तुम विद्याधर स्त्रीयाँ हो... तुम ऐसे लंपट पुरुष का सामना कर सकती हो... पर जिस स्त्री के पास विद्याशक्ति न हो या इतनी शारीरिक ताकत न हो वह क्या करेगी? उसका क्या होगा?’

‘यह तुम्हारी बात सही है, दीदी! सावधानी के तौर पर, परपुरुष की आँखों में विकार पैदा करें, ऐसे शृंगार नहीं सजाने चाहिए।’ रानियों ने सुरसुंदरी की बात को मान लिया।

भीतर का शृंगार

१७८

‘अरे, शृंगार न हो फिर भी केवल रूप पर भी लुब्ध होनेवाले पागलों की कहाँ कमी है इस दुनिया में? फिर शृंगार हो उस पर तो विपत्ति आते क्या देर लग सकती है? पति की गैरहाज़िरी का अनुचित लाभ कभी पति के मित्र कहलानेवाले लोग भी उठाते हैं... पति का यदि कोई आश्रयदाता है... मालिक है... तो उसकी निगाहें भी पापी हो सकती हैं। इसके बारे में मुझे एक कहानी याद आ रही है...’

‘अरे... कहो... कहो... सुनाओ वह कहानी... पर तुमने कहाँ से सुनी थी।’

‘मेरी गुरुमाता साध्वी सुव्रता के पास! मेरा सारा धार्मिक अध्ययन उनके पास ही हुआ!’

‘अब तो वह कहानी सुनानी ही होगी।’ चारों रानियाँ कहानी सुनने के लिए लालायित हो उठीं। सुरसुंदरी ने कहानी-कथन का प्रारंभ किया।

‘वसंतपुर नाम का एक नगर था।

उस नगर में एक समृद्ध सेठ रहता था, उसका नाम था श्रीदत्त।

श्रीदत्त की पत्नी ‘श्रीमती’ शीलवती एवं गुणवती नारी थी।

श्रीदत्त की राजपुरोहित सुरदत्त से धनिष्ठ मित्रता थी। दोनों को एक दूसरे पर संपूर्ण भरोसा था। एक दिन श्रीदत्त ने व्यापार के लिए विदेश जाने के लिए सोचा। उसने सुरदत्त से कहा :

‘मित्र, मैं विदेश जा रहा हूँ... हालाँकि बहुत जल्दी ही वापस आऊँगा... फिर भी मेरी अनुपस्थिति में तू मेरे घर का ख्याल रखना। श्रीमती को किसी भी तरह की विपत्ति का शिकार न होना पड़े, इसका ध्यान तुझे रखना होगा।’

सुरदत्त ने कहा :

‘श्रीदत्त... तू बिलकुल निश्चिंत रहना... बिलकुल फिक्र मत करना। ढेर सारा धन कमाकर वापस जल्दी आ जाना... तेरे घर का पूरा ख्याल मैं करूँगा।’ श्रीदत्त परदेश चला गया।

सुरदत्त रोज़ाना नियमित रूप से श्रीमती के यहाँ जाने लगा। श्रीमती जो भी कार्य बताती, वह प्रसन्न मन से करता! श्रीमती के पास बैठता... बातें भी करता... यों करते-करते एक दिन वह श्रीमती के रूप पर मुग्ध हो उठा। उसकी चापलूसी बढ़ने लगी... एक दिन उसने सांकेतिक शब्दों में श्रीमती के समक्ष प्रेम की याचना करते हुए निम्न श्लोक पढ़ा :

काले प्रसूनस्य जनार्दनस्य, मेघांधकारासु च शर्वरीषु ।

मिथ्या न वक्ष्यामि विशाल - नेत्रे! ते प्रत्यया च प्रथमाक्षरेषु ।।

ओ बड़े नेत्रोंवाली! मेघ के अंधकर से युक्त बारिश की रात में मैं तुझे चाहता हूँ... यह मैं झूठ नहीं कहता! प्रतीति के लिए श्लोक के चारों पंक्तियों में पहले अक्षर में मैंने 'कामेमि ते' यह कहा है।

श्रीमती को मन ही मन संदेह तो था ही... यह श्लोक सुनकर वह पुरोहित की इच्छा भांप गयी... वह स्वयं विदुषी थी... उसने भी श्लोक में ही सांकेतिक प्रत्युत्तर दिया।

नेह लोक सुखं किंचित्, छादितस्याहसा भृशम् ।

मित च जीवित नृणां, तेन धर्मे मतिं कुरु ।।

'हे पुरोहित, इस लोक में पाप से अत्यंत आच्छादित व्यक्ति को कुछ भी सुख नहीं होता है... मनुष्य का जीवन क्षणभंगुर है... इसलिए धर्म में बुद्धि रख।' श्लोक के चारों चरणों के प्रथम अक्षर के जरिए 'नेच्छामि ते' - मैं तुझे नहीं चाहती हूँ,' वैसा जवाब दे दिया।

उस दिन तो पुरोहित चला गया... पर उसने अपने मन में निर्णय किया कि किसी भी तरह से श्रीमती को बस में करना। श्रीमती ने भी अपने मन में निर्णय किया कि किसी हालात में पुरोहित के प्रभाव में नहीं आऊँगी।

दूसरे दिन तो पुरोहित बेशरम होकर श्रीमती के समक्ष लार टपकने लगा... श्रीमती ने उसे खूब समझाया... पर वह तो श्रीमती के पैरों में गिरकर भोग-प्रार्थना करने लगा... श्रीमती ने आखिर अपने मन में एक आयोजन कर लिया... और उससे कहा :

'आज रात को पहले प्रहर आना।'

पुरोहित तो नाच उठा। वह खुश होकर अपने घर पर गया। श्रीमती ने शृंगार किया और नगर के सेनापति चंद्रधवल के पास पहुँची। सेनापति से कहा : मेरे पति विदेश गये हुए हैं... मेरे पति का मित्र सुरदत्त मुझ पर मोहित होकर ज्यादती करने को तैयार हुआ है... तुम मुझे उसके फंदे से बचाओ।'

सेनापति श्रीमती का अद्भुत रूप देखकर उस पर मुग्ध हो उठा। सेनापति ने कहा 'सुंदरी... तू चिंता मत कर! उस पुरोहित के बच्चे से तो मैं निपट लूँगा... पर तू मेरी प्रियतमा बन जा... मैं तुझ पर... तेरे रूप पर मुग्ध हो गया हूँ। बोल... कब आऊँ... मैं तेरी हवेली में?'

भीतर का शृंगार

१८०

श्रीमती तो सेनापति की बात सुनकर भौंचक्की रह गयी... 'अरे... यह रक्षक है कि स्वयं ही भक्षक?' उसने सेनापति को काफी समझाया, पर सेनापति ने उसकी एक भी न मानी। आखिर श्रीमती ने उसे रात के दूसरे प्रहर में आने का आमंत्रण दिया।

वहाँ से श्रीमती राज्य के महामंत्री मतिधन के पास पहुँची। उसने जाकर मंत्री से निवेदन किया : 'महामंत्री, आप मेरी रक्षा करें... सेनापति मेरा शील लूटना चाहता है... मेरे पति की अनुपस्थिति में आप मुझे बचाईये!'

महामंत्री श्रीमती का रूप... उसकी जवानी... उसका लावण्य देखकर ठगा-ठगा-सा रह गया... वह स्वयं ही कामांध हो उठा। उसने कहा : 'श्रीमती, सेनापति को तो मैं कल ही हाथी के पैरों तले रूँदवा दूँगा... पर मैं तेरे रूप का प्यासा हूँ... मेरी प्यास बुझानी होगी... बस, एक बार! बोल कब आऊँ मैं तेरे पास?'

श्रीमती पहले तो चक्कर में पड़ गयी... उसने महामंत्री को बहुत समझाया... पर महामंत्री उसके आगे प्रेम की भीख माँगने लगा...। कुछ सोचकर उसने महामंत्री को रात के तीसरे प्रहर में अपनी हवेली में आने को कहा। महामंत्री तो खुशी से नाचने लगा।

श्रीमती का मन बिलख रहा था... जहाँ सहायता के लिए जाती, वहीं नई मुसीबत उसे घेरने लगती थी... आखिर वह थक कर राजा के पास जा पहुँची... 'महाराजा... महामंत्री मेरे पीछे पड़ गया है - वह मेरे घर में आने को कह रहा है... आप उसे रोकिए... मेरी रक्षा करें!'

राजा श्रीपति खुद ही श्रीमती को देखकर पागल हुआ जा रहा था। अच्छा मौका देखकर उसने श्रीमती से कहा :

'तू निश्चंत रहना। महामंत्री को मैं शूली पर चढ़ा दूँगा... पर मैं तेरे रूप का आशिक हुआ हूँ... तू मुझे मिल जा... तू चाहे तो मैं तुझे अपनी रानी बना दूँगा... या फिर एक बार तू मुझे अपनी हवेली में बूला ले...।'

श्रीमती को पल-भर लगा कि उसके पैरों तले से धरती खिसक रही है... फिर भी मन-मसोसकर उसने राजा को समझाने की कोशिश की। पर राजा ने एक न मानी, तब श्रीमती ने कहा : 'ठीक है - आप आज रात को चौथे प्रहर के प्रारंभ में मेरी हवेली में पधारना।

श्रीमती अपनी हवेली में आयी... उसने मन-ही-मन पुरोहित को, सेनापति

भीतर का शृंगार

१८१

को, महामंत्री को और राजा को बराबर सबक सिखाने का निर्णय किया। इसके लिए उसने एक सुंदर आयोजन कर लिया।

वह अपनी पड़ोसन के पास गयी और उसे सौ सोना मुहरें देकर कहा : 'बहन... तू मेरा एक काम करेगी?' पड़ोसन ने कहा; 'एक क्या, दो काम कर दूँगी!'

'तो सुन... आज रात को जब चार घड़ी बाकी रहे तब तू आकर मेरी हवेली के दरवाजे खटखटाना... जोर-जोर से रोना... कल्पान्त करना... दरवाजा खटखटाकर खुलवाना और मुझसे कहना कि 'ले पढ़ यह पत्र... तेरा पति परदेश में मर गया है।' बस, फिर तू चली जाना। बोल... करेगी न इतना काम? पड़ोसन ने हामी भर ली।

श्रीमती ने घर में से एक बहुत बड़ा पुराना पिटारा खोज निकाला। उस पिटारे में चार बड़े बड़े खाने थे। हर एक खाने का दरवाजा अलग-अलग था। पिटारे को परिचारिका के पास से खिसकवाकर अपने शयनकक्ष में रखवा दिया। परिचारिका से कहा : देख, सुन... शाम को पुरोहित यहाँ आएगा... उसका आदर-सत्कार करके मेरे शयनकक्ष में ले आना फिर मैं तुझे जैसे आज्ञा करूँ... वैसे-वैसे काम करती रहना... पहला प्रहर ज्यों-त्यों बीता देना है... इन राक्षसी दरिन्दो को सबक सिखाना ही होगा। तू ज़रा भी घबराना मत!' परिचारिका चतुर थी। श्रीमती की बात उसने बराबर समझ ली।

रात्रि का अंधकार छाने लगा... और पुरोहित आ पहुँचा! दासी ने स्वागत किया। शयनकक्ष में ले आयी। श्रीमती ने सोलह शृंगार सजाये थे। आँखों में इशारा करके उसने पुरोहित को पागल-सा बना दिया! पुरोहित लाख सुवर्ण मुद्राओं की क्रीमत के रत्न लेकर आया था। उसने रत्न श्रीमती को सौंप दिये। श्रीमती ने रत्नों को सँभालकर तिजोरी में रख दिये। दासी से कहा : 'पुरोहितजी के शरीर को तेल से मलकर अभ्यंग स्नान करवाना... फिर गर्म पानी से स्नान करवाना... इसके बाद भोजन करवाना... फिर मेरे पास ले आना... बराबर सेवा करना इनकी!'

परिचारिका एक प्रहर तक पुरोहित को पटाती रही... खेलती रही... दूसरा प्रहर प्रारंभ हुआ कि हवेली के दरवाजे पर दस्तक हुई... किसी ने हवेली का दरवाजा खटखटाया। पुरोहितजी घबराये... श्रीमती दरवाजे तक जाकर वापस आयी।

भीतर का शृंगार

१८२

‘कौन आया है?’ पुरोहित ने पूछा।

‘सेनापति।’

‘क्या? सेनापति? अभी यहाँ कैसे? हाय... अब मेरा क्या होगा? मुझे बचा तू किसी भी तरह!’

‘पर, मैं कैसे बचाऊँ?’

कुछ भी कर... कहीं पर भी मुझे छिपा दे... मुझे तू बचा, मेरी माँ!’

‘तो ऐसा कर... इस पिटारे में घुस जा...!!’

पुरोहित को पिटारे के एक खाने में उतारकर ऊपर से दरवाजा बंद करके ताला लगा दिया! हवेली का दरवाजा खोला... सेनापति का स्वागत किया... सेनापति भी कीमती रत्न लेकर आया था... श्रीमती ने रत्न लेकर तिजोरी में रख दिया। और फिर सेनापति की सेवा-भक्ति चालू कर दी... बातों ही बातों में दूसरा प्रहर पूरा हो गया...! और हवेली के दरवाजे पर दस्तक हुई।

सेनापति घबराया... ‘ओह! इस वक्त कौन आया होगा?’

श्रीमती दरवाजे पर जाकर वापस आयी... ‘महामंत्री आये हैं...’

‘बाप रे... अब? मुझे छिपने की जगह बता... मैं बे मौत मर जाऊँगा... हवेली में कहीं पर भी छुपा दे...’

श्रीमती ने सेनापति को पिटारे में छिपाकर ताला लगा दिया।

हवेली का दरवाजा खुला। महामंत्री का आगमन हुआ। स्वागत हुआ। महामंत्री श्रीमती को उपहार के रूप में देने के लिए नौलखा हार लाये थे। श्रीमती ने हार लेकर तिजोरी में रख दिया एवं महामंत्री की चापलूसी करना चालू किया। एक प्रहर तक इधर-उधर करके समय बिताती रही... चौथे प्रहर का प्रारंभ हुआ और दरवाजा खटखटाया गया। ठक् ठक्... महामंत्री चौंक उठा... कौन होगा?’

श्रीमती दरवाजे तक जाकर आयी और कहा :

‘महाराजा स्वयं पधारे हैं।’

‘महाराजा? यहाँ पर? अभी? मैं मारा जाऊँगा! अब कहाँ जाऊँ? क्या करूँ? ऐसा कर तू मुझे छिपने की जगह बता दे... मैं तेरे पैरों पड़ता हूँ! कुछ भी कर!’

श्रीमती ने महामंत्री को पिटारे के तीसरे खाने में उतारा और उसे बंद करके ताला लगा दिया।

भीतर का शृंगार

१८३

दरवाजा खुला और महाराजा हवेली में प्रविष्ट हुए। श्रीमती ने स्वागत किया। राजा ने मूल्यवान आभूषण भेंट किये श्रीमती को। श्रीमती ने उन्हें लेकर तिजोरी में रख दिये। महाराजा की सेवा-भक्ति होने लगी। दो घड़ी का समय बीता न बीता... कि हवेली के बाहर कोई औरत दहाड़कर रोती हुई आयी। ज़ोर-ज़ोर से दरवाज़ा खटखटाने लगी... 'ओह... श्रीमती दरवाज़ा खोल... बहुत बुरे समाचार आये हैं... तेरा पति परदेश में ही मर गया है... जल्दी दरवाजा खोल, श्रीमती!'

श्रीमती सटाक... ज़मीन पर गिर गयी... और दहाड़ मार-मारकर रोने लगी... राजा घबराया.. उसने कहा : 'पहले तू मुझे कहीं छिपा दे... फिर दरवाजा खोलना...'

श्रीमती ने पिटारे के चौथे खाने में राजा को बंद किया और ताला लगा दिया! दासी से कहा : बस, अब अपना काम निपट गया... अब हम दो घड़ी विश्राम कर लें, सुबह की बात सुबह!'

दोनों सो गयी।

सुबह-सुबह पूरे नगर में बात फैल गयी कि श्रीदत्त श्रेष्ठी परदेश में मर गये हैं... राजा के राज्य में नियम था कि निःसंतान व्यक्ति मर जाए तो उसकी संपत्ति राजा अपने अधिकार में कर ले।

राजपुरुष राजमहल में गये। पर राजमहल में महाराजा नहीं थे। महारानी से कहा : श्रीदत्त श्रेष्ठी निःसंतान मर गये हैं... उनकी संपत्ति मँगवा लेनी चाहिए।' रानी ने राजा की तलाश करवायी... पर राजा मिलेगा कहाँ से? महामंत्री की तलाश करवायी तो वह भी नहीं मिले! सेनापति और पुरोहित की तलाश करवायी तो वह भी नहीं मिले! राजपुरुषों को बहुत आश्चर्य हुआ। रानी ने कहा : 'शायद किसी अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए किसी गुप्त जगह पर गये हैं... तुम जाओ और श्रीदत्त सेठ की सारी संपत्ति मेरे पास ले आओ!'

राजपुरुष श्रीदत्त की हवेली पर पहुँचे। श्रीमती से कहा : हम सेठ की संपत्ति लेने के लिए आये हैं।

'भाई... ले जाईये... सारी संपत्ति ले जाईये... सेठ पूरी संपत्ति इस पिटारे में भरकर गये हैं... पूरा पिटारा ही ले जाओ... ये इसकी चाबियाँ रहीं!'

राजपुरुष पिटारा उठाने गये... तो पिटारा काफी वजनदार लगा... वे खुश हो उठे! ज़रूर... पिटारे में ढेर सारी संपत्ति होगी!'

प्रीत किये दुख होय

१८४

पिटारा लेकर वे राजमहल में रानी के पास गये... महारानी ने सोचा 'महाराजा आकर पिटारा खोलें, उससे पहले मैं पिटारा खोलकर उसमें से मुझे जो अच्छे लगे वे आभूषण निकालकर अलग रख दूँ! राजपुरुषों से उसने पिटारे की चाबियाँ ले लीं।

रानी ने जैसी ही पिटारा का पहला खाना खोला कि एकदम अंदर से पुरोहितजी निकले...! रानी चौंक उठी।

'यह क्या? तुम पिटारे में कैसे?' रानी ने पूछा। 'अभी और ताले खोलिए महारानी... फिर मुझे सजा करना...'

रानी ने दूसरा खाना खोला तो उसमें से सेनापति प्रगट हुए।

रानी ने तीसरा खाना खोला तो महामंत्री जी निकले... और चौथा खाना खोला तो महाराज स्वयं प्रगट हुए। सभी के चेहरे स्याह हो गये थे। रानी की आँखों में गुस्से के अंगारे दहक रहे थे। राजा ने पुरोहित वगैरह को रवाना करके रानी के समक्ष अपना गुनाह कबूल किया।

श्रीमती को आदरपूर्वक राजमहल में बुलाकर उससे क्षमा माँगी। बुद्धिमानी एवं जीवन-निष्ठा के लिए शाबाशी दी... उत्तम वस्त्र आभूषणों से उसका सम्मान किया।

जब श्रीदत्त श्रेष्ठी परदेश से आया... श्रीमती ने सारी बात कह सुनाई... दोनों पति-पत्नी खूब हँसे... उनके पेट में बल पड़ गये।

सुरसुंदरी ने कहानी पूरी की।

'बस, औरत तो ऐसी श्रीमती जैसी होनी चाहिए।'

चारों रानियाँ बोल उठीं।

'अब भोजन का समय हो गया है... मेरे भैया राह देखते हुए बैठे होंगे!'

'चलो... चलो... आज तो भूख भी जोरों की लगी है... कहानी की तरह भोजन भी खूब अच्छा लगेगा!'



२८. प्रीत किये दुःख होय!

सुरसुंदरी को सुरसंगीत नगर में आये हुए छह महिने बीत गये। रत्नजटी के परिवार के साथ उसके आत्मीय संबंध बँध चुके थे।

रत्नजटी के साथ, उसकी चारों रानियों के साथ उसने अनेक तीर्थों की यात्राएँ की थी। यात्राप्रवास में रत्नजटी के साथ तरह-तरह की धर्मचर्चा-तत्त्वचर्चा होती रहती थी। रोज़ाना रत्नजटी को भोजन करवाते वक्त भी रत्नजटी के साथ अनेक प्रकार के विषयों पर वार्तालाप होता था। रत्नजटी मुक्त मन से बातें करता था, उसका मन स्वच्छ था, सरल था। उसके हास्य में भी निरी निर्दोषता छलकती थी। उसकी आँखों में से निश्छल स्नेह की सरिता बहती थी। उसका मन सदैव सुरसुंदरी के गुणों का मनन, चिंतन किया करता था। करीब एक वर्ष से पति का विरह सहन करती हुई सुरसुंदरी ने अपने शील की रक्षा बड़ी हिम्मत एवं पूरी निष्ठा से की थी। रत्नजटी कभी-कभी सुरसुंदरी के जीवन में आये हुए दुःख के झंझावत के विचारों में गुमसुम हो जाता था। सुरसुंदरी के प्रति तीव्र सहानुभूति से उसका हृदय भर आता! जब-जब उसकी स्मृति में पिता मुनि के वचन याद आते... उसका सिर अहोभाव से सुरसुंदरी के चरणों में झुक जाता!

राजा रत्नजटी युवक था। परंतु उसमें यौवन का उन्माद बिलकुल नहीं था। वह पराक्रमी था... पर अविवेकी नहीं था। अपने महान पितृकुल की उज्वल कीर्ति को ज़रा भी दाग न लग जाए, इसके लिए वह पूरी सतर्कता रखते हुए जीता था। वचन-पालन का वह अत्यंत पक्षपाती था। उसने सुरसुंदरी को जो वचन दिया था, वह उसकी स्मृति में बराबर सुरक्षित था। निर्बल एवं अस्थिर व्यक्ति का वचन पानी पर खींची हुई रेखा-सी होती है... पराक्रमी एवं संस्कारी व्यक्ति का वचन पत्थर की लकीर-सा होता है। उसने सुरसुंदरी से कहा था : 'मैं तुझे वचन देता हूँ... तुझे मैं अपनी बहन मानूँगा... तू याद रखना... मैं एक महान् मुनि पिता का पुत्र हूँ।'

छह-छह महिनों से रत्नजटी अपने वचन को सुविशुद्ध रूप में पालन कर रहा था। मन-वचन-काया से वह वचन निभा रहा था। उसके मन में सुरसुंदरी के प्रति वैचारिक विकार की रेखा भी नहीं जगी थी कभी। अलबत्ता, उसकी जीवनसंगिनी चार-चार रानियाँ जो कि रूप-लावण्य एवं गुणों से संपन्न थी... उसके पास थी। परंतु वैसे तो रावण के अंतःपुर में कहाँ कम रानियाँ थीं?

प्रीत किये दुख होय

१८६

हज़ारों रानियों थी, फिर भी वह सीता के रूप में पागल बना था न? पुरुष का मन ही कुछ ऐसा विचित्र है। वह अपने वैषयिक सुखों की लालसा के लिए नये-नये रंग-रूप खोजने में भटकता रहता है। रत्नजटी इसका अपवाद नहीं था। फिर भी वह अपने मन में पूरी तरह जागृत था।

वह समझता था कि कर्म-परवश जीव के विचार हमेशा एक से स्थिर नहीं रह सकते! कभी विचारों की दुनिया में पवित्रता के फूल महकते हैं, तो कभी विचारों की व्योम में वासनाओं की चीलें मँडराने लगती हैं। रत्नजटी जानता था कि मनुष्य अपने मन को संयत रख सकता है... पर कभी वह संयम का बाँध मिट्टी का ढेर साबित होता है... विचारों का उफनता एवं उछलता प्रवाह उस बाँध को तहस-नहस कर डालता है।

अनेक बार पिता मुनिराज के धर्मोपदेश में उसने सुना था कि बड़े-बड़े संयमधारी ऋषि-मुनि भी स्त्री का निमित्त पाकर वैचारिक एवं शारीरिक पतन के गर्त में फँस पड़ें हैं। उसने यह सुनकर अपने आप की उनसे तुलना भी की थी... उन उग्र तपस्वी एवं संयमी मुनियों के मनोनिग्रह की तुलना में मेरा मनोनिग्रह तो क्या बिसात रखता है? ऐसे मुनि कि जो साधना के शिखर पर थे, अध्यात्म की ऊँचाईयों पर आसीन थे, उन्होंने जब अपना मनोनिग्रह खो डाला... किसी एकाध निमित्त को पाकर... फिर मैं हूँ कौन? मुझे ऐसे पतन के निमित्त से बचना चाहिए। दूर ही रहना चाहिए।

इस सावधानी को उसने अपने जीवन में स्थान दिया था। इसलिए तो उछलती-जवानी और ढेर सारी संपत्ति होने पर भी राजा रत्नजटी का जीवन पूरी तरह निष्कलंक था... वह अपनी रानियों के प्रति वफादार था। किसी भी परस्त्री से उसने संपर्क नहीं रखा था। किसी भी युवती या स्त्री के साथ उसने आत्मीयता का नाता बाँधा नहीं था। सदाचार का वह सतर्कता से पालन करता था। वचन पालन एवं वफादारी जैसे मानवीय गुणों की भरपूर फसल उसकी जीवनधरा पर उगी थी।

उसने अपने राज्य में भी मानवीय गुणों का श्रेष्ठ प्रचार एवं प्रसार किया था। प्रजाजनों में मानवता के गुण... नैतिकता के फूल खिले रहें... इसके लिए वह सदैव प्रयत्नशील रहता था। वैसे भी बाह्य सुख-शांति एवं समृद्धि का विद्याधरों की दुनिया में पार नहीं रहता है, पर रत्नजटी के राज्य में तो भीतरी सुख-समृद्धि भी अपार थी।

सुरसुंदरी तो सहसा रत्नजटी की जिंदगी में आ गयी थी। भारंड़ पक्षी की चोंच में से निकलकर जमीन पर गिरती हुई उस युवती को उसने अपने

प्रीत किये दुख होय

१८७

विमान में थाम लिया था। उसके करुणतापूर्ण हृदय ने उसको पकड़वा लिया था - 'दूसरे के दुःखों को दूर करने की इच्छा एवं प्रवृत्ति जीवात्माओं के साथ सच्ची मैत्री हैं...' यह सत्य उसने आत्मसात् कर लिया था। उसने सुरसुंदरी के दुःख दूर किया, उसे भरपूर सुख दिया। उसकी तरफ से किसी भी तरह की सुख को पाने की अपेक्षा नहीं रखी थी। दुनिया में एक उच्चतम स्तर का भाई अपनी सहोदरा बहन को जितना और जैसा सुख देगा... उतना और वैसा सुख उसने सुरसुंदरी को दिया था।

उसके मन में कभी-कभी यह सवाल उभरता था कि कि 'जिससे मेरा कोई संबंध नहीं है... कोई परिचय नहीं है... कोई स्वार्थ भी नहीं है क्यों मैं उसे अपने महल में ले आया... क्यों मैंने उसे अपने महल में रखा? क्यों उससे इतना नजदीकी रिश्ता हो गया? क्यों वह मुझे आत्मीया लगने लगी। नंदीश्वर द्वीप की यात्रा करवाकर उसे क्यों मैंने वह जहाँ जाना चाहती थी... वहाँ पर पहुँचाया नहीं। एक अपरिचित यौवना के प्रति क्यों इतना और ऐसा बड़ा आकर्षण जग उठा है? ठीक है, उससे आकर्षण का माध्यम उसके गुण हैं... पर मुझे उससे क्या लेना-देना? मैं तो अपनी समग्रता से उसको चाहने लग गया हूँ। मेरी रानियाँ भी उसके साथ आत्मीयता बाँध बैठी हैं... क्यों? आखिर किसलिए? किसी भी प्रयोजन के बगैर क्या ऐसे संबंधों के फूल-खिल सकते हैं?

तो क्या गत जन्म-जन्मांतर के किन्ही संबंधों के संस्कार जग उठे हैं? हाँ, फिर उसमें वर्तमान जीवन के नाम या परिचय की ज़रूरत नहीं रहती है... उसमें किसी दैहिक रूप या लावण्य की भी आवश्यकता नहीं रहती है। ज़रूर... कुछ जन्म... जन्मांतर के ही संस्कार जगे हैं।'

इस तरह रत्नजटी स्वयं ही अपने मन के प्रश्नों का उत्तर दिया करता है।

जीवन में काफी कुछ अनचाहा-अनसोचा हो जाता है। यह भी एक अनसोची घटना थी। हालाँकि, पूर्णज्ञानी पुरुषों की दृष्टि में तो कुछ भी अनसोचा या अचानक नहीं होता है। अनसोचा और सोचा हुआ... यह सब तो मनुष्य की कल्पनाएँ हैं। नंदीश्वर द्वीप से वापस लौटते हुए रत्नजटी ने कहाँ सोचा था कि आकाश में से एक मनुष्य स्त्री को गिरती हुई पकड़ लेगा... और उसे वह अपने महल में ले आएगा।

छह महिने बीत गये।

एक दिन मध्याह्न के समय चारों रानियाँ सुरसुंदरी के साथ चौपड़ खेल रही थी। खेल काफी जम गया था। समय एवं परिस्थिति के उस पार जाकर

प्रीत किये दुख होय

१८८

सब जैसे चौपड़ के पासों में खो गये हों, वैसा समाँ बँध गया था। अचानक रत्नजटी वहाँ जा पहुँचा। कमरे के दरवाजे पर ही खड़ा रह गया ठगा-ठगा सा! रानियों ने या सुरसुंदरी ने किसी ने भी रत्नजटी को देखा नहीं, कि उसकी आहट सुनी नहीं! पर रत्नजटी अपलक निहारता रहा सुरसुंदरी को।

रत्नजटी की प्रेम-भरी छाया में और चार-चार रानियों के प्यार भरे सहवास में सुरसुंदरी निर्भय निश्चिंत होकर जी रही थी। बरसों की भागदौड़ की थकान उतर चुकी थी। शरीर की ग्लानि दूर हो गई थी। दिव्य कांति से पूरी काया दमक रही थी। चेहरे पर चमक निखर रही थी। गदराया हुआ बदन एवं चेहरे पर खिला-खिला लावण्य अप्सरा को भी शरमाए वैसा महक रहा था।

रत्नजटी आज पहली बार सुरसुंदरी के शारीरिक सौंदर्य, रूप-लावण्य के बारे में सोचने लगा था। वह तुरंत नीचे उतरकर अपने कमरे में आ गया। शयनकक्ष के पश्चिमी वातायन के पास जाकर खड़ा रहा। उसका भीतरी मन पुकार रहा था! 'अब बहन को जल्द से जल्द बेनातट नगर में पहुँचा दे... उसी में तेरा और उसका हित है।'

'मैं उसे कैसे पहुँचा दूँ? उसके बिना मैं रह नहीं सकता... उसके बिना मेरा जीवन शुष्क-नीरस एवं वीरान हो जाएगा!'

'यदि नहीं पहुँचाया... और तेरे मन में पाप जग गया... तो? उस धनंजय एवं फानहान की तू नयी आवृत्ति बन गया तो?'

नहीं... नहीं... ऐसा तो कभी नहीं हो सकता! ऐसा यह रत्नजटी किसी भी हालत में नहीं करेगा! मैं एक महान मुनि पिता का पुत्र हूँ... वह मेरी बहन है... प्यारी बहन है... मैं भाई हूँ... वह मेरी बहन ही रहेगी...

'रत्नजटी, छह महिने में एक भी दिन या एक भी बार उसके साथ तुझे एकांत नहीं मिला है, इसलिए तू उसके प्रति भगिनी का भाव रख पाया है... अचानक कभी किसी पाप कर्म का उदय आया... एकांत मिल गया... तब तू अपने आप पर काबू नहीं रख पाया तो?'

मुझे अपने आप पर पूरा भरोसा है! उस विश्वास को मैं गँवाना नहीं चाहता! एकांत में... मेले में या अकेले में वह मेरी बहन ही रहेगी। उसके लिए मैं भाई ही रहूँगा। मैं उसे यहीं रखूँगा... मेरे परिवार के मानसरोवर में वह हंसी बनकर आयी है... उसके बिना मेरा सरोवर सूना-सूना हो जाएगा! क्या रौनक रहेगी फिर मेरे परिवार में?

प्रीत किये दुख होय

१८९

तू तेरे ही हृदय का विचार करेगा, रत्नजटी! क्या उस बहन को अपना पति याद नहीं आता होगा? तू क्यों भूल जाता है पितामुनि की भविष्यवाणी को! 'तेरा पाप कर्म काफी खतम हो चूका है... सुरसुंदरी, बेनातट नगर में तेरे पति से मिलन होगा।' और रत्नजटी की आँखें सजल हो उठीं!

मुझे बहन के सुख के बारे में सोचना चाहिए। स्त्री के जीवन में बड़े से बड़ा सुख उसका पति होता है...। मुझे अब अल्प दिनों में ही उसे बेनातट नगर पहुँचा देना चाहिए। उसके बिना...'

रत्नजटी पलंग में पेड़ से कटी डाली की तरह ढेर हो गया। फफक-फफककर रो पड़ा। उसका मन काफी उद्विग्न हो उठा था। विरह-वियोग की कल्पना से उसका मन पागल हुआ जा रहा था... विचारों की जकड़न और ज्यादा गहरी होती चली...

'मैं उससे कहूँगा... बहन, तेरे पति को लेकर तू वापस यहाँ आ जाना... फिर तू यहीं रहना... मैं अमरकुमार को आधा राज्य दे दूँगा। विद्या शक्तियाँ दे दूँगा... वह मान जाएगी... फिर बस... कभी वियोग नहीं होगा! हाँ... फिलहाल तो मैं तुझे बेनातट पहुँचा दूँगा... अमरकुमार अवश्य मिलेंगे तुझे। पर पति के मिलने के बाद भाई को भूल तो नहीं जाएगी न? मैं तो तुझे इस जनम में एक पल भी नहीं भूल सकता! तेरे गुणों को याद कर-करके...'

रत्नजटी की आँखें बरबस बरसने लगे। पलकों का किनारा तोड़कर अजस्र आँसू बह निकले। रत्नजटी स्वगत बोलने लगा :

'पर मेरी लाड़ली बहन! मैं तुझे किस जीभ से कहूँ - चल, मैं तुझे बेनातट नगर में छोड़ आता हूँ... नहीं... नहीं... मेरी जीभ के टुकड़े - टुकड़े हो जाएँ... पर मैं तुझसे चलने की... यहाँ से जाने की नहीं कह सकता...!'

ओह! भावुकता और कर्तव्य का यह कैसा करारा संघर्ष जग उठा है मन में? प्रेम तुझे दूर करने की कल्पना भी नहीं करने देता... जबकि कर्तव्य तुझे दूर-दूर ले जाने को मजबूर कर रहा है। स्नेह में मेरा विचार मुख्य है... कर्तव्य में तेरा विचार पहले आता है, पर... प्यारी बहन... नहीं... मैं स्वार्थी नहीं बनूँगा... चाहे मेरा हृदय टूट-टूटकर बिखर जाए... पर मैं तेरे सुख का विचार ही पहले करूँगा। तुझे बेनातट नगर पहुँचाऊँगा ही। तू सुखी बन... मेरी लाड़ली बहन... बस... कभी तेरे इस अभागे भाई को याद करना...'

रत्नजटी के रुदन ने महल के पत्थरों को हिला दिया होगा। चौपड़ खेल रही सुरसुंदरी का दिल भारी-भारी होने लगा। उसका मन किसी अव्यक्त

प्रीत न करियो कोय

१९०

पीड़ा से थरथराने लगा। पासे गलत गिरने लगे... रानियों ने सुरसुंदरी को देखा तो वे चौंक उठीं :

‘दीदी... तुम्हारे चेहरे पर इतना दर्द क्यों जम रहा है?’

‘कुछ समझ में नहीं आता है... मुझे बेचैनी है... कुछ अच्छा नहीं लग रहा है!’

‘तो हम खेल बंद कर दें... अच्छा लगे वह करें। दीदी...!!!’

रानियों ने खेल बंद किया। चारों रानियाँ चिंता से व्याकूल हो उठीं!

‘बहन, बगीचे में घूमने जाना है?’

‘दीदी, कुछ पिओगी?’

‘दीदी, सिर दबा दूँ...?’

‘सुरसुंदरी की बेचैनी ने चारों रानियों को उद्विग्न बना डाला... सुरसुंदरी ने चारों के ओर देखा...

‘कहो न दीदी... क्या बात है?’ रानियों की आँखें भर आयी।

‘मुझे अपने भाई के पास जाना है... जल्दी ले चलो मुझे वहाँ, वे मुझे याद कर रहे हैं...’

सुरसुंदरी खड़ी हो गई... चारों रानियों के साथ त्वरा से नीचे उतरी... रत्नजटी के शयनकक्ष का दरवाजा बंद था... द्वार के पास आकर सुरसुंदरी खड़ी रह गयी... वह अपने दोनों हाथ दरवाजे पर रखती हुई चीख पड़ी... ‘भाई... दरवाजा खोलो...’ उसकी आँखों में सावन की झड़ी लग गयी... वह दरवाजे के पास ही ढेर हो गयी। सारी रानियाँ फफक उठ... सुरसुंदरी को घेरकर बैठ गयी।

रत्नजटी ने कुछ स्वस्थ होकर दरवाजा खोला। सुरसुंदरी तुरंत खड़ी हो गयी... उसने रत्नजटी के कंधों पर अपने हाथ रखते हुए आँखों में आँसू भरकर उसकी आँखों में झाँका। वह गुमसुम-सी खड़ी रही गयी।

‘क्या तूम मुझे याद कर रहे थे, भैया?’

‘हाँ... मेरी बहन, पल-पल तुझे याद कर रहा हूँ...’ रत्नजटी की बनावटी स्वस्थता सुरसुंदरी के बहते आँसूओं में बह गयी... उसकी लाल-लाल सूजी हुई आँखों में से आँसू टपकने लगे। रानियाँ भी दुःखी-दुःखी हो उठीं...

‘नहीं, भैया नहीं... तुम्हें मेरी कसम है... यदि आँसू बहाये तो।’

‘और अब क्या बचेगा जिंदगी में, बहन?’

‘नहीं, तूम रोओ मत।’

‘बहन!!!’

‘भाई!!!’



‘भाई... क्यों इतना सारा विषाद चेहरे पर? क्यों इतनी ढेर सारी गमगीनी और उदासी?’

‘भावी के विचारों की आँधी घिर आयी मनोजगत् में!’

‘ओफ़! ओफ़... ऐसे कौन-से विचारों की आँधी ने तुम्हें उलझा दिया? यदि मुझे कहने में ऐतराज न हो...’

‘तुझसे क्या छिपा है... बहन?’

‘तो फिर कह दो ना! विचारों को व्यक्त कर देने से दिल हल्का हो जाता है। भावनाओं को अभिव्यक्त करने से मन शांत हो जाता है।’

‘तेरे विरह के विचारों में खोया गया... अब तुझे बेनातट नगर भी तो पहुँचाना है ना?’

चारों रानियाँ भाई-बहन को बतियाते छोड़कर अपने-अपने कामों में व्यस्त हो गयीं। हालाँकि, रत्नजटी की उदासी ने चारों रानियों को अस्वस्थ बना दिया था। रत्नजटी की बात सुनकर सुरसुंदरी सोच में डूब गयी। नंदीश्वर द्वीप पर मणिशंख मुनिराज का भविष्यकथन उसके स्मृतिपटल पर उभर आया। उसने रत्नजटी की ओर देखा। रत्नजटी की आँखों में पीड़ा का बर्फ पिघलने लगा।

‘पर भाई, मुझे बेनातट जाना ही नहीं है... मैं यहीं पर रहूँगी।’

‘ऐसा कैसे हो सकता है? तू मेरे-हमारे सुख-दुःख की चिंता करती है... तो क्या मैं तेरे सुख का विचार नहीं करूँगा? जो भाई अपनी बहन के सुख-सौभाग्य का विचार न कर सके, वह अच्छा थोड़े ही होता है?’

‘पर भाई... अब मुझे संसार का वैसा कुछ खिंचाव है ही नहीं! मैं अमरकुमार के बगैर जी सकूँगी। भाई, तुम्हें छोड़कर कही नहीं जाऊँगी, बस? तुम्हारी वेदना मैं नहीं देख सकती, मैं तुम्हारे आँसू नहीं सह सकती। मैं यहाँ सुखी हूँ... प्रसन्न हूँ!’

‘भाई के घर का सुख और पतिगृह का सुख-दोनों सुख में काफी अंतर है बहन! पतिगृह में दुःख हो फिर भी स्त्री पति के घर पर ही भली लगती है...’

प्रीत न करियो कोय

११२

यह तो मेरे कोई जन्म-जन्मांतर के पुण्य प्रगटे कि तू मुझे बहन के रूप में मिल गयी! तुझे पाकर मैं अपने आपको धन्य समझता हूँ! मैंने तेरे साथ अनहद स्नेह का नाता जोड़ लिया है। सहज रूप से यह स्नेह का बंधन जुड़ गया है। पर यह स्नेह हीं तेरे वियोग की पीड़ा देगा। तेरे बिना इस महल की सुनसान-श्मशान से महल की कल्पना हीं मेरे दिल को दहला रही है!

‘पर क्यों अभी से कल्पना कर रहे हो? क्या आज हीं मुझे भेज देना है?’

‘नहीं... नहीं... अभी तो कुछ दिन रुकना ही है। पर मन भी कितना नादान है। अनजान भविष्य के बारे में सोचे बगैर कहाँ रहता है? भूतकाल की स्मृति एवं भविष्य की कल्पनाएँ करना तो मन का पुराना स्वभाव है।’

‘इसलिए तो ज्ञानी पुरुष... पूर्ण ज्ञानी महात्मा कहते हैं कि मन को तत्त्वचिंतन में डूबोये रखो। चिंतन में मन डूबने लगा... डुबकियाँ लगाने लगा, तो फिर अतीत और आनेवाले कल के इर्दगिर्द मन का भटकना अपने आप बंद हो जाएगा।’

‘सही बात है तेरी, पर तत्त्वचिंतन या विचार का रास्ता मेरे जैसे राजा के लिए कहाँ इतना सीधा है?’

‘क्यों नहीं है सीधा? भगवान ऋषभदेव के पुत्र भरत तो चक्रवर्ती सम्राट थे ना? फिर भी वे रोजाना रात्रि में तत्त्वचिंतन के सागर में डूब जाते थे न? आत्मा के एकत्व का चिंतन एवं पर-पदार्थों के अन्यत्व का चिंतन करते थे। इसलिए तो उन्हें दर्पण-प्रासादा में अपने देह का सौंदर्य देखते केवल ज्ञान हो गया था। अंगूली पर से अँगूठी निकल पड़ी... अंगूली देखकर चिंतन का अविरत प्रवाह चालू हो उठा। आध्यात्मिक चिंतन प्रारंभ हो गया। आत्मा के अक्षय... अरूप स्वरूप की लीनता जमती चली, भरत केवलज्ञानी हो गये। मेरे प्यारे भैया! तुम भी रोजाना आत्मचिंतन कर सकते हो... मैं तो तुम्हें बहुत आग्रह अनुनय कर के कहती हूँ कि तुम रोजाना रात की नीरव शांत वेला में शुद्ध आत्म-स्वरूप का चिंतन, मनन एवं ध्यान करो। तुम्हें अपूर्व आत्मनंदी की अनुभूति होगी और यदि तुमने इतना किया, तो मेरा यहाँ आना भी सार्थक होगा।’

रत्नजटी को सुरसुंदरी की बात अच्छी लगी, वह तन्मय होकर सुन रहा था, फिर भी उसने अपनी मुश्किल बतायी :

‘तेरा बताया हुआ रास्ता अच्छा है... पर चंचल, अस्थिर मन क्या उस शुद्ध आत्मस्वरूप के चिंतन में स्थिर हो सकता है?’

प्रीत न करियो कोय

१९३

‘अवश्य हो सकता है। हमेशा उस दिशा में प्रयत्न करते रहने से एक न एक दिन ज़रूर सफलता मिलती है। मन की चंचलता, मन की अस्थिरता पैदा होती है, ममत्व में से न? पर पदार्थों पर से ममत्व को हटाने के लिए अन्यत्व भावना कितनी अचूक है... उससे अनुप्राणित होना चाहिए।’

‘मेरी आत्मा से भिन्न कोई भी पदार्थ मेरा नहीं है... मैं स्वजनों से परिजनों से... वैभव-संपत्ति से... और शरीर से भी अलग हूँ।’ यह चिंतन रोज़ाना करते रहने से ममत्व की मात्रा घटेगी... आसक्ति कम होगी। मन भी धीरे-धीरे आत्मभाव में स्थिर होने लगेगा।’

‘ममत्व के संस्कार तो जन्म-जन्म के है न? ऐसे प्रगाढ़ संस्कार क्या थोड़े पलों के इस पवित्र विचार से नष्ट हो जाएँगे?’

‘क्यों नहीं होंगे? ज़रूर होंगे। अरे... कई बरसों से इकट्ठी हुई घास के ढेर को क्या एक चिंगारी ही जलाकर राख नहीं बना देती? तत्त्वचिंतन तो ज्वाला है... अनंत जन्मों के कुसंस्कार एवं वासनाओं के ढेर को जला डालती है। शास्त्रों में ऐसी घटनाएँ हम सुनते हैं... जानते हैं। आत्मध्यान से, परमात्मभक्ति से, अनेक तरह के पापों में डूबी आत्मा भी पूर्णता के शिखर तक पहुँच जाती है। तो फिर हम क्यों पूर्णता के रास्ते पर गति नहीं कर सकते? क्यों प्रगति नहीं कर सकते?’

और फिर... तुम्हारा तो कितना गज़ब का पुण्योदय है? तुम्हें तो पिता ही ज्ञानी गुरुदेव के रूप मिले हैं। तुम्हारे पास आकाशगामिनी विद्या है। तुम्हें जब भी तत्त्वचिंतन में या आत्मध्यान में विक्षेप जान लगे...

कठिनाई या अड़चन महसूस हो... तब तुम गुरुदेव के पास जाकर उनसे मार्गदर्शन प्राप्त कर सकते हो।

ज्ञानमार्ग में एवं ध्यानमार्ग में पथप्रदर्शक गुरुजनों से मार्गदर्शन काफी महत्त्वपूर्ण एवं ज़रूरी है... तुम्हें वह मार्गदर्शन सरलता से उपलब्ध हो सकता है।

और, तुम्हें तो पारिवारिक अनुकूलता भी कितनी सहज मिल गयी है! मेरी चारों भाभियाँ कितनी सुशील, संस्कारी एवं गुणों के झरनों जैसी हैं। जो तुम्हारी इच्छा, वह उनकी चाह। जो तुम्हारा इशारा वह उनका जीवन। मैंने तो इन महिनों में अपनी नज़रों से देखा है... परखा है... ये चारों रानियाँ जैसे कि केवल तुम्हारे लिए ही जीती हैं। अलबत्ता, उन्हें पति भी वैसा ही गुणी मेरा भैया मिला है।

भैया, अनंत-अनंत पुण्य का उदय हो तब ही ऐसा अनुकूल पारिवारिक जीवन मिलता है। ऐसे सुंदर स्वस्थ एवं सहज वातावरण में मनुष्य चाहे उतना धर्म कर सकता है।'

'हमारा जीवन तो वैभव-विलास से भरा हुआ ही है। फिर भी 'दृष्टि' बदली जा सकती है। 'दृष्टिकोण' बदला जा सकता है। भोगी भी त्याग का लक्ष्य रख सकता है। हृदय के मंदिर में ज्ञानदृष्टि का रत्नदीप जल सकता है। बाहर से विलासी जीवात्मा भी भीतर से अनासक्त रह सकता है...'

रत्नजटी का विषाद दूर हो गया। उसका मन प्रफुल्लित हुआ। उसके चेहरे पर प्रसन्नता के फूल खिल उठीं... और यह देखकर उसकी चारों रानियाँ भी खिलखिला उठी। उनके नयन नाच उठे।

सुरसुंदरी ने रत्नजटी को भोजन करवाया... फिर भाभियों के साथ बैठकर भोजन किया।

भोजन करके सभी अपने-अपने खंड में चले गये।

सुरसुंदरी अपने निवास में आयी। वस्त्र बदलकर उसने विधिवत् श्री नवकार महामंत्र का जाप किया।

ध्यान से निवृत्त होकर विश्राम करने के लिए वह जमीन पर लेटी। उसके मनोजगत में रत्नजटी उभर आया। रत्नजटी के गुणमय व्यक्तित्व के प्रति उसके मन में आदर था। आज वह आदर निर्मल स्नेह से और ज्यादा प्रगाढ़ बना था। रत्नजटी केवल बाहरी व्यावहारिक भूमिका पर ही भाई-बहन के रिश्ते को नहीं संभाल रहा था... इस बात की उसे आज प्रतीति हो चुकी थी। रत्नजटी के दिल में बहन के रूप में अपनी स्थापना हुई उसने देखी। बहन के प्रति कर्तव्यपालन की जागृति उसने पायी। बहन के सुख के बारे में सोचनेवाला रत्नजटी का व्यक्तित्व उसे भव्य उदात्त लगा... उन्नत प्रतीत हुआ।

उसे अब यह भी तसल्ली हो गयी कि रत्नजटी सचमुच ही अब उसे कुछ ही दिनों में बेनातट नगर में पहुँचा देगा। ऐसे स्नेह-सलिल से छल-छल सरोवर सा परिवार को छोड़कर मुझे जाना होगा? इस विचार ने उसे कँपकँपा दिया।

'हाँ, वैसे भी अब मुझे जाना ही चाहिए। अमर मिले इससे पहले ही मुझे उसका सौँपा हुआ कार्य भी करना है। 'सात कौड़ी से राज लेना...', उसने मुझे

प्रीत न करियो कोय

१९५

यह कार्य सौंपा है ना? मुझे राज्य लेना ही होगा। हाँ, मैं नवकार मंत्र के सहारे ही राज्य लूँगी। फिर उससे कहूँगी... 'देख, मैंने सात कौड़ियों में राज्य ले लिया... अब सम्हाल तू इस राज्य को।'

मेरे पापकर्मों का उदय तो वैसे भी समाप्त हो ही गया है। अब पुण्यकर्म जग गया है। ऐसा प्रेम भरा विद्याधर राजा भाई के रूप में मुझे मिल गया है... फिर राज्य प्राप्त करना यह कोई बड़ी बात नहीं है!

सुरसुंदरी अमरकुमार के मिलन के विचारों में खो गयी। इतने में तो एक के बाद एक चारों रानियाँ उसके कक्ष में आयीं। चारों के चेहरों पर ग्लानि थी, विषाद था... आकर वे चुपचाप सुरसुंदरी के पास बैठ गयीं।

सुरसुंदरी उठकर बैठी। उसने चारों भाभी रानियों के सामने देखा, चारों की दृष्टि जमीन पर गड़ी हुई थी।

'क्यों? इतनी उदासी क्यों, मेरी प्यारी भाभियों?'

जवाब में आँसू और सिसकियाँ!

सुरसुंदरी अस्वस्थ हो उठी।

'क्या हुआ भाभी?' सुरसुंदरी ने सबसे बड़ी रानी मणिप्रभा के चेहरे को अपनी हथेलियों में बाँधते हुए पूछा : मणिप्रभा बोल नहीं सकती है... उसने अपना सिर सुरसुंदरी की गोद में रख दिया। वह फफक-फफककर रो पड़ी। सुरसुंदरी भी बरबस रोने लगी।

'आज यह सब क्या हो रहा है? मेरी समझ में नहीं आ रहा है कुछ!' सुरसुंदरी रोती हुई बोली।

मणिप्रभा ने सुरसुंदरी के आँसू पोंछे :

'दीदी... तुम मत रोओ।'

'तुम सब जो रोयी जा रही हो... मैं कैसे देखूँ तुम्हारे ये आँसू?'

'अब आँसुओं के सिवा और क्या रखा है, हमारे लिए, दीदी?'

'क्यों ऐसी बुरी बातें कर रहे हो? क्या हो गया है तुम्हें?'

'और क्या बोलूँ! तुम्हारे भाई ने हमसे कहा...'

'क्या कहा भाभी?'

'अब बहन कुछ दिन की ही महेमान है।'

प्रीत न करियो कोय

१९६

‘पर यह बात तो... मैं जिस दिन यहाँ आई थी... उस दिन भी कहा था न?’

परंतु हमने ‘कुछ दिन’ का अर्थ ऐसा नहीं समझा था... अभी तो कुछ समय ही बीता है।

‘कुछ दिन का अर्थ और छह महिना और कर लो न!’

सुरसुंदरी ने माहौल की घूटन को हल्का करने की कोशिश की। रानियों का रुदन कम हुआ।

‘यानी तुम सचमुच और छह महिने रहोगी न?’

‘दूसरी रानी रत्नप्रभा ने आँसू-भरी खुशी के स्वर में पूछा :

‘तो क्या आज ही चली जाऊँगी क्या? अरे... मेरी इन प्यारी भाभियों को छोड़कर जाने को दिल ही नहीं करता है। जी करता है... यहीं रह जाऊँ... ससुराल जाना ही नहीं है।’

‘नहीं, दीदी, नहीं... ससुराल तो जाना ही चाहिए। यह तो तुम्हारे भाई ने हमसे कहा कि ‘बहन अब कुछ ही दिन रहनेवाली है... जितना प्यार-दुलार करना हो कर लेना। इसलिए हमारे तो प्राण सुख गये।’ तीसरी रानी विद्युत्प्रभा बोली।

‘दीदी... देखो, हम तो तुम्हारे भैया से कुछ नहीं कह सकते। वे जो करते होंगे, वह उचित ही होगा। हमें उन पर पूरा भरोसा है, पर दीदी... तुम उनसे कहना कि वे जल्दी ना करे। कहोगी ना? कितनी प्यारी दीदी हो तुम!!!

‘मैं तो यहाँ से जाने का नाम भी लेनेवाली नहीं। जाए मेरी बला!

‘नहीं बाबा! ऐसा कैसे हो सकता है? ससुराल तो जाना ही होता है। औरत तो अपने ससुराल में ही शोभा देती है... यह तो भला हमारा लगाव तुमसे इतना ज्यादा हो गया है कि तुम्हारे अलगाव की कल्पना भी दुःखी-दुःखी कर डालती है हमें! तुम्हारे बिना एक पल भी जीना गवारा नहीं होगा।’

रविप्रभा बोल उठी :

‘भाभी, मैं भी तुम्हारी जुदाई की कल्पना से दुःखी हूँ, पर इस संसार में कोई भी मिलन शाश्वत कहाँ है? संयोग के बाद वियोग तो आता ही है। यों सोचकर अपने मन को मनाने की कोशिश करती हूँ। इस जीवन में तुम्हें कभी नहीं भूला पाएँगे हम।’

प्रीत न करियो कोय

१९७

‘तुम्हारे भाई देखो न... एक तरफ तुम्हें छोड़ आने की बात कर रहे हैं और दुसरी तरफ खुद कितने रो रहे हैं?’ हमें बात करते-करते तो...’ चारों रानियाँ फिर रो दीं। सुरसुंदरी भी सिसकने लगी।

हमें यही चिंता हो रही है कि वे तुम्हे छोड़कर आने के बाद रोया ही करेंगे... उनका दिल मानेगा या नहीं। उनका दुःख हम कैसे तो देख पाएँगे?’ पूरा कमरा उदासी से भर उठा।

आश्वासन का कोई मतलब नहीं था।

यथार्थता को स्वीकारे बगैर कहाँ कोई चारा था?

स्नेह-भरे... प्रेम से पागल हुए दिल में... वेदना... दुःख पीड़ा... विषाद... हँसी लिखे होते हैं। स्नेह, संगति चाहता है... और संगति होती भी है तो पल दो पल के लिए! वियोग की चट्टानों पर सर पटक-पटककर

स्नेह आँसू बहाता है।

प्रीत की पीड़ा को कौन जान पाता है?

स्नेह के साथ बिछोह रहता ही है... लगाव के समानांतर ही अलगाव चलता है। इसलिए तो सदियों से कहते हैं सत्पुरुष :‘प्रीत न करियो कोय।’



विदा, मेरे भैया! अलविदा, मेरी बहना!

१९८



रानियों के अनुनय से रत्नजटी ने और ज्यादा तीन महीने सुरसुंदरी को अपने पास रखा। पर वह अपने आप पर पूरा नियंत्रण रख रहा था। कभी भी मन विवश ना हो उठे, इन्द्रियां चंचल न हो जाए, भावुकता में बह ना जाय, इसके लिए वह पूरी तरह सजग रहने लगा था।

देखते ही देखते तीन महीने गुजर गये... उसने अपनी चारों रानियों से कहा :

‘देखो, दो दिन के बाद मैं बहन को उसके ससुराल छोड़ आनेवाला हूँ... बहन को जो भी उपहार वगैरह देना हो, वह दे देना।’

‘हमने सोचा है, बहन को क्या उपहार दिया जाए।

‘क्या?’

पहली रानी मणिप्रभा ने कहा :

‘मैं रूप-परिवर्तिनी विद्या देना चाहती हूँ।’

दूसरी रानी रत्नप्रभा ने कहा :

‘मैं ‘अदृश्यकरणि विद्या देना चाहती हूँ।’

तीसरी रानी विद्युत्प्रभा ने कहा :

‘मैं ‘परविद्याच्छेदिनी’ विद्या देना चाहती हूँ।’

‘और मैं ‘कुंजरशतबलिनी’ विद्या देना चाहती हूँ...’

चौथी रानी रविप्रभा बोली।

‘उत्तम... बहुत उत्तम! तुमने काफी बढ़िया भेंट देने की सोची है। ये विद्याएँ बहन के लिए उपकारक सिद्ध होंगी।’ रत्नजटी ने हर्ष व्यक्त करते हुए कहा।

‘पर ये सारी विद्याएँ सिखलानी तो आप ही को होगी।’

‘मैं सिखा दूँगा... तुम निश्चित रहो।’

विदा, मेरे भैया! अलविदा, मेरी बहना!

१९९

चारों रानियाँ पुलकित हो उठीं। वे रत्नजटी के पास से उठकर सीधी पहुँची सुरसुंदरी के कक्ष में। सुरसुंदरी अभी-अभी अपना ध्यान पूर्ण कर के वस्त्र-परिवर्तन कर रही थी। उसने रानियों का स्वागत किया। सब बैठ गये।

‘बहन, तुम्हारे भैया ने आज पक्का निर्णय कर लिया है...।’

‘क्या निर्णय?’

‘तुम्हें ससुराल पहुँचा देना है। अब दो दिन का ही अपना साथ है... फिर तो...’ मणिप्रभा के स्वर में कंपन था।

सुरसुंदरी मौन रही... उसके चेहरे पर विषाद की बदली तैरने लगी।

‘दीदी... फिर कभी अपने भाई को याद करके यहाँ आओगी न? हमें भूला तो नहीं दोगी?’

रविप्रभा का स्वर वेदना से छलकने लगा था।

‘भाभी... जैसे भाई को नहीं भूला सकूँगी जिंदगी भर... वैसे तुम जैसे मेरी प्यारी-प्यारी भाभियों को भी नहीं भूला पाऊँगी... पलभर भी!’

सुरसुंदरी भी सिसकने लगी थी।

‘दीदी... हमारी कुछ भेंट स्वीकारोगी ना?’

‘यहाँ आकर तुम्हारा सब कुछ मैंने स्वीकारा है... मैंने क्या नहीं लिया तुमसे? और तुमने क्या नहीं दिया मुझे? सब कुछ दिया... मैंने सब कुछ लिया। अब और बाकी क्या रह गया है? तुम्हारा इतना प्यार मिलने के बाद और क्या मैं चाहूँगी?’

‘दीदी... ऐसी बातें मत करो... हमने तो तुम्हें दिया भी क्या है? अब हम चारों भाभियाँ तुम्हे एक-एक विद्याशक्ति देंगी। पहली विद्या है रूपपरिवर्तिनी। उस विद्या से तुम अपना मनचाहा रूप बना सकोगी। दूसरी विद्या है अदृश्यकरणी। इस विद्या के बल पर तुम चाहो तब अदृश्य हो पाओगी। तुम्हें कोई देख भी नहीं पाएगा। तीसरी विद्या पराविद्याच्छेदिनी के बल पर अन्य कोई ऐरी-गैरी विद्याशक्ति या मंत्रशक्ति तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकेगी। चौथी विद्या है कुंजरशतबलिनी। इस विद्या के स्मरण से तुम्हारे शरीर में सौ हाथी जितनी ताकत उभरेगी।’

‘वाह यह, तो अद्भुत है...’ सुरसुंदरी रोमांचित हो उठी।

‘तुम्हारे भैया तुम्हें ये सारी विद्याएँ सिखाएँगे।’

विदा, मेरे भैया! अलविदा, मेरी बहना!

२००

सुरसुंदरी गद्गद् हो उठी। ये सभी विद्याएँ उसके वास्ते अत्यंत उपयोगी हो सकेंगी। चूँकि बेनातट नगर में जाने के पश्चात् भी जब तक अमरकुमार से मिलना न हो, तब तक तो उसे अकेले रहना था। अपने शील की रक्षा करना था... और फिर उसकी भीतरी इच्छा अच्छा-सा राज्य पाने की भी थी। चूँकी अमर की चुनौती पुरी जो करनी थी। इन चारों विद्याओं की प्राप्ति से उसे अपनी महत्त्वाकांक्षा साकार होती दिखी। चारों भाभियों के प्रति सुरसुंदरी भावविभोर हो उठी।

‘तुमने तो मुझे मेरू जैसे उपकार के भार-तले दबा दिया।’

‘नहीं... ऐसा मत बोलो, दीदी... यह तो हम क्या दे रहे हैं? कुछ भी नहीं! हम कोई तुम्हारे पर एहसान थोड़े ही कर रहे हैं? तुमने हमारा जो उपकार किया है... हमें जो जीने का सच्चा एवं अच्छा रास्ता दिखाया है... तत्त्वचिंतन दिया है...’

सुरसुंदरी ने मणिप्रभा के मुँह पर अपनी हथेली ढांपते हुए कहा :

‘रहने भी दो... भाभी! आज ऐसी बातें नहीं करना है। आज तो ऐसा करें... एकाध तीर्थ की यात्रा कर आँ...! फिर न जाने कब मिलना हो? कब साथ रहना हो? यदि भैया को अनुकूलता हो तो। तुम यहीं बैठो... मैं भैया से पूछ कर आती हूँ...।’

सुरसुंदरी उठकर शीघ्र ही रत्नजटी के कमरे में पहुँची। रत्नजटी ने खड़े होकर सुरसुंदरी का स्वागत किया। सुरसुंदरी ने रत्नजटी के सामने देखा। रत्नजटी का उदासी एवं आँसुओं से भीगा चेहरा देखा... दुःखी-दुःखी हो उठी सुरसुंदरी!

‘भैया... यदि तुम्हें अनुकूल हो तो हम सम्मत्शिखर तीर्थ की यात्रा कर आँ।’

‘ज़रूर बहन... मुझे अनुकूल ही है।’

‘तो तुम तैयार हो... मैं भाभियों को तैयार करती हूँ।’

सुरसुंदरी रत्नजटी के कक्ष में से निकलकर अपने कमरे में आयी... रानियों से तैयारी करने को कहा और स्वयं भी तैयारी में लग गयी।

रत्नजटी ने अपना विमान तैयार किया। चारों रानियाँ एवं सुरसुंदरी को विमान में बिठाया... और रत्नजटी ने विमान को सम्मत्शीखर की ओर गतिशील किया।

विदा, मेरे भैया! अलविदा, मेरी बहना!

२०१

एकाध घटिका में तो विमान पहुँच गया, सम्मत्तशिखर पर्वत पर! सभी ने भक्तिभावपूर्वक तीर्थयात्रा की। उन्होंने जिन पूजन किया। परंतु यात्रा के दौरान रत्नजटी बिलकुल खामोश रहा। उसका विषाद बर्फ हुआ जा रहा था। विमान वापस सुरसंगीतनगर में आ पहुँचा। रत्नजटी अपने आवास में चला गया चुप्पी साधे हुए। रानियाँ भी सुरसुंदरी के साथ अपने-अपने कक्ष में चली गयीं।

भोजन का समय हो गया था। सुरसुंदरी ने रत्नजटी को भोजन करवाया। निगाह ज़मीन पर रखे रत्नजटी ने भोजन कर लिया। रानियों ने भी सुरसुंदरी के साथ बैठकर भोजन किया।

दिन ढलने लगा। रात छाने लगी, पर बैचेनी का साया पूरे महल पर इस कदर छाया हुआ था... कि स्याह रात ढल गयी पर उदासी का अंधेरा और ज्यादा गहराने लगा। अब सुरसुंदरी इस महल में केवल एक दिन और एक ही रात रहनेवाली थी।

प्राभातिक कार्यों से निवृत्त होकर रत्नजटी स्वयं सुरसुंदरी के कक्ष में गया। सुरसुंदरी खड़ी हो गयी। रत्नजटी का मौन स्वागत किया। रत्नजटी को आसन पर बिठाकर स्वयं जमीन पर बैठ गयी। 'बहन...' रत्नजटी की आँखों में आँसू उभरने लगे...

'बोलो भैया...' सुरसुंदरी भी अपने आप पर काबू पाने की कोशिश कर रही थी।

'नहीं जानता हूँ तेरी जुदाई की पीड़ा कैसे सहन कर पाऊँगा! पर कल तुझे बेनातट नगर में पहुँचाना तो है हीं!

बहन... मैं तेरी कुछ भी सेवा नहीं कर पाया हूँ। तू तो पुण्यशीला है... गुणों की जीवंत मूर्ति है। मेरी यदि कोई गलती हुई तो मुझे माफ करना... बहन। और... बहन तेरे भाई से कुछ माँग ले... भाई से माँगने का तो बहन को अधिकार है।'

सुरसुंदरी की आँखे बरबस बहने लगी। उसने अपने उत्तरीय वस्त्र से आँखें पोंछी और भर्रायी आवाज में बोली :

'मेरे भैया, तेरे गुणों का तो पार नहीं है... तेरी स्नेह भरी संगति में नौ-नौ महिने कहाँ गुजर गये पता ही नहीं लगा! यहाँ पर मुझे सुख ही सुख... केवल सुख मिला है, दुःख का नामोनिशान नहीं है। फिर भी मैं वे चार विद्याएँ तुमसे सीखना चाहती हूँ जो मेरी भाभियों ने मुझे दी हैं।'

विदा, मेरे भैया! अलविदा, मेरी बहना!

२०२

रत्नजटी ने स्वस्थ होकर वहाँ पर सुरसुंदरी को चारों विद्याएँ सिखला दी।

सुरसुंदरीने कहा :

‘तुम उत्तम पुरुष हो, मुझ पर तुम्हारे अनंत उपकार हैं। ये विद्याएँ देकर तुमने उन उपकरों को और प्रगाढ़ बना दिया है।’

‘हम कल सवेरे यहाँ से बेनातट नगर के लिए चल देंगे। आज दोपहर में भोजन के बाद नगर में ढिंढोरा पिटवा देता हूँ... कि कल बहन यहाँ से चली जाएँगी... जिन्हें भी बहन के दर्शन करना हो... आ जाएँ।’

रत्नजटी सुरसुंदरी के आवास में से निकला। अपने कक्ष में चला गया। सुरसुंदरी जाते हुए रत्नजटी को देखती ही रही... उसकी आँखें बहने लगीं... महान है... भैया तू! तू संसार में सत्पुरुष है रत्नजटी! खारे-खारे समुद्र में तू मीठे झरने-सा है... तूने अपना वचन बराबर निभाया।’

सुरसुंदरी रत्नजटी के आंतर-बाह्य व्यक्तित्व की महानता को सोचती ही रही... ‘तू जवान है... राजा है, तेरे पास सत्ता है... शक्ति है... संपत्ति है... पर फिर भी तू इंद्रियविजेता है। तेरा मनोनुशासन अद्भुत है... तेरा अपने आप पर पूरा नियंत्रण अद्भुत है। तेरी वचन-पालन की शक्तिदृढ़ता कितनी महान है? तूने गजब का दुष्कर कार्य किया है। साधु पिता का तू सचमुच साधु-पुत्र है! मेरे भैया... मेरे वीर! तुझे मैं जिंदगी में कभी नहीं भूला पाऊँगी। अब तो मेरी जिंदगी कितनी सूनी-सूनी हो जाएगी तेरे बगैर... तुम्हारे बगैर! भाई का प्यार बचपन में तो मिला नहीं... देखा नहीं! तुझ-सा भैया मिला... पर क्या ये ‘पल दो पल का मिलना... जीवनभर का बिछड़ना...’ कैसी है जिंदगी... कहाँ से कहाँ ले आयी मुझे? सुरसुंदरी फफक पड़ी। उसने पलंग में गिरकर तकिये में अपना चेहरा छुपा लिया, उसके आँसू बहते रहे। उसकी सिसकियाँ बढ़ती ही चली। मध्याह्न के भोजन का समय हो गया था।

सुरसुंदरी उठी... रत्नजटी को आग्रह करके बुला लायी, अपने हाथों बड़े प्रेम से खाना खिलाया। रानियों ने सुरसुंदरी को प्यार से, मनुहार करके खाना खिलाया। रानियों ने भी भोजन कर लिया।

नगर में ढिंढोरा पिट गया था।

नगर की परिचित औरतों का प्रवाह राजमहल में आना प्रारंभ हो गया था।

राजमहल के विशाल दालान में चारों रानियों के साथ सुरसुंदरी बैठी हुई थी। नगर की प्रतिष्ठित सन्नारियों से खण्ड भर गया था। सुरसुंदरी सभी

विदा, मेरे भैया! अलविदा, मेरी बहना!

२०३

स्त्रियों से प्रेम से मिली। सुरसुंदरी ने एक घटिका पर्यंत जिनभक्ति के बारे में सबको बहुत कुछ बताया। सभी स्त्रियाँ हर्षविभोर हो उठीं। सुरसंगीत नगर में फिर से जल्दी आने की प्रार्थना करके सभी ने विदा ली।

सुरसुंदरी रानियों के साथ अपने कमरे में आयी।

रानियाँ सुरसुंदरी के लिए सुंदर वस्त्र, क्रीमती गहने... और कुछ दिव्य वस्तुएँ तैयार कीं। सब से छोटी रानी ने एक दिव्य पंखा सुरसुंदरी के हाथों में थमाते हुए कहा :

‘यह एक दिव्य पंखा है... यदि बुखार से पीड़ित किसी व्यक्ति पर यह पंखा झलाया जाए तो उसका बुखार अवश्य उतर जाएगा। इस पंखे की यह विशेषता है। तुम्हें उपयोगी बनेगा।

सुरसुंदरी उदास थी... चारों रानियाँ विदा देने की उमंग में थी। रत्नजटी का मन भी अस्वस्थ था।

यह सुरसुंदरी विद्याधर दुनिया में किस तरह वापस आ सकेगी? पर क्यों मेरा मन इसे वापस बुलाना चाहता है? नहीं... नहीं... मुझे अब इससे दूर ही रहना चाहिए। इसका अद्भुत रूप कभी मेरे मन को चंचल बना देगा तो? यह पर -स्त्री है... अमरकुमार की ब्याहिता है... पतिव्रता महासती है।’

रत्नजटी विचारों की आँधी में उलझने लगा। शाम को उसने खाना भी नहीं खाया। उसने क्या, किसी ने भी भोजन नहीं किया। रात को धर्मचर्चा भी नहीं हुई... चारों रानियाँ सुरसुंदरी के पास ही सो गयीं।

कमरे में रत्नों के दीप मद्धिम-मद्धिम जल रहे थे... परंतु वहाँ पर सोई हुई सन्नारियों के दिल में विरह की वेदना से उत्पन्न अंधकार फैला हुआ था।

सुबह हुई।

प्राभातिक कार्यों से सब निपटे।

सुरसुंदरी ने जिनमंदिर में जाकर परमात्मा के दर्शन-पूजन-स्तवन किये। सभी ने साथ बैठकर दुग्धपान किया।

चारों रानियाँ सुरसुंदरी के चरणों में गिरी। सुरसुंदरी चारों से लिपट गयी। सभी के दिल में उफनती पीड़ा आँसू बनकर पिघलने लगी।

‘फिर कभी पावन करना हमारे नगर को दीदी...!’ रानियाँ फफक-फफककर रो दीं। सुरसुंदरी महल के बाहर आयी। हज़ारों स्त्री-पुरुष अपने

विदा, मेरे भैया! अलविदा, मेरी बहना!

२०४

राजा की प्रिय बहन को विदा देने के लिए एकत्र हुए थे। सब ने गीली आँखों और भर्रायी आवाज में सुरसुंदरी को विदा किया।

सुरसुंदरी विमान में बैठी।

रत्नजटी ने अपने दिल को पत्थर बनाकर विमान को आकाश में ऊपर उठाया, नगर पर एक-दो तीन परिक्रमाएँ दी और बेनातट नगर की दिशा में तीव्रगति से घूमा दिया।



रत्नजटी ने बेनातट के बाह्य उद्यान के एकांत कोने में विमान को उतारा। सुरसुंदरी को सम्हालकर नीचे उतारा। रानियों द्वारा विमान में रखे हुए वस्त्रालंकार वगैरह भी उसने बाहर निकालकर सुरसुंदरी के पास रखे।

रत्नजटी ने सुरसुंदरी के सामने देखा। सुरसुंदरी ने भी रत्नजटी के तरफ भरी-भरी आँखों से देखा। 'बहन... कैसे वापस लौटूँ? मेरे पैर नहीं उठ रहे हैं। इतने दिन सुख में, आनंद में... बीत गये... तू तो दिल में बस गयी हो... बहना। न जाने अब वापस कब तेरे दर्शन होंगे? तब तुझे देख पाऊँगा? तेरे साथ इतनी तो गहरी प्रीति बँध चुकी है कि आज तक तुझे देखकर तन-मन प्रसन्नता से पुलक उठते थे। अब? ठंडी आहों के अलावा अब और क्या बचा है? बहन, वे दिन कैसे भूलेंगे? ये दिन कैसे गुज़रेंगे? सब याद आयेगा और आँखें बरसा करेंगी... तेरे साथ की हुई तीर्थयात्रा... तेरे साथ गुजारे हुए तत्त्वचिंतन के क्षण... तेरे मीठे-मधुर बोल... तेरा निर्दोष मासूम चेहरा, सब यादें फरियाद बनकर मेरे दिल को चूर-चूर कर डालेगी! और जब भोजन के समय तुझे नहीं देखूँगा... सोच बहन! मेरा क्या होगा? तेरी उन भाभियों पर क्या गुजरेगी? वे तड़पती रहेंगी...!!

प्रीत का सुख तो सपना बनकर बह गया...! अब तो दुःख का अंतहीन समुद्र ही रह गया... हमारे लिए! ज्यादा क्या कहूँ मेरी बहन! सोचता हूँ कहीं तू अपने इस अशांत, संतप्त और व्यथित भाई को भूला मत देना... नहीं बहन... भूलाना मत। कभी याद करके साल में एकाध बार तो तेरी कुशलता का संदेश ज़रूर-ज़रूर भिजवाना!'

रत्नजटी के दिल का बँध टूटा जा रहा था। उसके आँसू सुरसुंदरी के दिल में आग लगा रहे थे। सुरसुंदरी ने अपने आँचल के छोर से रत्नजटी की आँखें पोंछी।

विदा, मेरे भैया! अलविदा, मेरी बहना!

२०५

‘मेरे प्यारे भैया... मेरी एक बात सुनो... तुम तो मेरे मन में बस गये हो... इस देह में जब तक प्राण हैं... तब तक तो मैं तुम्हें नहीं भूला पाऊँगी... तुम्हारे तो मुझपर अनंत उपकार हैं...। तुम्हारे उपकारों को कैसे भुलाऊँ? मेरे भैया... दिन-रात, आठों प्रहर तुम्हारा नाम मेरे होठों पर रहेगा... तुम्हारी याद मेरे हृदय में रहेगी...।

मेरी प्यारी भाभियों को प्रेम देना। उन प्यारी-प्यारी भाभियों से कहना... ‘तुम्हारे बिना मेरी बहन बिन पानी के मछली की भाँति तड़पती रहेगी... तरसती रहेगी तुम्हारे प्यार के बिना पता नहीं मैं कैसे जी पाऊँगी?’ मेरे भाई... नौ-नौ महिने का एक सुंदर-सलोना-सपना टूट गया। सारे अरमान जलकर राख हो गये। अब क्या? तुम्हारी अनुकंपा... तुम्हारा निर्विकार प्रेम... तुम्हारा अहैतुक वात्सल्य... तुम्हारी वचननिष्ठा... तुम्हारा अद्भुत आत्मसंयम इन सारे गुणों को याद कर-कर के आँसू बहाती रहूँगी।’

पर मेरे भैया... तुम तो बड़े विद्याधर हो। क्या साल में एकाध बार भी इस दुखियारी बहन के पास नहीं आओगे? मैं तो बिना पंख की पक्षिणी हूँ... कैसे आऊँगी तुम्हारे पास? तुम्हारे पास तो आकाशगामी यान है... तुम ज़रूर चंपा नगरी में पधारना। मेरी प्यारी भाभियों को साथ लेकर ज़रूर आना। आओगे ना भैया? मैं रोज़ाना शाम को हमारी हवेली की छत पर बैठी-बैठी तुम्हारा इंतजार करूँगी...

ओ मेरे... तु मुझे दर्शन देना... तू चाँद बनकर चले आना। तू बादल बनकर आ जाना... तू किसी भी रूप में आना... तू किसी भी भेष में आना मेरे भैया... भूल नहीं जाना। अपनी इस अभागिन बहन को। नहीं भूलोगे ना मेरे भैया? बोलोना... कुछ तो बोल मेरे भाई।’

सुरसुंदरी रत्नजटी के कदमों में लेट गयी। रत्नजटी ने उसको खड़ा किया... उसके माथे पर अपने दोनों हाथ रखे। उसकी आँखे बरसाती नदी की भाँति बह रही थी। उसके गरम-गरम आँसू सुरसुंदरी के माथे को अभिषेक करने लगे।

यकायक उसने अपने आपको संयमित किया। हाथ जोड़कर सुरसुंदरी को प्रणाम किया और तीव्र वेग से अपने विमान में जा बैठा।

शीघ्र-गति से विमान को आकाश में ऊपर उठाया... और विमान बादलों के पहलू में सिमटा आँखों से ओझल हो गया।





सुरसुंदरी देखती ही रही... रत्नजटी के विमान को जाते हुए। जब तक विमान दिखता रहा... वह आकाश में ताकती रही। विमान दिखाना बंद हुआ और सुरसुंदरी धैर्य गाँव बैठी। जमीन पर ढेर हो गयी और फूट-फूटकर रोने लगी। भाई के विरह की वेदना से व्याकुल हो उठी। दो घटिका उसने वैसे ही बैठे-बैठे बीता दी। उसने अपने पास दो मंजुषाएँ पड़ी देखी। रत्नजटी रख गया था। एक पेट्टी में सुंदर क्रीमती कपड़े व गहने थे। दूसरी मंजुषा में सोना मुहरें थीं एवं पुरुष-वेश था।

सुरसुंदरी ने स्वस्थ होकर पहला कार्य रूप-परिवर्तन करने का किया। विद्याशक्ति से उसने पुरुष का रूप बना लिया और तुरंत कपड़े भी बदल लिये। पुरुष का वेश सजा दिया। स्त्री के कपड़े उतारकर मंजुषा में रख दिये।

‘अब मैं बिलकुल निश्चित हूँ। दुनिया स्त्री-रूप का शिकारी है। पुरुष के रूप में मेरा शील सुरक्षित रहेगा। सचमुच, रत्नजटी की रानियों ने मुझे बड़ी अद्भुत और अनमोल भेंट दी। मैं निर्भय व निश्चित हो गयी हूँ। अब मैं इस नगर में रहूँगी। अमरकुमार का मिलन इसी धरती पर होनेवाला है। चाहे वह कल चला आए या पाँच बरस लगाए। कोई फर्क नहीं पड़ता। अब मुझे फिर किस बात की?’ सुरसुंदरी विचारों में डूबी हुई वहाँ पर बैठी थी... इतने में एक प्रौढ़ उम्र की स्त्री उसके पास आयी। आकर खड़ी रही।

‘लगता है तुम विदेशी जवान हो?’

‘हाँ।’

‘आपका शुभ नाम बता सकेंगे?’

‘विमलयश!’

‘ओह... आपका परिचय देंगे?’

‘मेरा परिचय? मैं एक राजकुमार हूँ।’

‘वह तो आपकी आकृति और आपके वस्त्रालंकार ही बता रहे हैं।’

मुझे यहाँ कुछ दिन रहना है, रहने के लिए उपयुक्त जगह मिल जाएगी क्या? कहाँ मिलेगी, क्या तुम मुझे बता सकती हो?’

सवा लाख का पंखा

२०७

‘क्यों नहीं? ज़रूर! यहाँ पर अनेक पथिक-शालाएँ हैं, धर्मशालाएँ हैं, पर वे सार्वजनिक हैं। तुम्हे शायद पसंद नहीं भी आएगी। वहाँ तो कभी भी, कोई भी आ-जा सकता है! हाँ, यदि तुम्हें एतराज न हो तो मेरे वहाँ पधारो...।’

‘तुम्हारा परिचय?’

‘मैं इस बगीचे की मालिन हूँ। इस उद्यान के दक्षिण छोर पर मेरा मकान है। हम दो पति-पत्नी हीं वहाँ रहते हैं। और कभी-कभी विदेशी मेरे वहाँ आते हैं, ठहरते हैं। तुम्हारे लिए अलग कमरा दूँगी। तुम्हे मनपसंद भोजन बना दूँगी।

सुरसुंदरी ने अपना नाम ‘विमलयश’ रख लिया। उसे मालिन के घर रहना ही ज्यादा ठीक लगा। एक पेट्टी मालिन ने उठायी। दूसरी पेट्टी उठाकर विमलयश चला।

मालिन ने अपने मकान पर आकर एक सुंदर सुविधापूर्ण कमरा खोल दिया। विमलयश को कमरा पसंद भी आ गया।

‘क्या विदेशी राजकुमार... मेरी झोंपड़ी पसंद आएगी न?’ मालिन ने एक तरफ पेट्टी रखते हुए कहा। ‘कोई असुविधा हो... कमी हो, तो मुझसे कह देना। अभी तो तुम दुग्धपान करोगे न?’

‘हाँ... अब तो मुझे तुम्हें ही सब तकलीफ देनी होगी!’

‘इसमें तकलीफ कैसी भाई? अतिथि का स्वागत करना तो हमारा फर्ज है... और तुम जैसे राजकुमार मेरे घर में कहाँ?’

सुरसुंदरी ने दस मुहरें निकालकर मालिन के हाथों में रख दी। मालिन तो मुहरें देखकर खुश हो गयी।

‘अरे... यह क्या करते हो? इतनी सारी मुहरें कैसे ले लूँ? नहीं...’

‘बहन, यह तो कुछ नहीं है, रख लो, मेरे भोजन की व्यवस्था भी तुम्हें ही करनी होगी!’

‘अच्छा राजकुमार, तुम्हारी व्यवस्था में कोई भी कमी नहीं आने दूँगी!’

मालिन शीघ्रता से अपने घर में चली गयी। चूल्हे पर दूध गरम करने के लिए रख दिया। और लगे हाथों बाजार में दौड़ गयी। शर्करा... बादाम... इलायची... केसर वगैरह उत्तम द्रव्य खरीद लायी। दूध में वे सारे द्रव्य डालकर उसे स्वादिष्ट बनाया। धातु के एक स्वच्छ पात्र में लेकर विमलयश के कमरे में आयी। विमलयश ने दुग्धपान कर लिया।

सवा लाख का पंखा

२०८

‘अब तुम्हे स्नान करना होगा न?’

‘नहीं... स्नान तो मैंने कर लिया है... मैं अब नगर में जाऊँगा परिभ्रमण के लिए। मध्यान्ह में वापस आ जाऊँगा।’

‘तुम आओगे तब-तक भोजन तैयार हो जाएगा।’

‘बाजार में से यदि कुछ लाना हो तो लेता आऊँ!’

‘नहीं रे बाबा... ऐसी कोई चिंता तुम्हें थोड़े ही करनी है? यदि तुम्हें कुछ चाहिए तो मुझे कहना, मैं ला दूँगी। तुम तो इस नगर में पहले-पहले ही आये होगे ना?’

‘हाँ... मैं तो पहली ही बार आया हूँ।’

‘तो फिर मैं आती हूँ तुम्हारे साथ नगर में!’

‘नहीं, कोई ज़रूरत नहीं है, तुम भोजन बनाना। मैं तो घूमकर वापस आ जाऊँगा... पर तुम्हारा नाम तुमने बताया ही नहीं? मैं भी कैसा हूँ... नाम भी नहीं पूछा!’

‘मेरा नाम है मालती!’

‘बहुत अच्छा नाम है...!’

विमलयश ने जरूरी मुहरें पेट्टी में से निकाल ली। दोनों पेट्टियों को बंद करके रख दिया और खुद नगर की तरफ चला। विमलयश को जो पहला कार्य करना था, वह नये वस्त्र खरीदना था। बाजार में जाकर उसने बढ़िया कपड़े खरीद लिये। मालिन के लिए भी सुंदर कपड़ों का जोड़ा ले लिया। वापस वह लौटकर बगीचे में आ गया।

दोपहर के समय उसने भोजन किया। भोजन करवाते वक्त मालिन ने जान लिया कि विमलयश को कैसा भोजन अच्छा लगता है! विमलयश को लगा कि मालिन कार्यकुशल है, साथ ही चतुर भी है।’

‘मालती, ये कपड़े तुम्हारे लिए लाया हूँ, तुम्हें पसंद आएँगे ना?’

विमलयश ने मालती को नये कपड़े दिये। मालती की आँखें चौड़ी हो गयीं।

‘अरे... राजकुमारजी, तुम तो कोई राजकुमारी पहने वैसे कपड़े ले आये हो। इतने क्रीमती कपड़े मेरे लिए नहीं चाहिए। मैं इन्हें पहनूँ भी कैसे?’

‘देखो, मुझे तो अच्छे कपड़े ही भाते हैं... मेरे लिए या औरों के लिए! तुम्हें पहनना ही होगा।’

सवा लाख का पंखा

२०९

‘एक शर्त मंजूर हो तो पहनूँ?’

‘क्या शर्त है तुम्हारी?’

‘तुम्हें मुझे ‘तू’ कहकर बुलाने की। मैं कोई इतनी बड़ी थोड़ी ही हूँ...! बोलते तो वह बोल गयी, पर फिर शर्म से सर झुका लिया। विमलयश ने हँस दिया।

‘अच्छा... मैं तुझे मालती कहकर ही बुलाऊँगा!’

‘तब तो मुझे बड़ा अच्छा लगेगा।’

मालती चली गयी। विमलयश ने अपने कपड़े वगैरह इकट्ठा कर रख दिये। कमरे का दरवाजा बंद किया और ज़मीन पर ही आराम करने के लिए लेट गया। उसे मीठी नींद आ गयी... जब वह जगा तब दिन का चौथा प्रहर प्रारंभ हो गया था। उसने दरवाजा खोल दिया। तुरंत ही मालती हाज़िर हो गयी।

‘बड़ी मीठी नींद आ गयी मुझे तो... कुछ ख्याल ही नहीं रहा!’ विमलयश ने कहा।

‘यह कमरा ही ऐसा है... उद्यान के फूलों की खुशबू सीधी यहाँ पर आती है। सबेरे-सबेरे तो देखना, जूही के फूलों की खुशबू से वातावरण भर जाएगा।’

‘मालती, इस नगर के राजा का नाम क्या है?’

‘गुणपाल!’

‘उसके बेटे कितने हैं?’

‘केवल एक बेटा ही है...। बेटा है ही नहीं! बेटा बड़ी प्यारी और सलोनी है!’

‘क्या नाम है उसका?’

‘गुणमंजरी!’

‘अच्छा... अरे मालती... तेरा आदमी तो दिखा ही नहीं!’

‘वह शाम को आएगा... बाहर गया हुआ है।’

‘तुम दोनों की कमाई कितनी है?’

‘गुजारा हो जाता है...। महाराजा की कृपा से यह मकान रहने के लिए मिला है...। इस बगीचे को सम्हालते हैं!’

सवा लाख का पंखा

२१०

‘बगीचा तो बहुत ढंग से सम्हाला है... फूलों के साथ-साथ तरह-तरह के फल भी होते हैं क्या?’

‘क्यों नहीं? करीबन दस-बारह प्रकार के फल होते हैं।’

‘तब तो रोजाना मुझे फलाहार मिलेगा।’

‘तुम जो चाहोगे वह आहार मिल जाएगा।’

मालती का स्वभाव विमलयश को भा गया।

सूर्यास्त के पहले ही भोजन वगैरह से निपटकर विमलयश ने श्री नवकार महामंत्र का जाप कर लिया। इतने में तो माली बाहर गाँव से आ गया। मालती ने अपने पति को विमलयश के आगमन की बात कही। विमलयश की उदारता-शालीनता की जी-भर कर प्रशंसा की। माली भी प्रसन्न हो उठा।

विमलयश की रात वैसे तो शांति से बीती, पर वह घंटों तक सुरसंगीत नगर की स्मृतियों में डुबा रहा। नंदीश्वर द्वीप को स्मृति यात्रा भी की। अमरकुमार के विचार भी आ गये। वैसे भी फुरसत का समय बीती हुई बातों को याद करने का ही होता है!

दूसरे दिन सबेरे नित्यकर्म से निवृत्त होकर विमलयश ने मालती को पच्चीस मुहरें देते हुए कहा :

‘मालती, इन पैसों से बाज़ार में जाकर अच्छे बढ़िया बर्तन वगैरह खरीद लाना। अच्छे बर्तन तो घर की शोभा बढ़ाते हैं!’

मालती नाच उठी। बाजार में जाकर अच्छे-अच्छे बर्तन खरीद लायी। विमलयश ने मालती के घर को पूरा ही बदल दिया। मालती ने विमलयश की सेवा में कोई कमी नहीं रखी। कुछ ही दिनों में तो उसने विमलयश को पूरे बेनातट नगर से परिचित करवा दिया।

एक रात को विमलयश के दिमाग में एक विचार कौंधा...।

अमरकुमार का मिलन तो इसी नगर में होनेवाला है, परंतु वह मिले इससे पहले मुझे मेरे वचन को सिद्ध कर देना चाहिए। जब उन्होंने ‘सात कौड़ियों में राज्य लेना!’ वैसा लिखकर मेरा त्याग किया है। बचपन में, नादानी में, मेरे कहे गये शब्द उन्होंने वापस मुझ पर फेंके हैं, तो मुझे भी उनकी चुनौती स्वीकार कर अपने शब्दों को साकार बना देना चाहिए। इसके बाद उनका मिलना हो तब ही मैं आत्मविश्वास से उनके साथ शेष जीवन गुज़ार सकूँगी, वरना अपनी आदत से मजबूर अमरकुमार मुझे ताना कसने से चूकेंगे नहीं।

सवा लाख का पंखा

२११

इसलिए कुछ तरकीब सोचनी होगी...। सिर पर हाथ रखकर बैठने से क्या होगा? दिन गुज़र जाएँगे पर बात बनेगी नहीं!’

विमलयश ने मन ही मन योजना बना ली। उस योजना के मुताबिक उसने पहला काम मालती को ही सौपा। मालती को बुलाकर कहा :

‘मालती, यह एक पंखा मैं तुझे देता हूँ... तुझे बाज़ार में जाकर इस पंखे को सवा लाख में बेचना है!’

मालती ने पंखा हाथ में लेकर ध्यानपूर्वक उसको देखा और पूछा।

‘इस पंखे में ऐसी क्या विशेषता है कि कोई व्यक्ति इसे सवा लाख रुपये में खरीदने को तैयार होगा?’

‘विशेषता? मालती, यह पंखा जादू का है। इस पंखे की हवा से चाहे जैसा भी ज्वर हो... बुखार हो... शांत हो जाता है। बीमार व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है।’

‘तब तो कोई न कोई ग्राहक शायद मिल जाएगा!’

‘पर देख! पंखे की विशेषता पहले से सबको बता मत देना। कोई योग्य ग्राहक पूछे तो उसे बताना!’

पंखा लेकर मालती चली आयी नगर में मुख्य चौराहे पर। वहाँ पहुँचकर अच्छी जगह देखकर खड़ी रही और फिर बोलने लगी :

‘पंखा ले लो भाई पंखा! सवा लाख रुपये का पंखा! लेना है किसी को?’

लोगों का टोला इकट्ठा होता है। कोई हँसता है। कोई मालती को पागल समझकर चल देता है...।

‘पंखे की क्रीमत क्या कभी सवा लाख देखी सुनी भी है, भाई?’ लोग आपस में कानाफूसी करते हैं। पर कोई पूछने की हिम्मत नहीं करता है कि ‘अरी मालती, तेरे पंखे में ऐसा क्या जादू भरा है कि तू इसकी क्रीमत सवा लाख बता रही है!’

पहला प्रहर बीता, पंखा लेने कोई आगे नहीं आया।

दूसरा प्रहर गुज़र गया, पंखे का कोई खरीदार नहीं मिला।

तीसरा प्रहर ढल गया... कोई व्यक्ति नहीं आता है पंखा खरीदने को। मालती मायूस होने लगी। पर चौथे प्रहर के ढलते-ढलते एक सेठ उधर से गुज़रे। उन्होंने यह तमाशा देखा। उसने आकर मालती से पूछा :

राजमहल में

२१२

‘अरी मालिन, यह तो बता, कि इस पंखे में ऐसी क्या विशेषता है जो तू इसका सवा लाख रूपया माँग रही है?’

मालती को लगा : यह कोई सचमुच खरीदनेवाला लगता है। उसने कहा : ‘सेठ, यह पंखा जादू का है। दाहज्वर से पीड़ित व्यक्ति का दाहज्वर मिटा दे वैसा जादू है इसमें!’

क्या बात कर रही हैं? तो चल मेरे साथ मेरी हवेली पर! मेरा लाड़ला बेटा कई दिनों से दाहज्वर से तड़पता है। उसका दाहज्वर यदि मिट गया तो मैं तुझे सवा लाख रूपये नगद गिन दूँगा।’

मालती पंखा लेकर सेठ के साथ चल दी उसकी हवेली पर। सेठ ने पंखा लेकर अपने बीमार बेटे पर हवा डाली...। ज्यों-ज्यों पंखे की हवा फैलने लगी... सेठ का बेटा ज्वर से मुक्त होने लगा। उसकी आँखों में नींद आने लगी।

सेठ हर्ष से पुलकित हो उठा!

‘मालिन, तेरा जादू का पंखा सच्चा! पंखा मेरा और ले यह सवा लाख रूपये तेरे!’

सेठ ने सवा लाख रूपये नकद गिन दिये। रूपये लेकर आनन-फानन में मालती अपने घर पर दौड़ी आयी। उसका आनंद उछल रहा था... विमलयश के कमरे में आकर सवा लाख रूपये विमलयश के सामने रख दिये और खुद भी बैठ गयी नीचे।

‘बिक गया पंखा सवा लाख में मेरे राजकुमार! क्या पंखा बनाया है तुमने? तुम तो बड़े अजीब कलाकार हो...। राजकुमार, क्या कहने तुम्हारे! सवा लाख का पंखा! बाप रे... और फिर बिक भी गया!’

मालती एक ही साँस में बोल गयी। हाँफ रही थी...। विमलयश चेहरे पर मुस्कान बिखेरे उसे देख रहा था।



३२. राजमहल में

बेनातट नगर का समुद्री किनारा... यानी पुष्पित-प्रफुल्लित प्रकृति की सौंदर्य लिला। उषाकाल में एकांत प्रकृति की गोद में समुद्र के किनारे कभी अभिनव सिंगार रचकर अपने प्रियतम की प्रतीक्षा करती हुई... सुरसुंदरी घूमती थी। अपने मूल रूप में आकर वह दूर-दूर... उछलते उदधि तरंगों में अमरकुमार के जहाजों का दर्शन करती थी।

कभी वह विमलयश का नाम-रूप धारण करके बेनातट के रमणीय अरण्य में चली जाती थी। मिलन-व्याकुल होकर दौड़ती जाती नदियाँ... झरने... हरी-भरी धरती पर मुक्त उल्लास से नाचते-कूदते हिरन-हिरनियाँ, जलाशय में किलकारी भरते सारस युगल... मस्ती से नाचते-गाते मयूर युगल... सहकार वृक्ष से झुमती हुई लिपटती माधवी-लता... प्रकृति के अपार सौंदर्यदर्शन में वह मुग्ध हो जाती। उसके कोमल हृदय ध्यान में लीन हो जाती थी।

कभी पारिजात के झूले पर झूलती हुई सुरसुंदरी संध्या की खिलती-खुलती स्वर्णिम आभा को देखती ही रह जाती। संध्या के रंगों में जीवन के सत्य का वास्तविक दर्शन करती... और आत्मा की शुचितम अनुभूति में गहरे उतर जाती।

कभी... जब आकाश में से चंद्रमा की छिटकती चाँदनी अग्नि पर आहिस्ता-आहिस्ता उतर रही हो... जूही और रातरानी के फूल अपनी खुशबू को फैलाते होते, मंदिर एवं मादक हवा की भीगी-भीगी लहरें रोमांच का अनुभव करवाती होती... ऐसे स्निग्ध और सुगंधित वातावरण में सुरसुंदरी पारिजात के वृक्ष टले पेड़ से सटकर बैठी रहती... और अमरकुमार की बाट निहारती। पर जब उसे अमरकुमार का साया भी नज़र नहीं आता... तब उसका खिला-खिला चेहरा मुरझा जाता। उसके गौर वदन पर ग्लानि छा जाती। उसकी आँखों में आँसू भर आते। आखिर... वह प्रेमसरिता सी नारी थी ना! उसका विषाद भरा हृदय जब उसे अतीत की स्मृतियों के खंडहर में ले उड़ता... उसका रोयाँ-रोयाँ काँप उठता... पुराने ज़ख्मों की याद से।

फिर भी उसमें, उसकी आत्मा के अणु-अणु में सतीत्व का सत्व बहता था। उसमें सतीत्व की दृढ़ता थी। सतीत्व का शुद्ध तेज था। वह अपने आप पर काबू पा लेती। शुद्ध आत्मस्वरूप के ध्यान में डूब जाती थी।

मालती खुशहाल थी... चूँकि उसने विमलयश का बड़ा कार्य कर दिया था। सवा लाख रुपये का पंखा बेचकर उसने विमलयश के सामने रुपयों का ढेर लगा दिया था।

विमलयश ने दूसरे दिन नित्यकर्मसे निवृत्त होकर मालती को अपने पास बुलाया... और उसे पच्चीस हज़ार रुपये भेंट दे दिये। उस वक्त मालती को विमलयश में 'भगवान' का दर्शन हो गया। वह भावविभोर होती हुई विमलयश के चरणों में लोट गयी :

'ओ परदेशी राजकुमार, क्या तू कर्ण का अवतार है? तूने तो मेरे जनम-जनम की दरिद्रता दूर कर दी। बोल, मैं तेरा क्या प्रिय करूँ? तू जो कहे सो करने को तैयार हूँ।'

विमलयश हँस पड़ा।... उसने कहा :

'मालती, भूख सता रही है... तेरे केसरिया दूध की खुशबू बता रही है कि...' मालती झंपती हुई दौड़ी... और घर में जाकर दूध का प्याला भर लायी। विमलयश ने दूध पी लिया। प्याला मालती को देते हुए कहा :

'मालती... मान या मत मान, आज कोई न कोई अच्छी घटना होनी चाहिए। आज मेरा मन अव्यक्त आनंद से छलकने लगा है।'

'तो क्या मुझे आज कोई जादुई पवन-पाँवड़ी देकर बेचने के लिए चौराहे पर भेजने का इरादा है क्या? मालती ने विमलयश के सामने देखते हुए मुस्कान बिखेरी।

'नहीं... बाबा नहीं... अब मालती को चौराहे पर थोड़े ही भेजने की है? अब मैं उसे अपने साथ राजसभा में ले जाऊँगा। आएगी न मालती, मेरे साथ?'

'अरे, राजसभा में क्या? तुम कहो तो इन्द्रसभा में भी चली आऊँ तुम्हारे साथ।'

'फिर ये तेरा आदमी क्या करेगा बेचारा?'

ये पच्चीस हज़ार रुपये मिले हैं न?... खायेगा, पियेगा और मौज मनायेगा...।'

दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े।

मालती की निगाह बगीचे के द्वार पर गिरी... और वह तपाक से खड़ी हो गयी... उसने घूरकर देखा और बोल उठी :

‘कुमार, यह क्या? राज्य की पालकी लेकर राजा के आदमी बगीचे में आ रहे हैं। देखो तो सही तुम।’ मालती ने विमलयश को इशारे से दरवाज़े की तरफ देखने को कहा।

‘अरे... ये लोग तो इधर ही आ रहे हैं।’

मालती दौड़ती हुई सामने गयी। मुख्य राजपुरुष ने मालती के पास आकर पूछा :

‘मालती, तेरे यहाँ एक परदेशी राजकुमार आया है न?’

‘हाँ...’

‘कहाँ है?’

‘मेरे घर में है।’

मालती राज्य के आदमियों को लेकर अपने मकान में आयी। राजपुरुषों ने कमरे में प्रवेश किया। विमलयश ने खड़े होकर उनका स्वागत किया। राजपुरुषों ने प्रणाम करके कहा :

‘परदेशी राजकुमार, हमारे महाराजा का एक संदेश आपके लिए हम लेकर आये हैं।’

‘कहिए, महाराजा की क्या आज्ञा है मेरे लिए?’

‘हमारे महाराजा आपको याद कर रहे हैं। आपका बनाया हुआ जादू का दिव्य पंखा कमलश्रेष्ठी ने महाराजा को भेंट किया है। वह देखकर, उसका प्रभाव जानकर, उस पंखे की रचना करनेवाले महान् कलाकार के दर्शन करने के लिए महाराजा आतुर हैं। आपको लिवा लाने के लिए हमें पालकी लेकर भेजा है।’

‘मैं भी कलाकार की कला का मूल्यांकन करनेवाले बेनातट नगर के राजेश्वर के दर्शन करके आनंदित होऊँगा। आप थोड़ी देर प्रतीक्षा करें। मैं आधी घटिका में ही तैयार होकर आपके साथ चलता हूँ।’

राजपुरुष मकान के बाहर आकर बैठे। मालती ने राजपुरुषों का उचित आतिथ्य किया। मालती के आनंद की सीमा नहीं थी। वह भी अपने योग्य कपड़े पहनकर विमलयश के साथ राजसभा में जाने के लिए तैयार हो गई थी।

विमलयश ने उत्तम वस्त्रालंकार धारण किये। उसने बाहर आकर राजपुरुषों से कहा :

‘मैं पैदल चलकर ही आऊँगा।’

‘पर, हम यह पालकी साथ लाये हैं, आपके लिए।’

‘यह तो महाराजा की उदारता है। मेरे जैसे अनजान परदेसी राजकुमार पर महान कृपा की है। पर मैं उसमें नहीं बैटूँगा। मैं पैदल ही चलूँगा। इस बहाने बेनातट नगर की भव्यता देखने का मौका मिलेगा। आप तनिक भी चिंता न करें।’

‘पर महाराजा हम पर नाराज़ होंगे।’

‘नहीं होंगे। मैं उनसे निवेदन कर दूँगा।’

विमलयश की शिष्ट और मिष्ट वाणी सुनकर राजपुरुष खुश हो उठे। विमलयश को साथ लेकर राजसभा में आए।

विमलयश ने महाराजा को प्रणाम किया। राजा गुणपाल तो विमलयश के सामने देखता ही रहा ठगा-ठगा सा।

सौंदर्य छलकता गोरा-गोरा मुखड़ा... कान तक खींचे हुए मदभरे नैन... गालों पर झूलती केश की लटें... कानों में चमकते-दमकते दिव्य कुंडल... गले में सुशोभित होता नौलखा हार... अंग-अंग में से यौवन की फूटती आभा। साक्षात् जैसे कामदेव!

महाराजा गुणपाल की असीम स्नेह से छलकती आँखें विमलयश पर वात्सल्य बरसाती रही।

‘ओ परदेशी राजकुमार... मैं तेरा हार्दिक स्वागत करता हूँ।’

महाराजा ने स्वयं खड़े होकर विमलयश का हाथ पकड़कर अपने निकट के ही आसन पर उसे बिठाया।

‘कुमार, तेरी अद्भुत कला देखकर मैं तेरे पर मुग्ध हूँ...। प्रसन्न हूँ... और इसी प्रसन्नता से तुझे कहता हूँ कि तेरी जो भी इच्छा हो तू मुझसे माँग ले!’ विमलयश की पीठ पर स्नेह से पुलकित अपना हाथ सहलाते हुए महाराजा ने कहा :

‘पितातुल्य महाराजा, आपकी कृपा से मेरे पास ढेर सारी संपत्ति है। मैं क्या माँगू आपके पास?’

‘कुमार, तेरे पास अपार संपत्ति है, यह तो तेरे क्रीमती वस्त्र और आभूषण ही बता रहे हैं, फिर भी मेरा मन राजी हो इसलिए भी तू कुछ माँग।’

विमलयश ने दो क्षण सोचा और कहा :

‘महाराजा, समुद्री किनारे चुंगी नाके का अधिकारी पद मुझे चाहिए।’

‘बड़ी खुशी के साथ! चुंगी नाके के अधिकार का पद तो तेरा होगा ही, साथ ही चुंगी से आनेवाला सारा धन तेरा रहेगा। उस पर तेरा ही अधिकार होगा।’

‘आपकी बड़ी कृपा हुई मुझ पर।’

‘विशेष में अब तुझे मालिन के बगीचे में नहीं रहना है। राजमहल के पास ही मैं तुझे एक सुंदर महल दे देता हूँ, तुझे उस महल में रहना है।’

विमलयश की निगाह राजसभा में बैठी हुई मालती पर गिरी। मालती का चेहरा उतर गया था। फिर भी विमलयश ने महाराजा की बात मान ली।

‘महाराजा, मैं कल सवेरे आ जाऊँगा महल में।’

राजसभा पूरी हो गयी। विमलयश मालती के साथ घर पर पहुँचा।

रास्ते में मालती एक अक्षर भी नहीं बोली। विमलयश ने घर पर आते ही मालती से कहा :

‘मालती।’

मालती की आँखों में आँसू थे।

‘तू रो रही है? क्यों? मैं चुंगी नाके का मालिक हुआ यह तुझे अच्छा नहीं लगा?’

‘वह तो अच्छा लगा, पर तुम कल यहाँ से...’

‘अरे वहाँ! मैं कोई अकेले थोड़े ही जाऊँगा। क्यों तू नहीं आएगी मेरे साथ?’

‘मैं? अरे... मैं तो अभी चल दूँ... इसे रोटी कौन बना देगा? अपने पति की तरफ उंगली करते हुए कहा।

‘ओह! ओफ! अरे... यह तो अपने महल पर आ जाएगा भोजन करने के लिए, और यहाँ पर बगीचा भी संभालता रहेगा।

मालती ने अपने पति से पूछ लिया... पति की अनुमति मिल गयी। मालती तो जैसे आकाश में उड़ने लगी।

‘मालती, महल में जाकर नाचना... अब भोजन कब तैयार होगा...?’

‘अरे कैसी पागल हूँ...मैं? अभी-अभी बस दो घटिका में ही तैयार कर देती हूँ भोजन। आज तो लापसी बनाऊँगी। तुम मंत्री जो बन गये हो।’

‘और तू मंत्री की परिचारिका हो गयी न?’

मालती रसोईघर में पहुँच गई। विमलयश ने कपड़े बदल लिये और पलंग में जा लेट गया। राजा... राज्यसभा और बेनातट के नगरजन उसकी स्मृतिपट पर उभरने लगे। उसने राजा के दिल में स्नेह का सागर उफनता पाया। राज्यसभा में कलाकारों की, विद्वानों की, पराक्रमियों की, कद्रदानी देखी। प्रजा में सरलता, गुणग्राहकता, और प्यासी आँखें देखी। साथ ही साथ गरीबी भी देखी...। उसका अंतरमन बोल उठा :

‘पहले मैं प्रजा की गरीबी दूर करूँगा। इस नगर में एक भी आदमी बेघर नहीं रहना चाहिए। कोई भी नंगा और भूखा-प्यासा नहीं रहना चाहिए। एक राज्य अधिकारी के रूप मेरा पहला कर्तव्य यही होगा। चुंगी की तमाम पैदाइश मैं प्रजा की सुख-शांति एवं बेनातट की उन्नति के लिए खर्च करूँगा। उस धन में से एक पैसा भी मुझे अपने लिये नहीं चाहिए।’

भोजन तैयार हो गया था।

मालती ने विमलयश को प्रेम से आग्रह कर-करके भोजन करवाया। भोजन के पश्चात विमलयश वहीं पर बैठा। मालती ने भी भोजन कर लिया। विमलयश ने मालती से कहा :

‘मालती, महाराजा बहुत उदार हैं, नहीं?’

‘हैं तो सही, पर तुम्हारी तुलना नहीं हो सकती।’

‘तू तो बस जब देखो तब मेरा ही गुण गाने लगेगी। जा, तुझ से बात ही नहीं करनी है मुझे तो।’

यों कहकर विमलयश खड़ा होकर अपने कमरे में चला आया।

पीछे-पीछे ही मुँह में आँचल दबाकर हँसती हुई मालती आयी और बोली।

‘मैं महल पर जाऊँ क्या?’

‘क्यों?’

‘वहाँ पर सारी सुविधा जमा दूँ, सामान भी लगा दूँ।’

‘अच्छा... और यह भी देखती आना कि अपने महल और राजमहल के बीच कितनी दूरी है?’

राजमहल में

२१९

मालती चली गयी राजमहल की ओर, और इधर विमलयश स्वस्थ वस्त्र पहनकर श्री नवकार मंत्र का ध्यान करने के लिए बैठ गया।

जाप-ध्यान पूर्ण करके विमलयश बगीचे में पलाश वृक्ष के नीचे छाया में जाकर बैठा।

प्रेमी का प्रेम जब प्रेम के बल पर अपनी सिद्धि प्राप्त करने के लिए तत्पर बनता है-तब कृतनिश्चयी योद्धा का रूप धारण करता है।

विमलयश की निगाह आकाश में घूमने लगी। आकाश में सहस्ररश्मि दमक रहा था - पर यकायक एक काली बदली आयी... और सूरज को आच्छादित कर दिया।

विमलयश को इस बदली का आकार रत्नजटी के विमान सा लगा। उसके होठों पर से शब्द सरक गया :

‘भाई...! तुम्हारा विमान नीचे उतारो!’

मालती का पति पास में ही पौधे को पानी सिंच रहा था... विमलयश की आवाज सुनकर वह दौड़ आया...

‘क्या हुआ कुमार? कुछ चाहिए क्या तुम्हें?’

विमलयश हँस दिया... नहीं... नहीं... कुछ नहीं हुआ... कुछ चाहिए भी नहीं!’

मालती चला गया...। विमलयश सुरसंगीत नगर की स्मृतियात्रा में खो गया...। एक के बाद एक दृश्य स्मृतिपटल पर उभरने लगे... भाई... भाभियाँ... गुज़रे हुए दिन... बीते हुए पल... और भी बहुत कुछ।





प्रशांत यामिनी सर्द खामोशी में लिपटी-लिपटी महक रही थी। नील-गगन में चाँद बदलियों के संग आँखमिचौली खेल रहा था। चमकते-दमकते तारे हँसते हुए इस आँखमिचौली को देख रहे थे।

अतिथिगृह की अट्टालिका पर से कोई मधुर वीणा के स्वरों का कारवाँ वातावरण में फैल रहा था। शब्द भी जहाँ बर्फ बन जाए वैसी तन-मन को छू जानेवाली सुरावली में से अपने आप भाव प्रगट हो रहे थे। भावुकता भरे दिल को तो ऐसा ही लगता जैसे कि किसी की चाहत बुला रही है। कोई पागल प्रेमी स्वरों के साये में लिपटता हुआ पुकार रहा है।

जिंदगी को वसंती झूले पर झूलाए, वैसी वह सुरमोहिनी, लगता था घनी रात के साये में बेनातट की गलियों में घूम रही थी। साँस थाम कर सुनने की ललक उठे, वैसी स्वरगंगा प्रवाहित हो रही थी।

राजमहल के एक शयनकक्ष में युवा राजकुमारी भरी नींद में से जग गयी थी। कलेजा हाथ में लिए जैसे वह एकात्म होकर सुरावली को पी रही थी। किसी गंधर्वकुमार का मधुर वीणावादन आज वह पहली-पहली बार सुन रही हो वैसा महसूस हो रहा था। आज से पहले वीणा के सुर उसने जैसे सुने ही नहीं थे।

मखमली सेज पर सोयी हुई राजकुमारी को स्वप्नसृष्टि में घूमने के लिए वीणा के मंदिर सुरों का साथ मिला! उसकी अंतरसृष्टि में नये-नये रंग-तरंग उछलने लगे-उभरने लगे। राजसभा में पहली बार देखा हुआ परदेशी राजकुमार उसकी कल्पनासृष्टि में साकार हुआ - 'यह वही होना चाहिए। उसी कलाकार राजकुमार का यह वीणावादन लगता है।' उसके मन ने अनुमान किया और भोले हृदय ने उस अनुमान को सत्य रूप में मान लिया।

दुबली-पतली देहलता वाला गौरवर्णा सुंदर युवान! घुंघराले काले - कजराले केश! कोमल कमल से स्वच्छ नेत्र! कमलदंड से सुकोमल - सुहावने हाथ! गले में लटकती सच्चे मोतियों की झिल-मिलाती माला!

एक मनमोहक कल्पनाचित्र राजकुमारी की कोमल कल्पना में खड़ा हआ - मधुर-स्वर के मोहक कच्चे धागे से तारों में उसने प्रथम प्रीत की हीरक गाँठ बाँध ली! वीणा के सुरों को बहानेवाला विमलयश उसके हृदय का वल्लभ हो गया।

नया जीवन साथी मिला

२२१

विमलयश का तो यह नित्य क्रम हो गया था। वीणावादन जैसे उसकी आदत बन चुकी थी। मध्य रात्रि का मादक समय ही उसने पसंद किया था। संगीत के माध्यम से वह परम आनंद की अनुभूति करता था। उसे मालूम नहीं था कि न जाने ऐसी कितनी रातें उसे अकेले गुजारनी होगी बेनातट नगर में! एकांत व्यथित न कर दे - इसके लिए उसने वीणावादन का सहारा ले लिया था।

महाराजा गुणपाल के कानों में भी वीणा के मधुर स्वर टकरा गये एक रात में - और दूसरे ही दिन सबेरे महाराजा ने प्रसन्न मन से विमलयश को कहा :

‘विमलयश, तू तो सचमुच अद्भुत वीणावादन करता है!’

‘गुरुजनों की कृपा का फल है, राजन्!’

विमलयश के विनय ने राजा को विवश बना दिया था। विमलयश में अहंकार नहीं था। अहंकार को जलाकर अरिहंत की साधना में एकाग्र बना हुआ वह महान साधक था। राजा ने भी उतनी मीठास में कहा : ‘विमलयश, मेरा मन तेरा वीणावादन सुनने का इच्छुक है। यदि तू सुनाएगा तो हार्दिक आशीर्वाद मिलेंगे!’

‘जरूर... जरूर... महाराजा!’

राजकुमारी गुणमंजरी अपने पिता के पीछे आकर खड़ी हो गयी थी। रात को जिसकी स्वर माधुरी सुनकर... रम्य स्वप्नप्रदेश में जा पहुँची थी, उस सुरस्वामी को वह साक्षात् निहार रही थी। टकटकी बाँधे देख रही थी। उसका अद्भुत रूप देखकर उसे लगा कि उसकी कल्पना के रंग तो बिलकुल ही फीके हैं, इस सौंदर्यराशि के समक्ष तो! कलाकार की जीवंत आकृति उसे ज्यादा मोहक लगी। उसका हिलना-डूलना आँखों में उसे अपूर्व तेज उभरता दिखायी दिया। उसकी हर एक अदा पर वह झूम उठी - उसकी हर छटा पर वह नाच उठी। उसका मन-पंखी तो कभी का विचारों के तिनके चुनचुनकर ख्यालों का सुंदरसलोना महल रचाने लग गया था!’

मालती वीणा ले आयी।

विमलयश ने वीणा को उत्संग में रखा।

और... स्वरांकन की मधुरता को अद्भुत लय में ढालने लगा। अकथ्य मस्ती में सुरगंगा बहने लगी। देखते-देखते समूचा वातावरण नमी से भर गया...। हृदय की अतल गहराई में से उठती कोई संवेदना... स्वरकिन्नरी का रूप लेकर आ पहुँची थी। सभी की आँखों में करुणा के नीर-बिंदु बनकर उभरने लगे थे।

नया जीवन साथी मिला

२२२

राजकुमारी गुणमंजरी की हृदयनौका को, विमलयश की वीणा की लगन, दर्द के दरिये में खींच ले गयी थी।

फिर तो यह रोज का कार्यक्रम हो गया। राजा भी जी भरकर विमलयश का वीणावादन सुनता...। कभी-कभार राज्यसभा में भी विमलयश की वीणा के सुर झंकृत हो उठते हैं। लोग व सभाजन 'वाह-वाह' पुकारते थकते नहीं हैं...। राजा के साथ विमलयश की दोस्ती जम गयी। गुणमंजरी विमलयश के वीणावादन पर मोहित हो गयी थी...। विमलयश को इसकी भनक लग गयी थी...। उसकी अनुभवी आंखों ने गुणमंजरी के दिल में हिलोरें लेती भावनाओं को भाँप लिया था।

एक रात की बात है...।

विमलयश की वीणा में से 'शिवरंजनी' के दर्द-भरे सुर बहने लगे...।

अस्तित्व को बिसरा दे वैसे मोहक सुरों में सब कुछ डूब गया...। सर्द बना हुआ दर्द स्वर के अनुताप में पिघलने लगा।

राजकुमारी जग रही थी।

वीणा के सुरों ने उसको बेचैन बना दिया...। अपने कक्ष का छोटा-सा नक्काशी भरा झरोखा खोलकर वह देर तक सुनती ही रही उन स्वरों को, जो हवा के पंखों पर सवार हुए उसकी तरफ चले आ रहे थे।

उसका बेचैन मन-पंख फैलाये उड़कर कभी का विमलयश के महल में जा पहुँचा था! आकाश में चांदनी चारों दिशाओं में खिली थी... धरती ने रूपहली चादर ओढ़ ली थी।

विमलयश की वीणा आज जैसे पागल हो गयी थी। गगन के गवाक्ष में चांद को मिलने के लिए बेतहाशा होकर स्वर का पंखी पंख फैलाये ऊपर ही ऊपर चढ़ा जा रहा था।

विमलयश की नजर अचानक अपने झरोखे के नीचे गयी। उसे लगा कोई मानव आकृति खड़ी है...। 'अरे... अभी इस वक्त आधी रात गये कौन यहाँ खड़ा है...?' विमलयश ने गौर से देखा तो... 'ओह... यह तो राजकुमारी लगती है...।' वीणा रखकर विमलयश नीचे उतरा...। महल का दरवाजा खोलकर वह बाहर निकला।

'तुमने क्यों वीणा बजाना बंद कर दिया? तुम्हारी वीणा के सुर ही तो मुझे यहाँ तक खींच लाये हैं... जबरदस्ती खींच लाये हैं...।' श्वेतशुभ्र चाँदनी के

नया जीवन साथी मिला

२२३

प्रकाश में विमलयश ने देखा तो राजकुमारी के मासूम चेहरे पर प्रीत के लक्षण अंकित हो रहे थे।

‘तब तो मेरी वीणा ने तुम्हारी नींद चुरा ली... नहीं? राजकुमारी, माफ कर देना...’

‘नहीं... ऐसे माफी कैसे मिलेगी? वीणा ने केवल नींद ही चुरायी होती तो ठीक था... पर...’

राजकुमारी आगे बोलते-बोलते ठिठक गयी...। टकटकी बांधे विमलयश को निहारने लगी! फिर एक गहरी साँस छोड़ते हुए उसने अपनी निगाहे ज़मीन पर बिछा दी...!

‘यह मेरी खुशनसीबी है राजकुमारी कि मेरी वीणा के सुरों ने किसी के दिल पर दस्तक दे दी...। किसी ने उन भटकते सुरों को अपने भीतर सहज लिया! परंतु...’

‘परंतु क्या परदेशी?’

‘इस समय यहाँ पर आपका इस तरह आना...’

‘मैं भी जानती हूँ... उचित नहीं है, पर क्या करूँ? दिल की लगी कभी गैरवाज़िब भी करने को मजबूर बना देती है! कौन इसे समझाए! फिर भी... जाती हूँ... खैर! पर मेरे परदेशी... अब कभी मुझे ‘कोई’ मत मानना। मैंने केवल वीणा के स्वरों को ही नहीं पकड़ा है... अपितु वीणावादक को भी अपने दिल की दुनिया में कैद कर लिया है!’

राजकुमारी हिरनी सी दौड़ती हुई अपने महल में चली गयी।

विमलयश ने ऊपर आकर वापस वीणा को झंकृत की। सुरों का काफिला लय और झंकार का समा बाँधे बहने लगा...। रात का तीसरा प्रहर ढलने लगा था...। शाम के जले दिये धीरे-धीरे मद्धिम हुए जा रहे थे...। वीणा के सुर भी सिमटते-सिमटते शांत हो गये। सुरों की अनुगुंज अब भी आसपास को आंदोलित बना रही थी।

विमलयश ने वीणा को यथास्थान रख दिया और ज़मीन पर ही वह लेट गया। अक्सर वह इतनी रात गये ही सोता था...। उसका मन अव्यक्त व्यथा से मचल रहा था...। कुछ कसक-सी उठ रही थी भीतर में! मन ही मन विचारों की आँधी छाने लगी।

‘बेचारी... भोली राजकुमारी! वह कहाँ यह भेद जानती है कि मैं भी उसके

नया जीवन साथी मिला

२२४

जैसी राजकुमारी हूँ...? मेरे पुरुष-रूप के साथ वह प्यार का रिश्ता बाँध बैठी है? स्त्री का दिल इसी तरह खिंच जाता है... परदेसी के साथ प्रीत के गीत रचा बैठती है... मैं भी क्या करूँ?' मैं अभी मेरा भेद खोलूँ भी तो कैसे? मुझे तो 'विमलयश' के रूप में ही यहाँ रहना होगा। अमरकुमार के आने के बाद ठीक है मेरा भेद खुल जाए तो भी चिंता नहीं...। तब तक तो राज को राज ही रखना पड़ेगा! राजकुमारी को खिंचने दूँ प्रेम के प्रवाह में? बहने दूँ प्रीत की पागल नदी में...! हाँ... मैं उसे अपने देह से दूर रखूँगी।'

विमलयश के साथ जैसे अद्भुत कलाएँ थी, वैसी उसकी बुद्धि भी विलक्षण एवं विचक्षण थी।

ज्ञानरुचि तो उसके साथ जन्म से जुड़ी हुई थी। दया-करुणा एवं परोपकार-परायणता उसे दूध के साथ मिल हुए गुण थे।

उसके पास चुंगी का धन काफी मात्रा में इकट्ठा होने लगा... उसने बेनातट नगर में गरीब, दीन दुःखी और असहाय लोगों की सार-सम्हाल लेना प्रारंभ किया। उदारता से सबको सहायता करने लगा। इस कार्य में उसे मालती की काफी मदद मिल जाती थी... चूँकि वह पूरे नगर से परिचित थी। तीन बरस में तो पूरे बेनातट नगर में कोई भी व्यक्ति गरीब नहीं रहा...। विमलयश ने जी भरकर लोगों को धन दिया।

दूसरी तरफ विमलयश ने पाया कि राज्य के अधिकारी वर्ग को पूरी तनख्वाह नहीं मिलती थी। विमलयश ने सब के वेतन बढ़वा दिये। खुले हाथों सबको दान देने लगा। सबके साथ प्यार भरा व्यवहार तो उसका स्वभाव ही था।

सारे नगर में-पूरे राज्य में विमलयश का उज्ज्वल यश फैलने लगा। सबकी जबान पर विमलयश के गुण गाये जाने लगे। राजसभा में विमलयश की प्रशंसा होती थी। राजकुमारी अपने हृदयवल्लभ की प्रशंसा सुनकर झूमती है... खुश हो उठती है। उसका प्रेम दिन-ब-दिन गहरा और गाढ़ हो रहा था।

चुंगी से मिलनेवाला सारा धन वह गरीबों को बाँट देता है। राजपुरुषों को भी उदारता से भेंट-सौगातें देते रहता है।

विमलयश के दिल को जीतने के लिए गुणमंजरी आतुर थी। उसके चरणों में अपना प्रेम निछावर करने के लिए वह तत्पर थी। ऐसा करने में तो अपनी कुरबानी देने को भी तैयार थी।

नया जीवन साथी मिला

२२५

समय-समय पर गुणमंजरी विमलयश से मिलती रहती और तत्त्वचर्चा भी करती। एक बार मज़ाकिया लहजे में विमलयश ने गुणमंजरी को पूछ लिया : 'क्या इस तरह मुझसे मिलने में तुझे डर नहीं लगता? मेरे साथ इस तरह बातें करते हुए महाराजा ने देख लिया तो?'

तब गुणमंजरी ने बेझिझक जवाब दिया था।

'यदि मेरे प्रियतम का प्रेम सच्चा होगा, तो फिर मुझे डर किस बात का? बड़ी से बड़ी कठिनाई भी लॉघ जाऊँगी यदि तुम्हारा मुझे साथ मिले तो!'

'पर कभी प्रेम के सागर में कमी आ गयी तो?' कुमार... प्रेम के सागर में कभी कमी आती ही नहीं... प्रेम तो **सदा-सर्वदा प्रवर्द्धमान** होता है... प्रेम आकाश से भी ऊँचा होता है... उसे तो वज्र से भी नहीं काटा जा सकता।'

विमलयश गुणमंजरी का जवाब सुनकर प्रसन्न हो उठता है। प्रेम और वासना के बीच का अंतर गुणमंजरी भली-भाँति जानती है, यह बात जानकर विमलयश आश्चर्य था।

नवसृष्टि के, नवजीवन के, शांत-सुंदर और सुमधुर वातावरण में विमलयश अपने पूर्व जीवन के कटु प्रसंगों को धीरे-धीरे विस्मृति के भँवर में डालता रहता है। फिर भी अमरकुमार की स्मृति अविकल बनी रहती है...। अमरकुमार की प्रतीक्षा की ज्योत सदा जलती रहती है। बेनातट नगर में एक के बाद एक बरस गुज़र रहे हैं...। कभी वह नगर से ऊब जाता है, तो दूर-दूर ग्राम्य प्रदेशों में चला जाता है...। वहाँ भी वह अपनी स्नेह सौरभ को चारों ओर फैला देता है...। ग्रामीण प्रजा की गरीबी दिल खोलकर दान देकर दूर करता है। सुरम्य हरियाली... हरे-भरे खेत... कलकल बहते हुए झरने... वनफुलों की मदिर-मदिर गंध... प्रकृति के इन सुहावने दृश्यों को वह जी-भर पीता है। प्रकृति की गोद में उसका अंग-अंग पुलकित हो उठता है। कभी उस अन्मुक्त, स्वच्छ सुंदर वातावरण के आगे राजमहल का अवरुद्ध जीवन उसे तुच्छ प्रतीत होता है।

इस तरह विमलयश की कीर्ति-कौमुदि बेनातट के समग्र राज्य में फैली ही, साथ ही साथ आसपास के राज्यों में भी उसकी प्रशंसा होने लगी। उसका यश फैलने लगा। सावन के भरे-भरे बादलों की भाँति विमलयश की उदारता बरसती रही। दया-करुणा का प्रवाह बहता रहा।

साथ ही साथ राजकुमारी गुणमंजरी का स्नेह भी बढ़ता ही जा रहा था।

चोर ने मचाया शोर

२२६

कौमार्य के तेज से देदीप्यमान गुणमंजरी के दिल के सरोवर में प्रीत का कमल खिलता हीं जा रहा था। उसकी शतदल पंखुरियों में आंतरसखत्व की सुरभी महक रही थी। एक दिन उसने विमलयश से कहा :

‘कुमार, क्या प्रेम यह मनुष्य के अस्तित्व की धुरी नहीं है? जीवन का सनातन सत्य नहीं है? अनंत की यात्रा के प्रति गति नहीं है? अचल, अमल, अविकल की यात्रा का श्रेष्ठ साधन नहीं है?’

और तब विमलयश को... उसके भीतर में रही हुई सुरसुंदरी को अमरकुमार के साथ का शादी से पूर्व का वार्तालाप याद आ गया। स्नेह के सुकुमार रोमांच को जाननेवाली उसकी देह उस स्मृति से थरथरा गयी! तब गुणमंजरी ने विमलयश की आंखों में आँखें डालते हुए कहा था :

‘विमल... चलो... अपन एक साथ जीने का वादा करें... संग रहने का संकल्प करें... स्वीकार है तुम्हें?’

तब विमलयश की आँखें छलछला उठी थीं। ऐसी बातें मैंने भी अमर से कही थी! अमर ने मुझसे वादा किया था... वचन दिया था... पर!!!

उसने दूर-सुदूर गगन में फैले हुए अंतहिन बादलों पर निगाह लगायी और कहा :

मंजरी, देख आकाश में अष्टमी का चांद जैसे कि पूनम को पाने की आशा में जी रहा है... घूम रहा है...?’

‘सही बात है तुम्हारी... उसकी आशा सफल होगी ही!’

विमलयश को नंदीश्वर द्वीप पर सुने हुए महामुनि के वचन याद आ गये :

‘तेरी आशा बेनातट नगर में फलेगी!’ और उसने सोचा : क्या आशाएँ फलती हैं इस संसार में? फिर भी आशाओं का अवलंबन लिये बगैर हम कहाँ रहते हैं?’

इतने में गुणमंजरी की घुँघरू-सी आवाज उसके कानों में टकरायी :

‘कुमार, दिल-देह और आत्मा से तुझे ही जीवन-साथी माना है... इतना याद रखना!’





बरस पर बरस गुज़रते हैं।

अमरकुमार के आगमन का कोई समाचार नहीं मिल रहा है। न ही और कोई साधन है कि जिससे अमरकुमार का अता-पता मिल सके। विमलयश के मन में कभी नैराश्य छा जाता है। कल्पनाओं का दर्पण धूँधलाने लगता है... पर अवधिज्ञानी महर्षि के वचन याद करके वह मन को धीरज देता है... 'आएँगे... ज़रूर! और यहाँ पर आएँगे! जितनी जुदाई की घड़ियाँ गिननी होंगी, वे तो गिननी ही पड़ेगी...। सुबह होने से पहले कभी-कभी अँधेरा और भी घना हो जाता है!'

श्री नवकार मंत्र के ध्यान में और परमात्मा के पूजन में उसकी आत्मा अपूर्व आदंन की अनुभूति प्राप्त करती है। गुणमंजरी के साथ जुड़ता हुआ... गाढ़-प्रगाढ़ बनता हुआ सखत्वभाव उसको भीतरी तृप्ति से कभी-कभी भराभरा बना देता है। प्रजा के असीम प्यार और आदर के नीर उसे हमेशा तरोताज़गी देते रहते हैं...। प्रकृति का सौंदर्य, वीणा के तारों में से उठती स्वर-लहरी... इन सबमें वह डूब जाता है...। ध्यान में डूबकर आध्यात्मिकता का आनंद लूटता है!

पिछले पाँच-सात दिन से विमलयश राजसभा में गया नहीं था। उस अरसे में एक दिन मालती बाहर से समाचार लायी :

'महाराजकुमार, समूचे नगर में हायतोबा मच गया है।'

'क्यों, क्या हुआ है?'

एक चोर जगह-जगह पर चोरी कर रहा है...। किसी के पकड़ने में आ नहीं रहा है!

'नगर-रक्षक नहीं पकड़ सके क्या चोर को?'

'नहीं... बिलकुल नहीं, जब नगररक्षक नहीं पकड़ पाये चोर को... तब प्रजाजनों ने राजसभा में पुकार की... तब अपने ही नगर का एक सेठ चोर पकड़ने के लिए तैयार हुआ... 'रत्नसार' उसका नाम है!'

'क्या पकड़ लिया उसने चोर को?'

चोर ने मचाया शोर

२२८

‘अरे! वह क्या पकड़ेगा? पकड़ने गया... तो खुद ही लुट गया!’

‘क्या कह रही है तू? कैसे हुआ?’ विमलयश को बात सुनने में मज़ा आ रहा था।

‘कुमार, उस चोर को मालूम हो गया कि रत्नसार ने मुझे पकड़ने की तैयारी की है... इसलिए चोर ने रत्नसार को ही लूटने की योजना बना डाली।

वह रत्नसार की हवेली में पहुँचा व्यापारी का भेष बनाकर! रत्नसार से उसने कहा: ‘मैं परदेशी व्यापारी हूँ... रत्नों को खरीदने के लिए आया हूँ...। रत्नसार ने उसे क्रीमती रत्न-जवाहरात वगैरह दिखाया। उसका मूल्य बताया। चोर ने कहा : मैं कल सवेरे ही पैसे लेकर आऊँगा और रत्न खरीद लूँगा।’ उसने हवेली का... तिजोरी का भली-भाँति निरीक्षण कर लिया।

वह चला गया अपने घर। रात्रि में रत्नसार श्रेष्ठी तो चोर को पकड़ने के लिए नगर के दरवाजे पर जाकर खड़ा रहा। इधर चोर रत्नसार की हवेली में पहुँच गया। हवेली के पिछवाड़े की दीवार में संध लगाकर वह भीतर घुस गया। तिजोरी तोड़ी और रत्नों का डिब्बा उठाया। जवाहरात ले लिया। और तो और... रत्नसार के पहनने के सभी कपड़े भी साथ उठा लिये और वह चला गया अपने ठिकाने पर!

इधर रत्नसार घूम-फिर कर थका-हारा वापस घर आया तो चौंक उठा... देखा तो तिजोरी टूटी हुई थी। बेचारा फूट-फूटकर रोने लगा। सुबह में राजसभा में जाकर महाराजा के समक्ष शिकायत की। विमलयश ने कहा : ‘चोर काफी बुद्धिशाली प्रतीत होता है? ‘कुमार, चोर कोई साधारण बुद्धिमान नहीं है। ‘उसकी बुद्धि असाधारण है...! राजपुरोहित की तो क्या दशा बिगाड़ी है उसने?’

‘वह कैसे?’

‘जब रत्नसार चोर को नहीं पकड़ सका... तब राजपुरोहित ने भरी राजसभा में प्रतिज्ञा की कि मैं चोर को पकड़ूँगा!’

बस चोर को भी भनक लग गयी इस बात की किसी भी तरह...! उसके बारे में तलाश करके जानकारी प्राप्त कर ली : ‘पुरोहित कहाँ जाता है, क्या करता है?’ पुरोहित को नगर के बाहर देवकुलिका में जाकर जुआँ खेलने की आदत थी। चोर भी पहुँच गया देवकुलिका में! दूसरे जुआरियों के साथ खुद भी बैठ गया खेलने के लिए! पुरोहित भी आ पहुँचा था खेलने के लिए। चोर

चोर ने मचाया शोर

२२९

मौका देखकर खेलने लग गया, पुरोहित के साथ। पहले तो वह जान बूझकर हारता रहा... इधर पुरोहित को अपनी छोटी-छोटी जीत होती देखकर ताव चढ़ने लगा। वह बड़ी-बड़ी बाजी लगाने लगा। चोर ने बाजी जीतना जो चालू किया... बस, जीतता ही रहा! पुरोहित का सब कुछ जीत लिया! पुरोहित ने ताव में आकर अपनी रत्नमुद्रिका भी लगा दी दाव पर! वह भी चोर जीत गया!

इतने में पुरोहित को राजसभा में से बुलावा आया, तो वह राजसभा में गया। इधर चोर पहुँच गया पुरोहित के घर पर! पुरोहित की पत्नी से कहा :

‘मैं पुरोहित का खास दोस्त हूँ... मेरी बात सुन! पुरोहित को राजा ने कैद कर लिया है। क्यों किया है? मुझे पता नहीं है, पर मुझे पुरोहित ने भेजा है। अभी राजा के आदमी आएँगे और तुम्हारी घर की सारी संपत्ति छीन लेंगे। तू एक काम कर। जितना भी किमती सामान हो... जवाहरात रत्न... वगैरह हो वह मुझे दे दे... मैं अपने घर में सुरक्षित स्थान पर छिपा दूँगा। देख, तुझे भरोसा हो इसलिए पुरोहित ने उसकी यह रत्नमुद्रिका भी मुझे दी है...।’ पुरोहित की पत्नी ने उसके हाथ में रत्नमुद्रिका देखी। उसे बात सही लगी।

पुरोहित की पत्नी ने घर की तमाम संपत्ति चोर को दे दी...। चोर वह लेकर वहाँ से नौ दो ग्यारह हो गया।

पुरोहित जब इधर घर पर गया तो उसकी पत्नी ने पूछा : ‘आप जल्दी छूट गये...? क्या गुनाह हो गया था?’

‘कैसा गुनाह... कैसी बात? क्या बक रही है तू?’ ‘पर वह आपके दोस्त आये थे रत्नमुद्रिका लेकर...?’ कौन दोस्त?’ और पुरोहित चौंका! जब उसने सारी बात जानी तो बेचारा सिर पटककर रह गया। उसने राजसभा में आकर महाराजा से सारी घटना बतायी... सारी राजसभा हँस-हँस कर लोट-पोट हो गई! ‘वाह बड़ा मज़ाकिया चोर लगता है यह तो... होशियार भी है! अच्छा, फिर क्या हुआ?’ विमलयश की जिज्ञासा बढ़ रही थी।

‘फिर चोर को पकड़ने का इरादा ज़ाहिर किया, धनसार सेठ और सल्लू नाई ने! उस चोर ने मालूम कर लिया कि धनसार सेठ और सल्लू नाई उसे पकड़ने के लिए निकले हैं! वह भेस बदल दोपहर में पहुँच गया हजामत करवाने के लिए सल्लू नाई के घर पर! सल्लू ने बढ़िया हजामत बनायी और हजामत के पैसे माँगे। चोर ने जब टटोली... पैसे नहीं मिले तो उसने सल्लू से कहा : ‘देख, आज मैं घर से निकला तो पैसे लाना ही भूल गया, तू ऐसा

चोर ने मचाया शोर

२३०

कर... अपने बेटे को मेरे साथ भेज, मैं उसे पैसे दे देता हूँ।'

नाई ने अपने बेटे को भेज दिया उसके साथ। चोर उसके बेटे को लेकर धनसार सेठ की दुकान पर गया। धनसार सेठ की कपड़े की बड़ी दुकान थी। वहाँ जाकर उसने क्रीमती कपड़ा खरीदा... और फिर सेठ से कहा :

'सेठ, मैं कपड़ा घर पर रखकर पैसे लेकर तुरंत आता हूँ... तब तक मेरा बेटा यहाँ बैठा है' नाई के बेटे को वहाँ पर बिठाकर चोर कपड़े की गठरी लेकर अपने स्थान पर चला गया। गया सो गया। इधर सल्लू का बेटा घर पर नहीं आया तो सल्लू उसे खोजने के लिए निकला। उसने बाजार में सेठ की दुकान पर अपने बेटे को बैठा हुआ देखा। बेटा भी बाप को देखकर लिपट गया बाप से और रोने लगा...!'

जब सेठ को सारी बात का पता लगा तो उसकी छाती फटने लगी... 'अरे... सल्लू वह चोर तो मुझे लूट गया!'

'सेठ तुम्हें अकेले को थोड़े ही लूटा है। मुझे भी लूट गया।'

'आया बड़ा लुटनेवाला! मुख, तेरे तो खाली हजमात के पैसे गए... मेरा तो हज़ारों रूपयों का कपड़ा वह ले गया!'

विमलयश तो पेट पकड़कर हँसने लगा!

'वाह भाई वाह! मालती, तेरा यह चोर गज़ब का खिलाड़ी है... नाई से हजामत करवाई और उसकी भी हजामत कर डाली! फिर क्या हुआ? और कौन आया उसे पकड़ने के लिए?'

'एक परदेशी सौदागर और वह कामपताका वेश्या!'

'हाँ, वेश्याएँ बड़ी चतुर होती हैं इन मामलों में! पकड़ लिया होगा उसने चोर को!'

'क्या पकड़ेगी वह? मक्खी पकड़ेगी... मक्खी! अरे... क्या हाल हुए हैं उसके तो?'

'अच्छा, तो वह भी ठगी गयी क्या?'

'अकेली नहीं... परदेशी सौदागर के साथ... दोनों ठगे गये!'

'सुना भाई सुना... सारी वारदात...!'

उस चोर को मालूम पड़ गया कि उसे पकड़ने का बिड़ा किसने उठाया है। उसने एक व्यापारी का भेस बनाया। सुंदर क्रीमती कपड़े पहने... और

चोर ने मचाया शोर

२३१

कामपताका के घर पर पहुँचा। वेश्या तो पैसेवाले इस नये मुर्गे को देखकर खुश हो उठी। उसने बड़े प्रेम से उसका आदर किया। उसे बिठाया। ताम्बूल दिया। चोर ने कहा : 'कामपताका, नगर के बाहर एक परदेशी सौदागर आया है... धनवान है... जवान है... यदि तू कहे तो मैं उसे यहाँ पर ले आऊँ! तू मालामाल हो जाएगी!'

वेश्या तो खुश-खुश हो उठी! चोर गया सौदागर के पास। सौदागर से कहा :

आप परदेशी हैं... बड़े व्यापारी हैं... और इस तरह नगर के बाहर ठहरे हैं, वह अच्छा नहीं लगता! मैं इसी नगर का व्यापारी हूँ...। मेरी हवेली पर पधारें...।' वह सौदागर अपने परिवार को लेकर चोर के साथ वेश्या की हवेली पर आया। सबकी अच्छी खातिरदारी की। फिर चोर ने सौदागर को आराम करने को कहकर स्वयं सौदागर का भेस बदलकर पहुँचा उस वेश्या के पास। उसने भेस और आवाज़ ऐसी बदली कि वेश्या भाँप तक न सकी। वेश्या ने उसे नया आगंतुक सौदागर समझा। उसे आदर से बिठाया। चोर ने इधर-उधर की बातें करते हुए बड़ी मधुरता से कहा :

'कामपताका, मुझे राजसभा में जाकर व्यापार हेतु राजा से मिलना है...। मेरे सारे कीमती आभूषण पेटी में बंद है... हालाँकि पेटी हैं तेरे घर पर... पर यदि तेरे आभूषण बाहर हों, तो जरा पहनने को दे दे...। अभी गया अभी आया। बाद में फिर मौज मनायेंगे। ढेर सारे रुपये लेकर आया हूँ, बेनातट में मौज मनाने को!'

वेश्या झाँसे में आ गयी। उसने अपने बेशक्रीमत गहने निकाल कर दे दिये उसे। वे गहने पहनकर चोर पहुँचा असली सौदागर के पास। जाकर बोला : 'मैं महाराज के पास जा रहा हूँ... आपके पाँच सुंदर घोड़े ले जाना चाहता हूँ। महाराजा को बताकर भारी मूल्य तय कर लूँगा।' सौदागर ने खुश होते हुए ज्यादा क्रीमत के लालच में आकर पाँच अश्व दे दिये! चोर घोड़े व आभूषण लेकर गया, सो गया...! वापस आया ही नहीं! इधर रात हुई तो भी सेठ वापस नहीं आये... वह सौदागर वेश्या के पास आया और पूछने लगा :

'सेठ क्यों नहीं आये अभी तक?'

'कौन सेठ? किसकी बात कर रहे हो? आप कौन हैं, जनाब?' वेश्या ने चमकते हुए पूछा।

चोर ने मचाया शोर

२३२

उसने कहा : 'मैं परदेशी सौदागर हूँ...! इस हवेली के मालिक मुझे यहाँ पर मेहमान बनाकर ले आये थे।'

'हवेली के मालिक? होश में तो हैं न आप! हवेली की मालिक मैं हूँ कामपताका! वह तो मेरे पास आकर मेरे गहने भी ले गया है... मैया री... मैं तो लुट गयी...।'

'ओह बाप रे... मेरे पाँच श्रेष्ठ घोड़े भी गये...!' सौदागर छाती पीटने लगा।

दोनों एक दूसरे का चेहरा देखते रहे...।

विमलयश का हँसी के मारे बुरा हाल था। जबरदस्ती अपने आप पर काबू पाते हुए उसने कहा : 'मालती, नगर में इतना हंगामा मचा हुआ है और मुझे तो कुछ मालूम भी नहीं है।'

कहाँ से मालूम होगा? तुमने तो सात दिन से बाहर ही कदम कहाँ रखा है जो। तुम तो बस दिन-रात वीणा के पीछे पागल हुए हो... उधर उस राजकुमारी को भी पागल बना डाला है।'

'चुप मर... कोई पागल हो तो मैं क्या करूँ? मैं उसे मजबूरन पागल बना रहा हूँ क्या? तू अपने चोर की बात कर... हाँ, तो... बाद में क्या हुआ? चोर पकड़ा गया या नहीं?'

'चोर पकड़ा जाए? अरे... उसे पकड़ने के लिए बगीचे के चौकीदार भीमाबहादुर ने बीड़ा उठाया। भीमा तो सचमुच भीम ही है। बड़ा पहलवान है। मैं उसे जानती हूँ। चोर को इस बात का पता लग गया। उसने जोगी का रूप रचाया। सिर पर बड़ी भारी जटाएँ... और चेहरे पर लंबी सफेद दाढ़ी... गेरुए कपड़े पहने। बगीचे में जा पहुँचा... भीमा वैसे भी बेचारा भगत आदमी है। जोगी को देखा तो दौड़ता हुआ गया... स्वागत किया। बाबाजी से प्रार्थना की : 'बाबा मेरे घर पर भोजन करने के लिए पधारेंगे?' बाबा ने आँखे बंद की... ध्यान लगाकर कहा : 'भीमा... तेरे घर पर भोजन करने नहीं आ सकता मैं!'

'क्यों बाबाजी?'

'तेरी माँ जिंदा डायन है... वह रात को सोये हुए आदमी का खून चूस लेती है... तुझे भरोसा नहीं होता तो आज रात को पास में डंडा लेकर सोने का ढोंग करते हुए खटिया पर लेटे रहना।' भीमा कुछ दुःखी... कुछ शंका-संदेह भरे दिमाग से चला गया। भीमा की माँ आयी बाबाजी को आमंत्रण देने

चोर ने मचाया शोर

२३३

के लिए भोजन का। बाबा ने उससे कहा : 'तेरा बेटा तो शराबी है शराबी! तेरे यहाँ कैसे भोजन लूँ? तुझे परीक्षा करनी हो तो आज रात जब वह सोया हुआ हो तब जाकर उसका मुँह सूँघना।' बुढ़िया बेचारी भारी मन से चली गयी। इधर भीमा की पत्नी आयी महाराज के दर्शनार्थ। उसने भी महाराज को भोजन के लिये आमंत्रण दिया।

बाबा ने कहा : 'तेरे घर में तो पैर रखना पाप है...।' 'क्यों बाबाजी, ऐसी बुरी बात क्यों करते हो?' 'और नहीं तो क्या करूँ? तेरा पति खुद उसकी माँ के साथ... विश्वास नहीं हो तो रूबरू देख लेना', सुनकर भीमा की पत्नी को गुस्सा आ गया।

रात्रि में बाबाजी भीमा के घर के पास ही एक पेड़ के नीचे अपना डेरा लगाकर जम गये। आधी रात गये घर में बड़ा हंगामा मच गया। बुढ़िया बेटे का मुँह सूँघती है..., इधर बेटा घबराया... वह सोचता है 'ज़रूर यह डायन है...' वह डंडा लेकर खड़ा हो गया...। उधर भीमा की पत्नी भी हाथ में लकड़ी लेकर छुपी हुई थी... वह भी दौड़ती हुई आ गयी... और सासू को मारने लगी... तीनों लड़ते-झगड़ते हुए घर के बाहर रास्ते पर आ गये। इधर मौका देखकर बाबाजी घुस गये घर में... और जो कुछ भी था घर में, लेकर अंतर्धान हो गये!

जब भीमा बाबाजी को खोजता हुआ उनके स्थान पर पहुँचा तो बाबाजी का अता-पता नहीं था। खोजते-खोजते थक गया। घर में गया तो सब कुछ चुरा लिया गया था... बेचारा सिर पीटकर रह गया।'

विमलयश इतना हँसा कि उसकी आँखों में आँसू आ गये...।

'मालती... वह इस नगर में अब इन बाबा लोगों से भी बचना होगा...। अच्छा तो यह हुआ कि तेरे आदमी ने बीड़ा नहीं उठाया... वर्ना...'

'हूँ... वह क्या बीड़ा उठायेगा? कुमार, उसे तो पान के बीड़े दे दो, चबा जाएगा...।'

'मालती, फिर क्या हुआ? कोई आगे आया कि नहीं चोर को पकड़ने के लिए।'

'कुमार, आगे तो बहुत सारे लोग आये... पर जो आये सभी लुट गये। नगर में तो हाहाकार मच गया है। आखिर महामंत्री ने गली-गली में सैनिकों के दस्ते लगा दिये। नगर के चारों दरवाजों पर शस्त्रसज्जित सैनिकों को

राजा भी लुट गया

२३४

बिठा दिया और खुद नगर के चौराहे पर तंबू गाड़कर बैठे। रात के प्रथम प्रहर में उधर से एक ग्वालिन-निकली सिर पर दही की मटकी उठाए हुए। महामंत्री ने ग्वालिन को बुलाकर पूछा : 'क्या है तेरी मटकी में?' ग्वालिन ने चुपचाप मटकी दिखायी...। महामंत्री ने देखा तो अंदर शराब भरी थी... महामंत्री की जीभ लपलपा गयी। उन्होंने पैसे देकर मटकी ले ली। खुद महामंत्री ने जमकर शराब पी और सैनिकों को भी पिलायी...। थोड़ी देर में सबपर बेहोशी का दौर छाने लगा। शराब में बेहोश करने की दवाई डाली हुई थी। सभी बेहोश हो गये...। ग्वालिन के भेष में रहे उस चोर ने महामंत्री को हथकड़ी पहना दी...। महामंत्री के सारे कपड़े निकाल दिये। मुँह पर महामंत्री के ही जूते रखे। ऊपर से गंदगी की... सब सैनिकों के कपड़े उतारे... और वहाँ से रवाना हो गया।

सुबह हुई। महाराजा खुद महामंत्री की तलाश करने निकले। चौराहे पर आये... तंबू में गये... देखा तो महाराजा खुद हँस पड़े थे। साथ के आदमियों ने तुरंत महामंत्री को जगाया... महामंत्री जगे। अपनी दुर्दशा देखकर शर्म के मारे नीचा मुँह किये बैठे रहे।'

'मालती, इस चोर ने तो गजब ढा रखा है।'

'यही बात कर रही हूँ न तूम से। महाराजा को बड़ी भारी चिंता हो रही है...। मुझे तो लगता है... अब महाराजा स्वयं ही उस चोर को पकड़ने के लिए निकलेंगे और तब तो चोर पर कयामत आयी समझो।'

'इस चोर को बुद्धिबल से ही पकड़ा जा सकता है...। या फिर विद्याशक्ति से। बाकी मुकाबला करके ऐसे चोर को पकड़ना नामुकिन है। ठीक है... अब तू सो जा, रात बहुत बीत चुकी है...।'

'और तुम वीणा बजाओगे?'

'वीणा बजाने का तो शौक लग चुका है।'

'तुम्हें बजाने का शौक लगा है... उधर उस राजकुमारी को सुनने का शौक लगा हुआ है न। क्या जोड़ी मिली है!'

मालती मुँह में आँचल दबाती हुई अपने कमरे में दौड़ गयी...!!!



३५. राजा भी लुट गया

प्राभातिक कार्यों से निपटकर विमलयश आज राजमहल में जाने की सोच रहा था। सात-आठ दिन से वह राजसभा में या राजमहल में गया ही नहीं था। मालती से चोर के कारनामों सुनकर वह स्तब्ध था। इसी बारे में वह महाराजा से मिलना चाहता था।

मालती विमलयश के लिए दुग्ध पान तैयार करके बगीचे में अपने घर चली गई थी। घर का काम आननफानन में निपटकर सीधी राजमहल में दौड़ी थी। चोर का नया उपद्रव क्या हो रहा है - यह जानने के लिए वह बेकरार हो उठी थी।

चोर का ताजा पराक्रम सुनकर मालती की साँस अटक गयी थी। उसका कलेजा फटा जा रहा था। वह हक्की-बक्की रह गयी। वह सीधे दौड़ते हुए आयी विमलयश के पास... और आँखों में आँसू बहाती हुई उसके सामने ज़मीन पर लुढ़क गई मालती के हालात देखकर विमलयश को लगा कि ज़रूर कोई बड़ा अनर्थ हो गया है। उसने मालती से पूछा :

‘मालती क्यों इतनी रो रही है? क्या बात है? क्या तेरा पति लुट गया क्या?’

‘नहीं, ओ कुमार..! पति लुट जाता तो भी क्या चिंता थी? क्या एतराज था? यह तो खुद महाराजा लुट गए।’

‘ओह, पर तू इतना क्यों रो रही है...?’

‘कुमार... सारी बात सुनकर तुम भी रो पड़ोगे।’

‘क्या हुआ... कुछ बता तो सही!’

‘क्या कहूँ, कुमार... कुछ सूझता नहीं है...’ कहकर मालती फफक पड़ी। विमलयश की बेचैनी बढ़ती जा रही थी... ‘तू मत रो... पर कुछ मुझे बता तो सही...’

‘कुमार... राजकुमारी गुणमंजरी का अपहरण हो चुका है... शायद चोर ही उठा ले गया है।’

‘क्या कहती है तू...?’ विमलयश खड़ा हो गया। मालती के दोनो कंधे पकड़कर उसे झकझोरा:

राजा भी लुट गया

२३६

‘क्या सच बता रही है या मज़ाक कर रही है?’

‘कुमार, तुम्हारे साथ क्या मज़ाक करूँगी? तुम से मैं कब झूठ बोली हूँ? बिलकुल सही बात है। राजमहल में तो करुणता छा गई है... सभी रो रहे हैं। किसी को कुछ सूझ नहीं रहा है।’

‘पर मालती, यह सब हुआ कैसे? कब हुआ? कुछ मालूम है तुझको? विमलयश ने अस्वस्थ होकर मालती से सवाल पूछ डाले।

‘हाँ... मैं सारी बात जानकर ही यहाँ पर दौड़ आई हूँ। राजमहल से सीधी यहाँ चली आई हूँ। सुनो वह सारी घटना।

मालती विमलयश के समीप बैठ गयी।

‘गत रात्रि में महाराजा स्वयं चोर को पकड़ने के लिए अपने चुनिंदा सैनिकों के साथ निकले थे। उन्होंने किले के चारों द्वार पर सशस्त्र सैनिकों को तैनात किया था... और खुद पूर्व दिशा के मुख्य दरवाज़े पर हथियारों से लैस होकर खड़े रहे थे।

पहला प्रहर पूरा होने की तैयारी थी, कि एक आदमी गधे पर कपड़े की गठरी डालकर पूर्व दिशा के दरवाज़े से नगर की तरफ आता दिखाई दिया। महाराजा ने पूछा :

‘कौन है तू? कहाँ जा रहा है इस वक्त?’

‘महाराज, मैं आपका ही सेवक हूँ... रजक-धौबी हूँ, महारानी साहिबा के कपड़े मैं ही धोता हूँ।’

‘पर अभी इतनी रात गए कहाँ जा रहा है?’

‘कपड़े धोने के लिए, राजन!’

‘पागल हो गया है क्या? आधी रात को कपड़े धोने जाता है?’

‘महाराज क्या करूँ? महारानी साहिबा तो पद्मिनी स्त्री हैं, उनके कपड़ों की गंध से खिंचकर दिन को भँवरे मँडराने लगते हैं... कपड़े धोने नहीं देते... इसलिए मैं रात को ही उनके कपड़े धोता हूँ। सरोवर के किनारे पर चला जाऊँगा... और शांति से कपड़े धोऊँगा...।’ धौबी ने दोनों हाथ जोड़कर राजा से निवेदन किया।

‘तेरी बात सही है... पर तुझे पता है कि आठ-आठ दिन से चोर का उपद्रव मचा हुआ है?’

राजा भी लुट गया

२३७

‘कृपावतार, आप जैसे मालिक हैं... दरवाज़े पर खड़े हुए... फिर मुझे डर काहे से? गधे की पीठ थपथपाते हुए धोबी बोला :

‘ठीक है, जा सरोवर के किनारे! पर यदि चोर उधर आए या तुझे दिखाई दे तो जोर से चिल्लाना, मैं घोड़े पर बैठकर तुरंत ही वहाँ पहुँच जाऊँगा।’

‘आपकी कृपा है महाराजा, ज़रूर, चोर के दिखते ही मैं आवाज़ लगाऊँगा। आप तुरंत चले आना... चोर आज तो पकड़ा ही जाएगा। हाँ, उसे शायद मालूम हो गया कि मैं महारानी के क्रीमती कपड़े धोने के लिए सरोवर के किनारे जाता हूँ... तो वह इन कपड़ों की लालच में भी आ जाएगा। आपका कहना वाज़िब है। आज तो उस चोर के सिर पर काल सवार होने जा रहा है। चल चाचा, चल...’ यों कहकर गधे को थपथपाते हुए धोबी सरोवर की तरफ चल दिया।

महाराज घुड़सवार करते हुए चारों दिशा के दरवाज़े पर जाकर पूछताछ कर आये।

रात का दूसरा प्रहर पूरा होने में था। इतने में सरोवर की तरफ से धोबी की चीख सुनायी दी। महाराजा ने सैनिकों से कहा : तुम यहाँ नंगी तलवार के साथ खड़े रहना... मैं सरोवर के किनारे पर जाता हूँ... शायद चोर भागकर इस तरफ आए, तो जिंदा या मरा हुआ उसे पकड़ लेना।’

महाराज अश्वारूढ़ होकर वेग से सरोवर के किनारे आ पहुँचे। इतने में तो धोबी दौड़ता हुआ और काँपती आवाज़ में बोला :

‘महाराज, चोर आया था... मैं चिल्लाया तो वह डर के मारे सरोवर में कूद गया... देखिए... दूर-दूर वह तैरता हुआ जा रहा है... उसका सिर भी नज़र आ रहा है।’

धोबी काँप रहा था... राजा ने कहा : ‘अब तो उसकी मौत आयी समझ। ले यह मेरा घोड़ा पकड़... मेरे कपड़े वगैरह सम्हाल। मैं अभी सरोवर में कूदकर उसका पीछा करता हूँ।’ यों कहकर कपड़े... मुकुट... और दूसरे शस्त्र धोबी को सौंपकर महाराजा ने हाथ में केवल कटार लिए और कमर पर अधोवस्त्र पहने सरोवर में कूद गये... चोर का पीछा करने के लिए तैरते हुए आगे बढ़ने लगे... उधर वह चोर भी आगे बढ़ रहा था, तैरते-तैरते महाराजा दूर निकल गये...। इधर उस धोबी ने महाराजा के कपड़े पहन लिये... सिर पर मुकुट चढ़ाया और घोड़े पर चढ़ बैठा। अपने चेहरे को राजा के चेहरे-सा बना लिया।’

‘वह धोबी ही चोर था न?’

राजा भी लुट गया

२३८

‘हाँ कुमार, वह घोड़े पर बैठकर किले के दरवाज़े पर आया... और सैनिकों को इशारे से समझा दिया कि ‘मैंने चोर को मार डाला है।’ सैनिक तो हर्ष मनाते हुए वहाँ से चले गये। द्वाररक्षक ने महाराजा के अंदर जाते ही दरवाज़े बंद कर दिये।

नकली राजा राजमहल में पहुँच गया बेरोकटोक। सीधा महारानी के पास। शयनगृह में दिये मद्धिम-मद्धिम जल रहे थे। उसने महारानी को जो जागती ही बैठी थी, कहा ‘मैं गुणमंजरी को साथ ले जा रहा हूँ। चोर पकड़ा गया है... मैंने महाकाल की मनौती मानी थी कि यदि चोर पकड़ा जाएगा तो मैं तुरंत ही गुणमंजरी को साथ लेकर महाकाल भगवान के दर्शन करूँगा...। मिठाई की थाली चढ़ाऊँगा। दो घटिका में तो हम वापस लौट आयेंगे।’ महारानी प्रसन्न हो उठी चोर के पकड़े जाने का समाचार पाकर। उसे संदेह होने का कोई कारण नहीं था। गुणमंजरी को तुरंत जगया और उसे नकली महाराजा के साथ रवाना कर दिया। गुणमंजरी आधी तो नींद में ही थी। राजा के साथ चुपचाप घोड़े पर बैठ गयी। घोड़ा तीव्र वेग से नगर के पश्चिमी दरवाज़े से बाहर निकल गया।’

‘ओह... पर सरोवर में पड़े हुए महाराजा का क्या हुआ?’ विमलयश का स्वर उद्दिग्धता से छलक रहा था। उसका मन अशांत हो उठा था।

‘महाराज जिसे चोर का सर मान रहे थे... वह दरअसल मैं तो एक मटका था, जिसे कि सफेद रंग से रंग दिया था। जैसे ही मटका हाथ में आया... महाराज चौंक उठे। उन्होंने किनारे की तरफ नज़र उठायी तो कुछ भी दिखता नहीं था। तुरंत वे तैरते हुए लौटे किनारे पर। तो वहाँ न तो धोबी था... न ही घोड़ा था... केवल गधा खड़ा था। वे सारी बात समझ गये कि वह धोबी ही चोर था।

वे गीले कपड़े में दरवाज़े पर आये... चौकीदार को आवाज लगाई पर चौकीदारों ने दरवाज़ा नहीं खोला... राजा ने उन्हें परिस्थिति समझाने की भरसक कोशिश की। जो घटना हो गई थी उसका बयान किया, पर द्वार-रक्षक तो एक ही बात पर अड़े हुए थे। ‘हमारे महाराजा तो कुछ देर पहले ही घोड़े पर बैठकर चले गये हैं चोर को मारकर। तुम नये कहाँ से पैदा हो गये?’ महाराजा मन मसोसकर रह गये। उन्हें रानी की चिंता हो रही थी। सारी रात राजा ने किले के बाहर बितायी... सुबह में जब द्वार खुले तो चौकीदार अपने महाराजा की दुर्दशा देखकर रो पड़े। वे तो बिचारे मारे डर के कापँने लगे, पर

राजा भी लुट गया

२३९

महाराजा कुछ भी कहे बगैर अपने महल में चले गये। कपड़े वगैरह बदलकर सीधे रानी के पास पहुँचे। महारानी स्वयं चिंता में थी क्योंकि दो घटिका में वापस आने की बात कहकर महाराजा गये थे, पर अब तो पूरी रात बीत गयी थी। महारानी ने बेसब्री से पूछा : 'आप तो दो घड़ी में लौटनेवाले थे, इतनी देर क्यों लगा दी? सारी रात गुजर गयी... गुणमंजरी भी आ गयी है न?'

'तू क्या बोल रही है?' महाराजा का मन किसी दुर्घटना की आशंका से काँपने लगा था।

'अरे आपको क्या हो गया है? आप खुद तो रात को दूसरा प्रहर बीतने पर आये थे और मुझ से कहा था :

'चोर पकड़ा गया है... अब मैं गुणमंजरी को साथ लेकर महाकाल के मंदिर में जाऊँगा... मिठाई की थाली चढ़ाने की मनौती रचायी है। और आप गुणमंजरी को लेकर घोड़े पर सवार होकर रवाना हुए थे।'

राजा रो पड़े... 'ओह... मेरी बेटी को वह दुष्ट चोर उठा ले गया।' महारानी ने जब महाराजा से सारी बात जानी तो महारानी अपने आप को सम्हाल नहीं सकी। वह बेहोश होकर गिर गयी। पूरे राजमहल में क्या अब तक पूरे नगर में ये समाचार फैल गया था। सब लोग रो रहे हैं। सभी भय से काँप रहे हैं। राजमहल तो श्मशान हो गया है। कौन किसे आश्वासन दे? सभी परेशान हैं... गुमसुम हैं।'

'फिर महाराज ने क्या किया?'

'वह मुझे मालूम नहीं है... मैं तो इतने समाचार पाकर तुरंत दौड़ती हुई यहाँ पर आयी... कुमार।'

विमलयश खड़ा होकर व्यग्र मन से कमरे में टहलने लगा। मालती स्तब्ध होकर विमलयश को ताक रही थी। उसने हौले से कहा : 'कुमार!'

विमलयश ने मालती को प्रश्नभरी निगाह से देखा।

'कुमार, तुम जादू का पंखा बनाकर भारी से भारी बुखार मिटा सकते हो, तो क्या ऐसा कोई जादू नहीं है कि राजकुमारी जहाँ हो, वहाँ से वापस लायी जा सके?'

विमलयश ने मालती की आँखों में वेदनायुक्त विवशता पाई। हालाँकि उसका खुद का मन भी तीव्र पीड़ा से छलनी हुआ जा रहा था। गुणमंजरी के साथ उसका तीव्र सख्यभाव दिल में जीवंत था...। वह मालती के सवाल का

राजा भी लुट गया

२४०

कुछ जवाब दे, इससे पहले तो राजमार्ग पर जोर से ढोल-नगारे बज उठे। इसके बाद एक राजपुरुष ऊँची आवाज में घोषणा करने लगा :

‘बेनातट के नागरिकों, सुनो!

भयंकर जुल्मी चोर राजकुमारी का अपहरण करके उसे उठा ले गया है। कोई वीर पुरुष राजकुमारी को जिंदा वापस छुड़ा लाएगा उसे महाराज अपना आधा राज्य देंगे एवं राजकुमारी की शादी उससे करेंगे।’

विमलयश तुरंत एक पल की भी देर किये बगैर महल में से बाहर निकला। घोषणा करनेवाले राजपुरुष के पास जाकर उसने घोषणा स्वीकार कर ली।

‘जाओ, महाराज से कह दो कि मैं विमलयश, उस नालायक चोर को और मासूम राजकुमारी को कल सवेरे महाराजा के चरणों में हाजिर कर दूँगा।’

मालती तो नाच उठी। उसका मन आनंद से भर आया। उसे शत-प्रतिशत भरोसा था कि विमलयश ही यह कार्य कर पाएगा। विमलयश महल में आया। मालती ने विमलयश का स्वागत किया। ‘मालती... तू यहीं पर रहना। मैं राजमहल में जा रहा हूँ। महाराजा से भी ज्यादा आश्वासन की ज़रूरत महारानी को है।’

‘हाँ... हाँ... कुमार, जाकर महारानी को तुम दिलासा दो, वर्ना रानीसाहिबा का क्या होगा? आखिर माँ हैं वह... गुणमंजरी तो उसको प्राणों से भी ज्यादा प्यारी है... इकलौती बेटा है।’

विमलयश त्वरा से सीधा राजमहल में पहुँचा। राजमहल में विमलयश की ही चर्चा थी... महाराजा की घोषणा विमलयश ने स्वीकारी है...’ यह जानकर कुछ लोग आश्वस्त हुए थे तो कई लोग डर भी गये थे। विमलयश सीधा अंतःपुर में गया।

महारानी बेहोश थी। महाराजा गुमसुम होकर बैठे थे। मंत्रीगण भी स्तब्ध-सा किंकर्तव्यविमूढ़ होकर बैठे थे।

विमलयश ने महाराज को प्रणाम करके कहा : कृपालु, देवता आप धीरज रखें, स्वस्थ बनें... कल सवेरे गुणमंजरी को आपके चरणों में मैं हाजिर कर दूँगा। आप उदासी को दूर करें। महारानी को स्वस्थ बनाए... उन्हें होश में लाएँ।’

महाराजा ने विमलयश के सिर पर हाथ फेरते हुए वात्सल्य भरे स्वर में दुःखी होकर कहा : ‘नहीं... विमल नहीं... तू परदेशी राजकुमार है, तू उस चोर को पकड़ने का दुःसाहस मत कर। वह चोर कितना जालिम है, मैं जानता हूँ। जो-जो गये, उसे पकड़ने के लिए... वे सब मुँह की खा के आये...

राजा भी लुट गया

२४१

मेरी भी वही हालत हुई... राजकुमारी को भी वह दुष्ट उठा ले गया।'

महाराज का स्वर वेदना से भरा था। 'महाराजा, वह पंखा मंगवाइए - मैं महारानी को होश में लाता हूँ।'

पंखा लाया गया। विमलयश ने पंखे से रानी को हवा की। रानी होश में आयी। उसने विमलयश को अपने सामने देखा। वह विमलयश से लिपट गयी। और दहाड़ मारकर रोने लगी - 'बेटा, मेरी राजकुमारी को ले आ, तू जो माँगेगा मैं तुझे दूँगी!'

'आप रोइए नहीं, माँ! गुणमंजरी को वह चोर यदि पाताल में भी ले गया होगा... तो भी मैं ले आऊँगा। समुद्र में छिपा होगा, तो भी उसे पकड़कर हाज़िर कर दूँगा। अब आप चिंता मत करें... शांत हो जाइए... क्या आपको विमलयश पर भरोसा नहीं?'

'बेटा, भरोसा तो पूरा है तुझ पर... पर यह चोर तो...'

'जुल्मी है ना? कितनी भी जुल्मी हो... मैं उसे जिंदा पकड़कर लाऊँगा। मुझे इतना कुछ मालूम नहीं था... आज ही मालती ने राजकुमारी के अपहरण की बात कही... आप निश्चित रहें।'

'नहीं... नहीं... विमलयश, तुझे यह साहस नहीं करना चाहिए। हो न हो वह चोर तुझ पर ही हमला कर दे... महाराजा की आँखे गीली हो गयीं।'

'मुझे वह उठा जाएगा, यही कहना चाहते हैं न आप? ठीक है, आज तक जो बना है... उसे देखते हुए आप ठीक सोच रहे हैं... पर आपने अभी विमलयश का पराक्रम देखा नहीं है... विमलयश की कला देखी है, पर ताकत नहीं देखी है। आज मौका मिला है। आप मेरी ताकत भी देख लें। श्री नवकार मंत्र के अचित्य प्रभाव से क्या संभव नहीं है, इस संसार में? आप निश्चित रहें। चोर का अंत अब निश्चित है। मुझे अपने महामंत्र पर पूरा भरोसा है!'

'और यदि तूने चोर को पकड़ लिया... राजकुमारी को सुरक्षित ले आया वापस... तो मेरा आधा राज्य तेरा! और राजकुमारी भी तेरी!'

विमलयश के शरीर में सिहरन फैल गई... 'सात कौड़ियों में राज्य' वाली बात आकार ले रही थी...। उसे अपनी महत्वाकांक्षा की सिद्धि करीब नज़र आने लगी। उसने राजा-रानी को प्रणाम किया और अपने महल में चला आया।



३६. चोर का पीछा

गुणमंजरी!

शुभ्र स्फटिक-सी दीप्ति से अनुप्राणित देह! विशाल, लोचन, प्रशस्त वक्षप्रदेश... समुन्नत भालप्रदेश पर कृष्ण पक्ष सी झुलती श्याम अलकावली... राजकुमारी को दुष्ट तस्कर एक अज्ञात गुफा में ले आया था। जब गुणमंजरी ने अपने पिता का भेस बनाये हुए एक चोर को पहचाना, तब वह चीखती हुई तत्क्षण बेहोश होकर धरती पर गिर पड़ी।

रात बैरन बन चुकी थी। वह होश में आयी। उसका फूल-सा नाजुक दिल फट पड़ा। असह्य वेदना से वह व्याकुल हो उठी। आँखों की करुण वेदना आँसुओं में पिघलती हुई बहने लगी। विचारशून्य हो गयी। वह रात भर रोती रही। वहाँ उसे दिलासा देनेवाला था भी कौन? कौन उसके सिर पर हाथ फेरकर उसे सहलानेवाला था?’

सुबह हुई। तस्कर ने सुंदर कपड़े पहने... क्रीमती गहने धारण किये। पान चबाकर होंठ लाल किये... और गुणमंजरी के पास आया। गुणमंजरी सावधान हो गयी, वह अपने शरीर को सिमटकर बैठ गयी।

‘डर मत, राजकुमारी! यहाँ तुझे किसी भी बात का दुःख नहीं होगा। तेरे पिता अगर ऊपर के नगर का राजा हैं तो मैं इस भूगर्भनगर का राजा हूँ। जितनी दौलत मेरे पास है, उतनी शायद तेरे पिता के पास भी नहीं होगी। और मेरे सामने देख... क्या कमी है मुझमें? मेरी काया कहाँ कम सुंदर है? एक स्त्री को क्या चाहिए? जो चाहिए वह सब कुछ मेरे पास है। तुझे मैं अपनी रानी बनाऊँगा... हाँ... हाँ... हाँ...’

तस्कर के अट्टहास से विशाल गुफा की वह गुप्त आवाज गूँज उठी। राजकुमारी काँप उठी। उसकी आँखें डर के मारे विस्फारित रह गयी।

‘बोल मेरी बात मान रही है या नहीं? मुझे जवाब दे इसी वक्त और यहीं पर।’

‘नहीं, यह कभी नहीं हो सकता।’

राजकुमारी तपाक से खड़ी हो गयी। उसकी आँखों का भय चला गया। आँखों में से शोलें भड़कने लगी। उस

चोर का पीछा

२४३

के हॉठ काँपने लगे। न जाने कहाँ से उसमें अदृश्य ताकत उभरने लगी।

‘तो तू यहाँ से बाहर नहीं जा सकेगी। सूरज की किरणों भी तुझे छू नहीं पाएगी यहाँ पर।’

‘चाहे मेरे प्राण यहीं निकल जाए।’

‘अरे पागल, ऐसे कोई मरने दूँगा...? इसलिए तुझे इतनी मेहनत करके यहाँ लाया हूँ? लोग मेरे नाम से पत्ते की भाँति काँपते हैं। रात को कोई बाहर निकलने की हिम्मत नहीं करता... तू जानती नहीं है मुझे?’

‘जानती हूँ... अच्छी तरह जानती हूँ... एक चोर को, लुटेरे को जानने का क्या होता है?’

‘ए छोकरी... बकवास बंद कर।’

‘सच हमेशा कड़वा होता है, रे तस्कर।’

‘इतना गुमान? अभी बताता हूँ तुझे तेरी यह भरपूर जवानी...’ तस्कर गुणमंजरी की तरफ आगे बढ़ा।

‘वहीं पर खड़ा रह... दुष्ट जरा भी आगे बढ़ा तो मैं जीभ खींचकर मर जाऊँगी।’ तस्कर के आगे बढ़ते कदम रुक गये। गुणमंजरी की धमकी से वह घबरा गया। उसने धीरे से आवाज़ को स्निग्ध बनाते हुए कहा : ‘राजकुमारी... तू मेरे सामने देख... आखिर तुझे किसी न किसी के साथ शादी तो करनी ही होगी न? तो तू मुझे ही पसंद कर ले... मैं तेरा पूजारी बन जाऊँगा।’

‘बकबक बंद कर बेवकूफ! इस जन्म में मैं किसी और पुरुष को पाने का सोच भी नहीं सकती...। मैं तो सर्वस्व के साथ विमलयश की हो चुकी हूँ... मन से... देह से... आत्मा से!’

अच्छा... तो यह राज है...! यह परदेशी राजकुमार विमलयश...?’

‘हाँ, वही विमलयश... मैं उसकी हो चुकी हूँ...।’

‘पर वह जिंदा ही नहीं रहेगा तब?’ तस्कर ने दाँत किटकिटाये...। कमर में छुरी नीकालकर ऊपर घुमायी...!

‘इस छुरी से मेरी जान ले ले...।’

‘तब फिर तू विमलयश को कैसे पा सकेगी?’

जिंदा रही तो मैं विमलयश की होकर रहूँगी और यदि मर भी गयी तो

चोर का पीछा

२४४

मरकर उसे पाऊँगी, इसके अलावा मेरा कोई संकल्प नहीं है।’

दिल में घुमड़ती पीड़ा की आँधी राजकुमारी के चेहरे पर उभरने लगी थी। उसके स्वर में असहनीय उग्रता-व्यग्रता उफन रही थी। उसने कहा :

‘ऐ तस्कर! क्या तू इतना भी नहीं समझ पाता है कि स्त्री के एक ही दिल होता है... और उसके हृदयमंदिर का आराध्यदेवता भी एक ही होता है? तू मेरे प्रेम की अपार ताकत को झुका नहीं सकता। मिटा नहीं सकता। मेरे संकल्प के बल को बदल नहीं सकता।’

‘ठीक है... ये सारी बातें फिजूल की हैं। तुझे समय देता हूँ... मेरी बात पर सोचने के लिए... आज का पूरा दिन और आधी रात। आधी रात गये मैं वापस आऊँगा...। यहाँ पर तुझे भोजन... पानी वगैरह मिल जाएगा...। मेरे आने के पश्चात् तुझे तेरा निर्णय बताना होगा।’

‘मैंने अपना निर्णय बता दिया है... उसमें परिवर्तन की तनिक भी संभावना नहीं है... तू आशा के झूठे सपने देखना ही मत।’

‘संयोग और परिस्थिति तो बड़े-बड़ों के इरादे बदल देती हैं, छोकरी..., रात को वापस लौटूँगा... तब तेरे विचार शायद बदल गये होंगे...।’

‘संयोग बदलने से क्या होता है रे मूर्ख! क्या पता, पर मुझे लगता है तेरे भाग्य कहीं नहीं बदल जाएँ, ध्यान रखना।’

तस्कर मौन-मौन ताकता रहा गुणमंजरी को। केतकी के फूल से सुंदर प्रफुल्ल नयन... महुवे की कली-सा कपोल प्रदेश... अनार की कली से श्वेत शुभ्र दाँत... और जपाकुसुम से रक्तिम अधर... गुणमंजरी का सौंदर्य वैभव, वह स्तब्ध होकर देखता ही रहा...। उसका दिल बेताब हो उठा...। पर वह डर गया... कुमारी के कौमार्यतेज से वह हतप्रभ हुआ जा रहा था।

वह चला गया। गुफा में से बाहर निकला और भेष बदल कर सीधा बेनातट नगर में प्रविष्ट हो गया।

तस्कर के जाने के पश्चात् गुणमंजरी को अपनी पहाड़ सी गलती का ख्याल हो आया और वह तड़प उठी :

‘अरे!... मैंने इस दुष्ट को कहाँ विमलयश का नाम बता दिया...? कितनी बड़ी भूल कर दी मैंने? मैंने विमलयश को आफत में डाल दिया। यह चोर भयंकर है, क्रूर है... कहीं विमलयश को...’

चोर का पीछा

२४५

और वह काँप उठी। उसके चेहरे पर शोक की कालिमा छा गयी... उसके हृदय की सांसे गरम हो गयी... वह मन ही मन सोचती है :

‘ओह... यह अचानक सब क्या हों गया? क्या मेरी किस्मत में ऐसा घोर दुःख उठाना ही लिखा होगा? और मुझे क्षमा करना विमल... मेरे देव... मैंने तुम्हारा नाम बोलकर तुम्हारा अक्षम्य अपराध किया है...। मेरे-साथ साथ तुम्हें भी संकट में डाल दिया... न जाने चोर क्या करेगा तुम्हारे साथ?’

उसकी कल्पनासृष्टि में विमलयश की स्नेहार्द्र दृष्टि उभरने लगी। उसके कानों पर जैसे कि वीणा के तार झंकृत होकर हौले-हौले टकराने लगी...। पर वह आनंद विभोर नहीं हो सकी। वरना तो वीणा की झंकार ही उसे पागल बना देती... उसके कदम थिरकने लग जाते। उसके चेहरे पर की ग्लानि कुछ कम हुई... उसका भीतरी प्रेमसागर कुछ हिलोरे लेने लगा... और उसकी आँखों में आँसू भर आये।

‘पिताजी मेरी खोज ज़रूर करवाएँगे ही। मेरे अपहरण के समाचार तो विमल ने भी जाने ही होंगे। वह भी कितना दुःखी हुआ होगा? जैसे मैं उसे मेरी समग्रता से चाहती हूँ... वैसे वह भी मेरे लिए तरसता तो होगा ही...। मुझे खोजने के लिए भी निकल गया हो...। वह जान पाया होगा मेरी पीड़ा को? वह महसूस कर पाएगा मेरी वेदना को?’

दिनभर वह प्रतीक्षा की आग आँखों में जलती रखकर टकटकी बाँधे निहारती रही गुफा में दरवाज़े की ओर, पर उसे केवल निराशा ही हाथ लगी।

इधर वेश बदलकर बेनातट नगर में प्रविष्ट हुआ चोर यह जान पाया कि उसे पकड़ने के लिए ओर राजकुमारी को वापस लाने के लिए विमलयश ने ही घोषणा की है। चोर ने ठहाका लगाया... वह विमलयश के महल के निकट आया।

महल के इर्दगिर्द घूमकर उसने कोई जान न पाए इस ढंग से बारीकी से अवलोकन कर लिया। अपने मन में एक भयानक योजना भी बना डाली।

रात उतर आयी बेनातट पर!

आकाश की गंगा में से चांदनी की श्वेत शुभ्र धारा धरती पर जैसे कि उतर आयी थी। जैसे दूध की भरी तलैया नज़र आ रही थी। आसपास का वातावरण शांत था पर भयाक्रांत था...। करीब रात का दूसरा प्रहर पूरा हो गया था। बेनातट नगर के राजमार्ग सुनसान हो चुके थे। सभी मकान एवं

चोर का पीछा

२४६

खिड़कियों बंद थे। नगररक्षक एवं सेना के सुभट लोग भी अपने घरों पर आराम कर रहे थे। विमलयश ने ही सबको छुट्टी दे रखी थी।

विमलयश के महल के दरवाज़े खुले थे। महल का एक-एक खंड बिलकुल खुला था। कमरे में रही हुई जौहरात की पेटियाँ सब खुली पड़ी थीं। न कोई रक्षक था... न किसी को ताला लगा था।

एक कमरे में विमलयश श्री नवकार मंत्र के ध्यान में लीन बना था। ध्यान पूर्ण करके विद्यादेवियों की आराधना में प्रवृत्त उसने दो विद्यादेवियों की स्मृति की : एक अदृश्यकरणी और दूसरी हस्तिशतबलिनी।

दोनों विद्यादेवियाँ प्रकट हुईं।

विमलयश अदृश्य हो गया।

उसके शरीर में सौ हाथियों की शक्ति संक्रमित हो गयी। विद्यादेवियाँ अंतर्धान हो गयीं... और इधर तस्कर ने महल में प्रवेश किया।

उसकी ताज्जुबी का पार नहीं था... उसने महल तक आने के रास्ते में किसी भी आदमी को पहरे पर खड़े या चहलकदमी करते हुए भी नहीं देखा। सैनिक वहाँ पर नहीं थे। विमलयश के महल के इर्दगिर्द भी जरा भी चौकी या सुरक्षा का प्रबंध नहीं था। महल के दरवाज़े खुले थे। सावधानी से, नंगी तलवार हाथ में लिए चोर महल में घुसा। उसने महल के कमरों में जवाहरात की पेटियाँ बिलकुल खुली पड़ी हुई देखा... वह तो आश्चर्य से स्तब्ध रह गया।

वह पूरे महल में घूम आया... पर उसे विमलयश का दर्शन नहीं हुआ।

विमलयश तस्कर पर बराबर निगाह जमाये एक कोने में खड़ा है।

तस्कर न तो विमलयश को देख रहा है... नहीं कुछ ज्यादा सोच भी रहा है।

वह सोचता है : शायद बेचारा परदेशी कुमार मुझसे डरकर महल को छोड़कर कहीं भाग गया है...। खैर, यदि मिला होता तो यमलोक में भिजवा देता... पर अब तो उसकी सम्पत्ति हथिया लूँ...।' उसने मूल्यवान रत्न-जवाहरात वगैरह की गठरी बाँधी और वह महल से बाहर निकला।

विमलयश भी अपनी कमर पर तीक्ष्ण हथियार छुपाकर तैयार ही खड़ा था। उसने पीछा किया तस्कर का। तस्कर आगे और विमलयश पीछे। नगर के किले के निकट आकर तस्कर ने इधर-उधर झाँककर गुप्त मार्ग में प्रवेश

चोर का पीछा

२४७

किया। विमलयश भी चुपके से उसी के पीछे सरक गया। दोनों किले के बाहर निकल आये।

रात का तीसरा प्रहर प्रारंभ हो चुका था। चोर वेग से आगे बढ़ रहा था... विमलयश भी उतनी ही तीव्रता से उसके कदमों से कदम मिला रहा था। चोर सशंक नजरों से बराबर पीछे देख रहा था... पर विमलयश अदृश्य होने से उसे देखना संभव नहीं था।

एक बहुत बड़े वटवृक्ष के नीचे दोनों पहुँचे। वृक्ष के नीचे एक बड़ी चट्टान थी। चोर ने उस चट्टान को छुआ और कुछ ही पलों में वह चट्टान खिसकने लगी... चोर तुरंत ही अंदर के तलघर में उतर गया। फिर उसने चट्टान से द्वार बंद कर दिया। विमलयश ने कुछ पल बीतने दिये... फिर एक ही लात मारकर चट्टान को दूर किया और वह खुद भूमिगृह में उतर पड़ा।

करीब पचास सीढ़ियाँ उतरा कि एक बड़े कमरे में वह आकर खड़ा रहा। कमरे को चारों ओर से देखा... तो पूर्व दिशा में गुप्त द्वार-सा कुछ लगा। उसने धक्का मारा, दरवाजा खुल गया, भीतर प्रवेश किया तो देखा सामने ही ऊपर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ थीं। वह कुछ देर रुका रहा। ऊपर से तस्कर की आवाज आ रही थी। किसी स्त्री के रोने की आवाज भी थी। विमलयश ने अनुमान लगा लिया : 'राजकुमारी यहीं पर है।' उसका मन प्रसन्न हो उठा। कुछ आश्वस्त भी हुआ।

वह एक ही साँस में सीढ़ियाँ चढ़ गया तो उसने बिलकुल सामने राजकुमारी को बैठी हुई देखा। उसके सामने तस्कर खड़ा था। विमलयश अदृश्य रूप से गुपचुप राजकुमारी के निकट एक ओर कोने में खड़ा हो गया।

उसने राजकुमारी को देखा... उसका दिल रो पड़ा।

विमलयश चुपचाप राजकुमारी को देखता रहा। बिना तेल की सूखी उसकी केशराशि... राहुग्रस्त चन्द्रमा-सी फीकी उसकी मुखकांति! सूखे हुए फल-से निष्प्राण होंट... मरणासन्न हिरनी सी निस्पंद आँखें!

निराभरण राजकुमारी को देखकर विमलयश की आँखें भर आयीं... उसे लगा राजमहल में फूलों के बीच पली हुई यह कली आज कितनी पीड़ा उठा रही है? एक विचित्र अहसास भरी पीड़ा से विमलयश का मन कसकने लगा... इतने में तस्कर चिल्लाया :

'देख री छोकरी... ये खूबसूरत गहने किसके हैं?

राज्य भी मिला, राजकुमारी भी!

२४८

तस्कर ने विमलयश के महल में से लाये हुए गहनों के ढेर राजकुमारी के आगे रख दिया। आभूषणों पर विमलयश का नाम अंकित था।

‘ये आभूषण तो मेरे उस परदेशी राजकुमार के हैं।’ ‘थे... अब नहीं हैं... पगली... वह खुद ही अब तो जिंदा नहीं रहा।’

‘क्या?’ राजकुमारी चीख उठी।

‘उसे यमलोक में पहुँचाकर उसका सारा धन मैं साथ लाया हूँ, बोल, अब तो मेरी रानी होना कबुल है न?’ जिस पर तू मर रही थी, वह तो कायर निकला... अरे... मर ही गया समझ ले...!’

‘नालायक... दुष्ट... तेरे जैसे नीच खूनी का मैं चेहरा भी देखना नहीं चाहती... और यदि तूने जो कहा वह सत्य है तो मैं अब जीना नहीं चाहती। मैं भी अपने प्राणों का त्याग कर दूँगी।’

‘क्यों री? क्या उस परदेशी कुमार जैसा मेरा रूप नहीं है क्या? उसके जितनी संपत्ति नहीं है क्या मेरे पास? मुझमें क्या कमी दिखायी देती है तुझको?’

‘कमी? तू तो काला कौआ है... उस हंस-से परदेशी के आगे... वह यदि कमल है तो तू निरा धतूर है... शैतान है तू तो... खूनी...।’

‘चुप मर... तेरी जीभ लंबी होती जा रही है...’ इस छुरी से काट डालूँगा।’ तस्कार चिल्लाया और छुरी उठाये राजकुमारी की तरफ लपका।

उसी समय तस्कर के सिर पर जोर से मुष्टिप्रहार हुआ... और वह... ‘हाय’... करता हुआ ज़मीन पर ढेर हो गया।

‘दुष्ट... अबला पर हाथ उठाकर अपनी ताकत बता रहा है... परदेशी राजकुमार परलोक में गया है कि साक्षात् काल बनकर तेरे सामने खड़ा है... देख ले ज़रा।’

और विमलयश अपने स्वरूप में प्रगट हुआ।





गुणमंजरी अचानक विमलयश को सामने उपस्थित हुआ देखकर हर्षविभोर हो उठी। उसके मुरझाये अधरों में मधुर स्मित की कलियाँ खिल उठी! उसने विमलयश को नमस्कार किया। उसके चरणों में गिरती हुई बोली :

‘त्वमेव शरणं मम!’

विमलयश की रोबील आवाज गुफा में गूँज उठी :

‘रे तस्कर! तू विद्यावान है... बुद्धिशाली है, इसलिए मैं तुझे मार नहीं रहा हूँ। पर तुझे मिली हुई विद्याशक्ति का तू कितना दुरुपयोग कर रहा है? जो विद्या दूसरों की रक्षा कर सकती है... उसी के जरिए तू औरों को पीड़ा पहुँचा रहा है।’

विमलयश के एक ही मुष्टिप्रहार से और लात से चीखता-चिल्लाता चोर ज़मीन पर पड़ा-पड़ा कराह रहा था। उसका हौसला टूट चुका था। अपनी ताकत का उसका गरुर मोम की तरह पिघल चुका था। विमलयश की अजेय ताकत के सामने उसने अपनी हार स्वीकार कर ली! उसने विमलयश के चरणों में आत्मसमर्पण कर दिया।

‘हम अब जरा भी देर किये बगैर नगर में पहुँचेंगे। चूँकि सबेरा हो चुका है, महाराजा जब मुझे अपने महल में नहीं पायेंगे तो अपहरण या हत्या का अनुमान बाँध लेंगे। और शायद कोई अनर्थ भी हो जाए! कुछ भी अनहोनी हो, इससे पूर्व ही हम पहुँच जाँएँ तो अच्छा!’

विमलयश ने राजकुमारी और तस्कर से कहा। फिर दोनों को अपने साथ लेकर गुफा में से बाहर निकलकर विमलयश ने बड़ी तेजी से नगर की ओर कदम बढ़ाये।

इधर महाराज और महारानी सारी रात जागते रहे थे। विमलयश की चिंता से वे दोनों व्याकुल थे। ज्यों उषाकाल हुआ त्यों तुरंत महाराजा गुणपाल स्वयं विमलयश के महल के पास आये।

राज्य भी मिला, राजकुमारी भी!

२५०

महल के दरवाज़े खुले और बिना किसी रक्षक के देखकर राजा के दिल में सन्नाटा छा गया! महल में प्रवेश करते ही राजा ने आवाज दी : 'विमलयश... विमलयश' पर कोई जवाब नहीं मिला। महल का एक-एक खंड राजा ने देख लिया, पर कहीं भी विमलयश का अता-पता नहीं था। तिजोरियाँ खाली पड़ी हुई थी। धनमाल चोरी हो गया था और विमलयश गुम हो चुका था।

महाराजा गुणपाल भय से सिहर उठे। दौड़ते हुए महल में लौटे। मंत्रीगण, सेनापति, नगरश्रेष्ठी... सभी एकत्र हो गये थे।

'ओह! गजब हो गया! चोर ने तो कहर ढा दिया है! विमलयश का अपहरण हो गया है। उसकी धनसंपत्ति भी चली गयी है।' बोलते-बोलते राजा अपनी हथेलियों में मुँह छिपाकर फफक पड़े!

सभी किंकर्तव्यविमूढ़ बन चुके थे। क्या कहना? क्या बोलना? क्या करना? कैसे यह भेद खोलना? किसी को कुछ सूझ नहीं रहा था! सभी की आँखें भर आयी थीं, निराशा... हताशा... उदासी और स्तब्धता ने सभी को घेर लिया था! महाराजा का स्वर और ज्यादा व्याकुलता से छलक उठा :

'मैं अपने प्रजाजनों की सुरक्षा नहीं कर सका। परिवार की रक्षा करने में तो नाकाम रहा ही हूँ... मेरे भरोसे जान की बाजी खेलनेवाले उस परदेशी राजकुमार को भी मैं नहीं बचा सका! मेरा कितना दुर्भाग्य है? अब मेरा जीना भी किस काम का? संसार में मुझे जीने का हक नहीं है...! मेरा मन जीने से... इस दुनिया से भर गया है। अब मुझे जीना ही नहीं है! बेटी के बगैर... उस प्यारे परदेशी राजकुमार के बगैर मैं जिंदा रहकर क्या करूँगा? मैं जीना ही नहीं चाहता! नगर में बाहर लकड़ियों की चिता रचा दो, मैं अग्नि-प्रवेश करूँगा! मुझे कोई नहीं रोक सकता अग्निप्रवेश करने से! मेरा निर्णय आखिरी है!'

महारानी की चीख से वातावरण काँप उठा! आकाश में से जैसे बिजली टूट गिरी... राजपरिवार फफकने लगा। मंत्रिमंडल रो पड़ा। नगरश्रेष्ठी भी आँसू बरसाने लगे। पूरा राजमहल विषाद से सिसकने लगा! सभी ने प्रयास किया राजा को समझाने का, पर महाराजा गुणपाल सभी को रोते छोड़कर राजमहल का त्याग करके महल की सीढ़ियाँ उतरने लगे। राजमार्ग पर आगे कदम बढ़ाने लगे! पूरे नगर में, जंगल में लगी आग की भाँति खबर फैल गयी... 'चोर ने विमलयश की धनसंपत्ति लूटकर उसका भी अपहरण कर दिया है। राजा अब अग्निप्रवेश करके अपनी आहुति देने का निर्णय कर बैठे हैं। नगर के बाहर चिता जल उठेगी!'

राज्य भी मिला, राजकुमारी भी!

२५१

प्रजा में हाहाकार मच गया। चारों तरफ आँसू, उदासी और सिसकियाँ छा गयीं। हज़ारों प्रजाजन रोते-कलपते महाराजा के पीछे चलने लगे। सभी स्तब्ध थे, उद्विग्न थे, उदास थे। रानी की आँखें तो रो-रो कर सूज गयीं थीं। दिल में से गरम-गरम निश्वास निकल रहे थे। वह रोती-रोती बोल रही थी, 'मैं भी नहीं जीऊँगी अब... मैं भी आपके साथ अग्निप्रवेश करूँगी। बेटा और स्वामी के बिना जिऊँ कैसे? मेरे कारण... मेरी बेटा के कारण बेचारा वह परदेशी कुमार भी बलि बन गया...!!!'

महाराज के साथ सभी नगर के बाहरी इलाके में आये। महाराजा ने अपने सेवकों से कहा : 'चिता रचा दो।'

बेचारे सेवक! आँसू बहाती आँखों से और भारी दिल से राजा की आज्ञा का पालन करते हुए चिता रचाने लगे।

महाराजा और महारानी ज़मीन पर बैठ गये। महाराजा ने श्री नवकार महामंत्र का मंगल स्मरण किया। वे महामंत्र के जाप में लीन हुए। उनका शरीर रोमांच से सिहर उठा। आँखों में से बरबस आँसू बहने लगे। पंचपरमेष्ठी भगवतों का स्तुतिगान उनके होंठों पर अनायास छलकने लगा :

'ओ पंचपरमेष्ठी भगवंत!'

मैंने सदा-सदा के लिए मेरी क्षेम-कुशल की सारी की सारी चिता आपके चरणों में रख दी है। यदि इन संकट की घड़ियों में भी आप सहारा नहीं देंगे मुझे, आप मेरा त्याग कर देंगे, तो फिर त्रिभुवन में आपका विश्वास कौन करेगा? विश्व में आपकी करुणा व्यर्थ मानी जाएगी!

'हे महामंत्र नवकार!

जैसे सरयू के पावन नीर में काष्ठ डूब नहीं जाता, अपितु तैरता है, वैसे ही आपकी करुणा के नीर में भव्य जीवात्मा तैरते हैं... आपका वह करुणा प्रवाह मेरे सारे संकटों को दूर हटा दे... हमारी आफतों को नष्ट कर दे...!'

'हे पंचपरमेष्ठी प्रभो!

आप ही धर्म का उद्भवस्थान रूप हैं। आनंद के झरने रूप हैं। भवसागर को तैरने के लिए तीर्थ रूप हैं। तीनों लोकों के निर्मल श्रृंगार रूप हैं। जगत के अज्ञान-अंधकार को दूर करनेवाले हो। आपका ऐसा दिव्य स्वरूप हमारे जीवनताप को दूर करे... हृदय संताप को चूरचूर कर दे! सुख का नूर जीवन में भर दे! हमारी बिगड़ी हुई बात को बना दे। दुःख-संताप के दलदल में फँसी हमारी जीवन-नौका को सुख-शांति के नीर में पहुँचा दे!

राज्य भी मिला, राजकुमारी भी!

२५२

हे भगवान आप कृपा करें!

महाराजा की तहेदिल की प्रार्थना के साथ-साथ वातावरण में यकायक परिवर्तन होने लगा। मयूरों का केकारव मुखरित हो उठा। आम्रवृक्ष की डाली पर बैठी कोयल कुहक-कुहक शोर मचाने लगी। पेड़ों की डालियाँ झुमती हुई नाचने लगी। मानो सारी प्रकृति पुलकित होकर नृत्य करने लगी। कुदरत का कारोबार खुशियों का पैगाम ले आया हो, वैसा समा बँधने लगा।

इतने में एक ऊँचे पेड़ की डाली पर बैठे किसी राजपुरुष की आवाज खुशखबरी सुनाती हुई सबके कानों तक पहुँची...

‘विमलयश आ रहे हैं! बड़ी तेजी से आ रहे हैं! साथ में एक औरत और एक पुरुष भी है... शायद राजकुमारी हो!’

सभी की निगाहें ऊपर उठी। जन-समुदाय में से किसी ने पूछा : ‘किस दिशा की ओर से आ रहे हैं?’

‘पश्चिम दिशा की ओर से!’ वृक्ष के ऊपर बैठे हुए व्यक्ति ने जवाब दिया। सैकड़ों स्त्री-पुरुष आननफानन पश्चिम दिशा की ओर दौड़ पड़े!

महाराजा पुनः नवकार मंत्र के जाप-ध्यान में लीन हो गये।

पश्चिम दिशा में दौड़ रहे स्त्री-पुरुषों को बीच रास्ते ही विमलयश का मिलन हो गया, और लोगों ने गुणमंजरी को सुरक्षित देखकर हर्षध्वनि की। आनंदविभोर होकर लोगों ने विमलयश का जयजयकार किया। जयध्वनि के शब्द महाराजा के श्रुतिपट पर टकराये तो उन्होंने आँखें खोली। पश्चिम दिशा की ओर निगाहें उठाकर देखा। विमलयश को तीव्र वेग से अपनी तरफ आते देखा। महाराजा की आँखे खुशी के आँसुओं से छलक उठी। महारानी का चेहरा भी प्रसन्नता के फुलों से खिल उठा! दोनों खड़े हो गये। पश्चिम दिशा की तरफ दोनों ने कदम बढ़ाये।

विमलयश ने महाराजा को प्रणाम किया। चरणों में झुकते हुए विमलयश को राजा ने अपने सीने से लगाया...

महारानी ने गुणमंजरी को अपने बाहुपाश में जकड़ लिया। माँ-बेटी दोनों की आँखों की किनारे खुशी के आँसुओं के तोरण से बँध गए।

प्रजाजन तो नाचने लगे! नगर में से दो रथ आ गये थे। एक रथ में महाराजा विमलयश को साथ लेकर बैठे। दूसरे रथ में रानी गुणमंजरी के साथ बैठी। विमलयश ने तस्कर को अपने रथ के साथ चलने की सूचना दे दी थी।

राज्य भी मिला, राजकुमारी भी!

२५३

नगर में आनंद का उदधि उफन रहा था!

नगरवधुओं ने विमलयश पर फूलों की वृष्टि की। राजसभा का आयोजन हुआ।

महाराजा ने विमलयश को अपने निकट ही बिठाया। जवनिका के भीतर महारानी के समीप गुणमंजरी बैठ गयी।

महाराजा ने पूरी सभा पर सरसरी निगाह डाली और फिर सभाजनों को संबोधित करते हुए कहा :

‘मेरे प्रिय प्रजाजन!

आज हमारे आनंद की सीमा नहीं है! खुशी की कोई हद नहीं है! इन सबका श्रेय है अपने सबके लाड़ले परदशी राजकुमार विमलयश को! राजकुमारी को भयंकर चोर के शिकंजे में से मुक्त कर लाया है। हम विमलयश के खुद के मुँह से सारी घटना का बयान सुनें कि उसने राजकुमारी को कैसे मुक्त किया और चोर को पकड़ लिया।’

महाराजा ने विमलयश की ओर देखा। विमलयश ने खड़े होकर महाराजा को प्रणाम किया। सभाजनों को प्रणाम किया... और कहा :

‘मेरे पितातुल्य महाराजा और प्यारे प्रजाजनों, जो कुछ भी अच्छा हुआ है वह सारा प्रभाव श्री नवकार महामंत्र की अचिंत्य कृपा का है। मैं केवल निमित्त बना हूँ। राजकुमारी के प्रबल पुण्योदय से ही मैं समय पर उस तक पहुँच सका। पिछले कुछ दिनों से नगर में हायतोबा मचा देनेवाला चोर कोई सामान्य अपराधी नहीं है... उसके पास मंत्रशक्तियाँ हैं। विद्याशक्ति है। उसी शक्ति के बल पर ही उसने आज तक सफलता प्राप्त की थी। परंतु विद्याशक्तियों का दुरुपयोग आखिर कहाँ तक कुदरत सहन कर सकती थी? मेरे हाथों वह पराजित हुआ। मैंने उसे जिंदा पकड़ लिया... उसने मेरी शरण ले ली...!’

अचानक जवनिका में से गुणमंजरी बाहर आयी और महाराजा गुणपाल के पास जाकर उसने कहा :

‘पिताजी, तस्कर के पास मंत्रशक्तियाँ होगी, पर हमारे परदेसी कुमार के पास तो इससे भी बढ़कर विद्याशक्तियाँ हैं। वे अदृश्य बनकर तस्कर के पीछे ही गुफा में चले आये थे। और एक ही मुष्टि का प्रहार करके उसे ज़मीन पर ढेर कर दिया। एक ही लात से चोर को खून की उलटी करवा दी। दिन में चाँद-तारे दिखा दिये! कुमार की ताकत गज़ब की है। पिताजी, मेरे प्राणों की

राज्य भी मिला, राजकुमारी भी!

२५४

रक्षा करनेवाले कुमार का आभार मैं किन शब्दों में व्यक्त करूँ?’ गुणमंजरी का स्वर गद्गद् हो उठा। सभाजनों की आँखें भी खुशी के आँसुओं से भर आयीं।

‘कुमार... उस तस्कर का तुमने क्या किया?’

‘महाराजा, उसे हम अपने साथ ही ले आये हैं। आपकी सेवा में वह हाज़िर है।’ विमलयश ने राजसभा में बैठे हुए तस्कर की ओर इशारा किया। तस्कर खड़ा हुआ... और महाराजा के सामने आकर नतमस्तक होकर खड़ा रहा।

पलभर के लिए तो सन्नाटा छा गया। पूरी सभा के मुँह से ‘अरे!’ निकल गया। चूँकि सब ने किसी डरावने-भयावह चेहरेवाले दैत्यकार व्यक्ति के रूप में चोर की कल्पना कर रखी थी। जबकि सामने तो सुंदर-सलोने चेहरेवाला युवक खड़ा था। महाराजा भी विस्मय से स्तब्ध रह गये। उन्होंने विमलयश से पूछा : ‘कहो कुमार, इस तस्कर को उसके असंख्य अपराधों की क्या सजा दूँ?’

‘महाराजा, मेरी आप से एक विनती है।’

‘बोलो... बिना कुछ भी झिझक के... तुम जैसा चाहोगे वैसा ही होगा।’

‘मेरी आप से प्रार्थना है कि आप तस्कर को अभयदान दे दें!’

‘अभयदान... इस दुष्ट को?’ सभाजनों की दबी-दबी आवाज़ उभर उठी!

‘हाँ, अभयदान! अब से वह चोरी नहीं करेगा। चोरी किया हुआ धन उनके मालिकों को वापस लौटा जाएगा। और वह स्वयं इस राज्य का सेवक बनकर रहेगा।’

विमलयश ने तस्कर के सामने सूचित निगाहों से देखा। तस्कर जिसका नाम मृत्युंजय था। उसने महाराजा और विमलयश को प्रणाम करके कहा :

‘महाराजा, वास्तव में मैं अपराधी हूँ... मैंने अक्षम्य अपराध किये हैं। सचमुच में वध्य हूँ... परंतु राजकुमार विमलयश ने मुझ पर उपकार करके मुझे अभयदान-जीवनदान दिलवाया है... मैं मृत्युंजय, आज से प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं आपका, राज्य का एकनिष्ठ सेवक बना रहूँगा! आप जो भी सेवा की आज्ञा मुझे करेंगे मैं हमेशा उसे वफादारी के साथ अदा करूँगा।’

‘महाराजा ने विमलयश की तरफ देखा। विमलयश ने कहा :

‘महाराजा, मृत्युंजय राज्य का सेनापति होने के लिए योग्य है।’

‘अच्छी बात है, मैं मृत्युंजय को सेनापति का पद प्रदान करता हूँ!’

राज्य भी मिला, राजकुमारी भी!

२५५

मृत्युंजय हर्षविभोर हो उठा। उसने महाराजा के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया। विमलयश ने घोषणा की :

‘कल राजसभा में, मृत्युंजय सारा का सारा चोरी का माल लाकर हाज़िर करेगा। जिनका-जिनका माल हो वे आकर ले जाएँ।’

महाराजा ने राजसभा को संबोधित करते हुए कहा :

‘विमलयश यदि तस्कर की इस तरह कद्र कर सकता है तब तो मुझे भी विमलयश की कद्र करनी चाहिए... प्रिय प्रजाजनों, अपनी घोषणा के मुताबिक मैं अपना आधा राज्य विमलयश को अर्पण करता हूँ!’

राजसभा में ‘महाराजा विमलयश की जय हो’ के नारे बुलंद हो उठे।

‘बड़ा योग्य सन्मान किया आपने महाराजा!’ कहते हुए महामंत्री ने खड़े होकर विमलयश का अभिवादन किया।

‘दूसरी महत्त्व की बात सुन लो...!’ महाराजा का स्वर गूँजा। पूरी सभा खामोश हो गयी।

‘मैं राजकुमारी गुणमंजरी की शादी कुमार विमलयश के साथ करने की घोषणा करता हूँ!’

प्रजाजन नाच उठे! गुणमंजरी शर्म से छुईमुई-सी हो उठी। दौड़कर जवनिका में चली गई। अपनी माँ के उत्संग में चेहरा छिपाकर अपने भीतर उफनते-उछलते खुशी के दरिये को रोकने लगी।

‘महाराजा, सचमुच राजकुमारी के लिए आपने काफी सुयोग्य वर का चयन किया है... राजकुमारी का महान पुण्योदय है... जिस कन्या का उत्कृष्ट पुण्य हो... उसे ही विमलयश सा पति मिले!’

महामंत्री ने खड़े होकर महाराजा की घोषणा का अनुमोदन किया।

महाराजा ने राजपुरोहित को संबोधित करते हुए कहा :

‘पुरोहितजी, राजकुमारी की शादी के लिए शुभ मुहूर्त खोजकर कल मुझे इत्तला करना।’

‘जैसी महाराजा की आज्ञा...’

राजपुरोहित ने खड़े होकर महाराजा की आज्ञा को शिरोधार्य माना।

राजसभा का विसर्जन हुआ।

सुर और स्वर का सुभग मिलन

२५६

विमलयश ने मृत्युंजय को गुफा में से धनमाल लाने के लिए रवाना किया। साथ में रथ और अन्य वाहन भेजे एवं सैनिकों को रवाना किया।

महाराजा की आज्ञा लेकर विमलयश अपने राजमहल में आया।

महल के द्वार पर ही मालती ने अक्षत् से उसे बधाई दी... स्वागत किया। विमलयश ने प्रसन्न होकर अपने गले का क्रीमती रत्नहार देकर मालती को सम्मानित किया।

‘महाराजा, अब तो यह महल ‘राजमहल’ बन जाएगा... और मैं महारानी की परिचारिका बन जाऊँगी!’

‘तू तो अभी से सुनहरे ख्वाब देखने लगी री... अभी तो...!’

‘अरे... कुमार अब तो क्या देर? चट मँगनी पट शादी! देखना कल ही राजपुरोहित शादी का मुहूर्त बता देंगे! अरे बाबा... अब देर काहे की? वैसे भी मियाँ-बीबी तो राजी ही हैं!’

‘चुप मर... बहुत ज्यादा बोलने लगी है... मालती आज कल तू!’

कुमार, मुझे डाँटते हो, वह तो ठीक है, पर हमारी राजकुमारी को कुछ भी कहा तो खबरदार है!’

‘बड़ी आयी राजकुमारी की वकालत करनेवाली!’

और विमलयश की हँसी से महल खिलखिला उठा।





मालती ने विमलयश के शयनकक्ष को नया निखरा हुआ रूप दिया था। नये सिंगार से खंड की सजावट की थी। विमलयश के पलंग के सामने ही एक सुंदर स्वर्णदीप जलाया था। कमल के खिल हुए पुष्प पर एक सुंदर सलोनी आकृतिवाली नारीमूर्ति के हाथ में अर्धचंद्राकार पाँच प्रदीप रचे हुए थे। पाँचो प्रदीपों के सौम्य प्रकाश से पूराशयनकक्ष झिलमिल-झिलमिल हो रहा था।

विमलयश शयनकक्ष में बैठा हुआ था। नीरवता का वातावरण था। उसकी नज़रे स्वर्णदीप की ज्योति पर पड़ी... प्रदीपों की ज्योति में उसे पंचपरमेष्ठी भगवंतों की आकृति उभरती दिखायी दी... उसने 'नमः पंचपरमेष्ठीभ्यः' बोलकर भाववंदना की।

नवकार मंत्र के अर्चित्य प्रभाव मेंने अपने जीवन में अनुभव किये हैं। उस महामंत्र के प्रभाव से ही मुझे आज राज्य भी मिल गया है। अचानक कैसी परिस्थितियाँ पैदा हो गयी? यदि चोर का उपद्रव न हुआ होता तो? राजकुमारी को चोर उठाकर नहीं ले गया होता... तो? महाराजा आधा राज्य देने की और राजकुमारी की शादी की घोषणा नहीं करते? तो मुझे राज्य मिलता भी कैसे?

और यह गुणमंजरी!! मुझे उसके साथ शादी रचानी ही होगी! यह भी कर्मों का अजीब खेल है न? औरत-औरत से शादी करेगी! परंतु उस बेचारी को मालूम ही कहाँ है कुछ? वह तो मुझे राजकुमार ही मान रही है! अरे, इस नगर में सभी तो मुझे राजकुमार समझ रहे हैं!

गुणमंजरी के साथ शादी करनी पड़ेगी। जब तक अमरकुमार का मिलन नहीं हो तब तक अपना भेद मैं खोल नहीं सकती! हाँ, मुझे गुणमंजरी से अलग रहना होगा। उस भोलीभाली राजकुमारी को मैं वैषयिक सुख नहीं दे पाऊँगी। स्पर्शसुख की उसकी कल्पानाएँ साकार नहीं हो पाएंगी। उसे कितना धक्का पहुँचेगा?

सुर और स्वर का सुभग मिलन

२५८

नहीं... नहीं..., मैं उसे प्यार से मना लूँगी। समझा दूँगी! एक झूठ को बनाये रखने के लिए मुझे न जाने कितने झूठ रचाने पड़ेंगे...? कितने स्वाँग बनाने होंगे? करूँ भी क्या? और कोई चारा ही नहीं है न? उसे धोखे में रखे बगैर छुटकारा नहीं है।

शादी करने से इनकार कर दूँ तो? तब तो महाराजा स्वयं मेरे जीवन की किताब की छानबीन करना चाहेंगे कि 'यह विमलयश शादी करने से इनकार क्यों कर रहा है?' और गुणमंजरी तो मेरे अलावा अन्य किसी से शादी करेगी ही नहीं!

विमलयश की स्मृति सीप में चोर की गुफा में सुने हुए गुणमंजरी के शब्द मोती बनकर उभरने लगे। चोर की तलवार से ज़रा भी डरे बगैर उसने साफ-साफ शब्दों में सुना दिया था कि... 'मैं अपने मन से विमलयश का वरण कर चुकी हूँ... वही मेरा प्राणप्रिय है!!'

वह तहेदिल से मुझे चाहती है। मैं यदि शादी करने से इनकार कर दूँ तो शायद वह कोई अनुचित साहस भी कर बैठे! आत्महत्या कर ले! स्त्री के नाजुक दिल की संवेदना स्त्री ही समझ सकती है! जब मेरे पिताजी ने मेरे शादी की अमर के साथ करने का प्रस्ताव अमर के पिता के समक्ष रखा था... और अमर के पिताजी ने अमर से बात की थी, तब अमर ने शादी करने से इनकार कर दिया होता, तो क्या होता? मैं तो शायद पागल ही हो जाती! चंपा की गलियों में 'अमर... अमर...' करती हुई भटकती रहती! स्त्री जब किसी को अपना दिल दे देती है... तब प्रेम की खातिर वह अपने प्राण की परवाह भी नहीं करती है!

'शादी तो मुझे करनी ही होगी... परंतु अमरकुमार के आने के बाद-भेद खुल जाने के बाद फिर क्या होगा?' विमलयश का मन पशोपेश में उलझ गया। पर तुरंत ही उसने उपाय खोज निकाला। मैं गुणमंजरी की शादी अमर के साथ करवा दूँगी!

'पर गुणमंजरी सहमत होगी, अमरकुमार के साथ शादी करने के लिए?' दूसरा सवाल उठा... यदि वह सहमत नहीं हुई तो क्या उस समय वह मुझे नफरत नहीं करेगी? मुझे ताना नहीं मारेगी? 'तुम खुद औरत थी तो फिर मेरे साथ शादी क्यों रचायी? मुझे धोखा क्यों दिया?

नहीं, नहीं, अमरकुमार का रूप... उनका व्यक्तित्व... देखकर गुणमंजरी उनके साथ शादी करने को ज़रूर सहमत हो जाएगी।

सुर और स्वर का सुभग मिलन

२५९

‘पर अमरकुमार खुद सहमत नहीं हुए तो?’ विमलयश के दिमाग के दरियें में एक के बाद एक सवालों की तरंगें उठने लगीं।

‘मैं उन्हें पहले ही से राजी कर लूँगी। मैं उन्हें पहले ही से इतना प्रभावित बना डालूँगी कि वे बात को टाल ही नहीं पाएँ! मेरी कही बात से इनकार न कर सकें! ‘हाँ, उन्हें प्रभावित करने के लिए मुझे कोई नाटक तो करना ही होगा! ...इस वेश में, मैं नाटक भी अच्छा कर पाऊँगी...! और फिर अब तो मैं राजा भी हूँ! इसलिए उन्हें प्रभावित करने का रास्ता और सरल हो जाएगा!

मैं इस वेश में ही उनसे वचन लूँगी... उन्हें वचनबद्ध कर लूँगी कि तुम्हें अपनी पत्नी तो वापस मिलेगी पर बाद में उसकी बात भी माननी होगी!’ ऐसा कुछ वादा पहले ही से करवा लूँगी।

‘तू कबूल तो करा लोगी... परंतु उन दोनों के खुद के दिल नहीं मिले तो? शादी तो कर लेंगे तेरे कहने से या तुझसे उपकृत होकर, पर यदि उनका मन मिल नहीं पाया... उनका हृदय एक दूजे में नहीं खिल पाया तो? बेचारी गुणमंजरी दुःखी-दुःखी हो जाएगी ना? पत्नी को यदि पति का प्यार न मिले तो...? उसका शादी करने का अर्थ क्या? उसके जीवन में फिर बच्चे भी क्या? और इस तरह एक स्त्री की जिंदगी के साथ खिलवाड़ करना...!!!’

विमलयश बेचैन हो उठा। वह खड़ा हुआ। महल के झरोके में जाकर खड़ा रहा।

‘अमरकुमार के साथ गुणमंजरी का जीवन सुखमय होना चाहिए... मेरे स्वार्थ की खातिर गुणमंजरी की जिंदगी से खिलवाड़ नहीं किया जा सकता!’ उसका भीतरी मन बोल उठा।

‘पर मैं इसका अंदाजा लगाऊँ भी कैसे? निर्णय तो कैसे करूँ? गुणमंजरी वैसे तो पुण्यशालिनी कन्या है, पर फिर भी कोई पापकर्म उदित होनेवाला हो और उसमें मैं यदि निमित्त बन जाऊँ तो? मैं स्वयं दुःख सहन कर लूँ, परंतु उस कोमलांगी का दुःख मुझसे नहीं सहा जाएगा! हालाँकि मैं उसे अपने पास ही रखूँगी... मेरी तरफ से उसे भरपूर प्यार मिलेगा... मैं उसे जिगर के टुकड़े की भाँति रखूँगी...!’

‘फिर भी मुझे निश्चित हो जाना चाहिए...। जब तक मैं निश्चित नहीं हो जाऊँ तब तक शांत कैसे रहूँगी? उन दोनों का जीवन सुखमय... सुसंवाद से भरा-पुरा बना रहे। इसका स्पष्ट निर्देश मुझे मिलना चाहिए।’ और यकायक

सुर और स्वर का सुभग मिलन

२६०

उसके दिल में विचार कौंधा : 'मैं शासनदेवी से ही पूछ लूँ तो? हाँ...हाँ, मेरी वह दिव्यमाता ज़रूर मुझे कुछ न कुछ संकेत कर देगी...! भावी का भेद अवश्य बता देगी...!'

विमलयश का दिल हल्का-सा हो गया। प्रफुल्लित होकर उसने कक्ष में आकर वस्त्र बदले। शुद्ध-श्वेत वस्त्र पहनकर वह ध्यान में बैठ गया पद्मासन लगाकर। रात्रि का दूसरा प्रहर बीतने को था।

विमलयश ध्यान में गहरे उतर गया था...।

एक दिव्य प्रकाश का वर्तुल उभरा... अद्भुत खुशबू फैलने लगी कक्ष में... और शासनदेवी स्वयं प्रत्यक्ष हुई।

'बोल, सुंदरी! क्यों मुझे याद किया?'

'माँ, मेरी वात्सल्यमयी माँ! मुझे गुणमंजरी के साथ शादी रचानी होगी... पर बाद में क्या होगा? क्या अमरकुमार गुणमंजरी की शादी होगी? उनका जीवन सुखी होगा? बस, यह जानने के लिए ही माँ, आपको कष्ट दिया है।'

'चिंता मत कर... सुंदरी, गुणमंजरी और अमर की शादी होगी। उसका सहजीवन सुखमय एवं संतोषजनक होगा। गुणमंजरी माँ बनेगी। उनका पुत्र इस संसार में अमरकुमार के यश को फैलानेवाला होगा!'

देवी इतना कहकर अदृश्य हो गई। विमलयश का रोम-रोम हर्षित हो उठा। दिव्य खुशबू को अपने सीने में भरकर वह आश्वस्त हो गया। और वहीं पर भूमिशय करके निद्रादेवी की गोद में लेट गया... अमरकुमार के सपनों में खो गया।



राजकुमारी गुणमंजरी की शादी के समाचार बेनातट राज्य के गाँव-गाँव और हर नगर में प्रसारित किये गये। मित्रराज्यों में भी समाचार भिजवाये गये। गुणमंजरी एवं विमलयश के रूप-लावण्यकी चारों ओर प्रशंसा होने लगी। उनके सौभाग्य के गीत रचे जाने लगे! चारों तरफ से राजा, राजकुमार, श्रेष्ठीजन, श्रेष्ठीकुमार... कवि... कलाकार वगैरह आने लगे।

शादी के मंडप को कदलीपत्रों, आम्रमंजरियों और रंगबिरंगे फूलों से सजाया गया था। जगह-जगह पर सुंदर परिचारिकाएँ सभी आमंत्रित अतिथियों का सम्मित स्वागत करती हुई खड़ी थी। पूरा मंडप अतिथियों एवं प्रजाजनों से भर गया था। महाराजा गुणपाल के आनंद की सीमा नहीं थी!

सुर और स्वर का सुभग मिलन

२६१

राजपुरोहित ने मंत्रोच्चार प्रारंभ किये। विमलयश और गुणमंजरी की निगाहें मिली। विवाह मुहूर्त आ पहुँचा था। राजकुमारी ने विमलयश के गले में वरमाला पहना दी। शादी की विधि पूरी हुई।

गुणमंजरी के साथ विमलयश अपने महल में आया। गुणमंजरी की परिचारिकाएँ पहले ही से विमलयश के महल पर पहुँच गई थीं। परंतु मुख्य परिचारिका तो मालती ही थी।

भोजन वगैरह से निवृत्त होकर जब गुणमंजरी ने शयनकक्ष में प्रवेश किया तब पलभर के लिए वह ठिठक गयी... उसे आश्चर्य हुआ! शयनकक्ष में दो पलंग सजाकर रखे गये थे...। वह ज्यादा कुछ सोचे इसके पहले तो विमलयश ने कक्ष में प्रवेश किया। गुणमंजरी का चेहरा शरम से लाल टेसू-सा निखर आया। उसकी पलकें नीचे ढल गयीं...। एक मौन मधुर अनुभूति के अव्यक्त आनंद में गुणमंजरी डूब गयी। वह भावविभोर होती हुई... खुशी की चादर में अपने आपको समेटती हुई पलंग के किनारे पर जाकर बैठ गयी।

विमलयश सामने के पलंग पर जाकर बैठा। गुणमंजरी ने सवाल भरी निगाह से विमलयश की ओर देखा विमलयश की आँखों में से स्नेह छलक रहा था...। उसके चेहरे पर स्मित अठखेलियाँ कर रहा था। उसने मौन के परदे को शब्दों से काटते हुए कहा :

‘देवी, आश्चर्य हो रहा है न? अजीब-सा लग रहा है न? और किसी कल्पना जगत् में मत जाना। अपने को कुछ दिन इसी तरह गुज़ारने होंगे!’

‘पर क्यों?’

गुणमंजरी अचानक बावरी हो उठी... वह पलंग पर से उठकर आकर विमलयश के चरणों में बैठ गई...।

‘मैंने एक प्रतिज्ञा की थी...!’

‘प्रतिज्ञा कब? किसलिए?’

‘जब तस्कर तेरा अपहरण कर ले गया था और मैंने तुझे लाने का बीड़ा उठाया था, तब मैंने एक संकल्प किया था कि...’

‘काहे का संकल्प?’

‘महाराजा ने घोषणा कर दी थी कि, जो कोई व्यक्ति राजकुमारी को ले आएगा उसे मेरा आधा राज्य दूँगा और राजकुमारी की शादी उसके साथ कर दूँगा।’ इस तरह तेरी-मेरी शादी तो होगी ही, यदि मैं तुझे सुरक्षित लौटा

सुर और स्वर का सुभग मिलन

२६२

लाऊँ तो! यदि शादी होगी तो हम दोनों एक माह तक निर्मल ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे।’

तुझे मैं लिवा लाया सुरक्षित! मुझे अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना चाहिए न?’

गुणमंजरी ने विमलयश की आँखों में आँखें डालते हुए देखा...! उसने उन आँखों में निर्मलता... पवित्रता का तेज देखा...। प्यार की खुशबू देखी... और गुणमंजरी के अंग-अंग में पवित्रता की एक लहर-सी उठी। उसकी देहलता कंपित हुई... वह बोली :

‘जो आपकी प्रतिज्ञा वही मेरी प्रतिज्ञा, मेरे नाथ! एक माह देह से अलग रहेंगे, पर दिल से तो कोई जुदा, नहीं कर सकता मुझे!’

विमलयश की आँखें खुशी के मारे छलक आयीं। गद्गद् स्वर में उसने कहा :

‘मंजरी, सचमुच तू महान है...।’

‘मुझे महानता देनेवाले तो आप ही हैं मेरे प्राणनाथ! आपको पाकर मैं कृतार्थ हो गई हूँ। मेरा जीवनस्वप्न साकर बन गया, मैं कितनी खुश हूँ...! आप मेरे सर्वस्व हैं।

‘मंजरी, तुझे वीणावादन सुनना अच्छा लगता है न?’

‘एकदम!! आज दिन तक तो दूर ही से केवल ध्वनि सुनती थी... अब से तो... आज तो दर्शन और श्रवण दोनो मिलेंगे, धन्य हो जाऊँगी!’

‘देवी... संगीत के सहारे हम अपने प्रेम को दिव्य तपश्चर्या में ढाल देंगे...। अपना प्रेम आत्मा से आत्मा का, दिल से दिल का प्रेम बनेगा। देह और इंद्रियों के अवरोधों को दूर करके दिव्य प्रेम का सेतु बनाएँगे, हम अपने बीच द्वैत भाव नहीं रहने देंगे।

गुणमंजरी के सुंदर, सुकुमार नयन अचल श्रद्धा से विमलयश को निहारने लगे। फिर भी वह सब क्या था? एक भोली हिरनी-सी पत्नी के साथ छलावा! विमलयश के दिल में मौन पीड़ा की कसक गहराने लगी। वह खड़ा हुआ... और अपनी वीणा को उत्संग में लेकर गुणमंजरी के सामने बैठ गया।

वीणा के तार झंकार कर उठे। सुरावली की लहरें हवा के साथ-साथ आंदोलित होने लगी। वीणा के तारों पर उसकी ऊँगलियाँ जैसे स्वरों की गुलछड़ी बन गयी... और उस सुरावली के साथ लावण्यपूँज सी गुणमंजरी के

सुर और स्वर का सुभग मिलन

२६३

कोकिल कंठ का स्वरमाधुर्य घुलने लगा...! दोनों के प्राण स्वरसरिता में गहरे डूब गये।

रोजाना रात को इसी तरह स्वर्णदीपकों के सुहावने मद्धिम प्रकाश में वीणावादन होता रहता है...। दोनों की आत्मा का अद्वैत भाव गाढ़ बनता है। बाद में दोनों पद्मासनस्थ बनकर श्री नवकार मंत्र के ध्यान में लीन बनते हैं...

कभी विमलयश गुणमंजरी को श्री नवकार मंत्र का प्रभाव स्पष्ट करनेवाली कहानियाँ सुनाता है...। गुणमंजरी भावविभोर होकर कथामृत का पान करती है।

कभी विमलयश गुणमंजरी को दार्शनिक सिद्धांतों को समझाता है। जीवन के रहस्यों को खोलकर बताता है...। अनंत-असीम जीवन की बातें सुनकर गुणमंजरी प्रसन्न हो उठती है। धीरे-धीरे गुणमंजरी दार्शनिक बातों का चिंतन करती है।

दिन गुज़रते हैं, दरिये पर से गुज़रती लहरों की भाँति। विमलयश को श्रद्धा है : एक महिना पूरा होते अवश्य अमरकुमार को आ पहुँचने चाहिए। उसका दिल, उसका हृदय श्रद्धा को हार नहीं गया था। उसे विश्वास था : 'मेरा सतीत्व विजेता बनकर रहेगा'

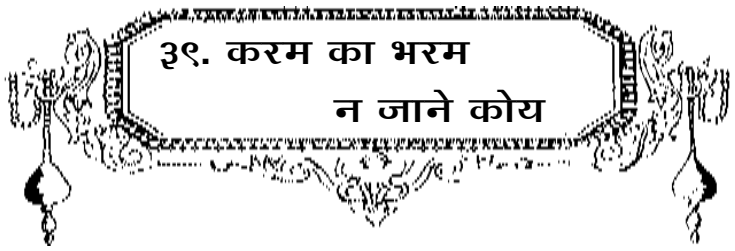
महीने में केवल तीन दिन ही शेष रहे।

गुणमंजरी के हृदय में प्रेम का ज्वार उफनने लगा है।

विमलयश की निगाहें दूर-दूर अमरकुमार को खोज रही है।

उसका अतःकरण उसे आश्वस्त बनाता है। उसकी वामचक्षु स्फुरायमान होने लगी हैं... उसका दिल अव्यक्त आनंद में डूबा जा रहा है। राजमहल के झरोखे में बैठा हुआ विमलयश राजसभा में जाने के लिए खड़ा हुआ। नवकार मंत्र का स्मरण किया और राजमहल के सोपान उतरने लगा। इतने में सामने से सौभाग्यवती स्त्रियों का आगमन से शुभ शकुन का हुआ। शुभ शकुनों से प्रसन्न चित्त होकर विमलयश राजसभा की तरफ चला।





राजसभा लगी थी।

महाराजा गुणपाल के समीप के सिंहासन पर ही विमलयश बैठा था। राजसभा की कार्यवाही रोज़ाना की तरह चल रही थी। इतने में द्वारपाल ने आकर महाराजा को प्रणाम कर के निवेदन किया :

‘महाराजा, एक परदेशी सार्थवाह आपके दर्शन के लिए आना चाहता है! उन्हें आदरपूर्वक भीतर ले आओ।’

महाराजा ने आज्ञा दी। द्वारपाल नमन कर के पिछले कदम वापस लौटा और राजसभा में एक तेजस्वी गौरवदन युवक सार्थवाह ने प्रवेश किया।

विमलयश की निगाहें सार्थवाह के चेहरे पर लगी... और वह चौंक उठा... ‘ओह... यह तो मेरे स्वामीनाथ! अमरकुमार! आ गये... मणिशंख मुनि का वचन सत्य सिद्ध हुआ...!!’ विमलयश ने अपने मनोभावों को चेहरे पर आने नहीं दिया! सार्थवाह ने आकर महाराजा को प्रणाम किया और रत्नजडित थाल में सजे हुए क्रीमती जवाहिरात को उपहार स्वरूप प्रस्तुत की। महाराजा ने आदर पूर्वक नज़राना स्वीकार किया और सार्थवाह को राजसभा में उचित स्थान दिया। सार्थवाह ने विनम्र स्वर में निवेदन किया :

‘महाराजा, मैं चंपानगरी का सार्थवाह अमरकुमार हूँ... बारह बरस से देश-विदेश में परिभ्रमण करते हुए व्यापार कर रहा हूँ... आज सबेरे ही बेनातट के किनारे पर मेरे बीस जहाज़ लेकर आ पहुँचा हूँ... आपकी मेहरबानी हो तो यहाँ पर व्यापार करना चाहूँगा।’

‘अवश्य... सार्थवह! मेरे राज्य में तुम बड़ी खुशी से व्यापार कर सकते हो!’

‘आपकी बड़ी कृपा हुई मुझ पर,!’

विमलयश तो कभी का राजसभा में से निकलकर अपने महल में पहुँच गया था। उसने अपने एकदम विश्वस्त आदमियों को बुला लिया और गुप्त यंत्रणाकक्ष में जाकर उनसे कहा :

करम का भरम न जाने कोय

२६५

‘तुमने आज राजसभा में आये हुए सार्थवाह को देखा है न?’

‘जी हाँ...’

‘समुद्र के किनारे पर उसके बीस जहाज़ खड़े हैं... तुम्हें यहाँ से मेरे नाम से अंकित सभी क्रीमती अलंकार ले जाना होगा... और उन जहाज़ों में इस ढंग से छुपा देना कि किसी को ज़रा भी संदेह न आए, न ही मालूम हो सके... इतना कार्य करके मुझे समाचार देना।’

‘जैसी आपकी आज्ञा, कार्य हो जाएगा।’

विमलयश ने आदमियों को तिजोरी में से आभूषण निकालकर दे दिये।

अलंकारों को अपने कपड़ों में छुपाकर वह राजपुरुष समुद्र के किनारे पर गये। अमरकुमार के रक्षक जहाज़ों की रक्षा करने के लिए तैनात खड़े थे। राजपुरुषों ने कहा :

‘हम महाराजा की आज्ञा से आये हैं। हमें तुम्हारे सेठ के सभी जहाज़ देखने हैं।’

‘पधारिए... जहाज़ पर! हमारे सेठ भी अभी-अभी वापस लौटे हैं, राजसभा में से!’ रक्षक लोग राजपुरुषों को जहाज़ पर ले गये। अमरकुमार से मिले। दो राजपुरुष अमरकुमार से बतियाने लगे। दूसरे दो आदमी एक के बाद एक जहाज़ में, साथ में लाए हुए गहने छिपाते हुए आगे बढ़ते गये। कार्य बड़ी कुशलता से निपटाकर वे वापस अमरकुमार के जहाज पर आ गये।

‘सेठजी, आपके जहाज़ों में तो देश-विदेश का अदभुत माल भरा हुआ है। यह सारा का सारा माल बेनातट नगर में बिक जाएगा... और ढेर सारी संपत्ति कमाकर जाओगे!’

‘बेनातट की ख्याति सुनकर तो मैं यहाँ पर आया हूँ... महाराजा ने भी मुझपर बड़ी मेहरबानी की... मुझे व्यापार करने की अनुमति दी...’

‘पर सेठ, एक बात ध्यान में रखना...’

‘क्या बात?’

‘हमारे महाराजा न्याय-नीति और ईमानदारी के बड़े पक्षपाती हैं... इसलिए व्यापार करते समय...’

‘ओह... समझ गया... मेरा भी यही सिद्धांत है... न्याय-नीति ही मेरे व्यापार की मुख्य आधारशिला है।’

करम का भरम न जाने कोय

२६६

‘तब तो तुम यहाँ पर विपुल संपत्ति अर्जित कर सकोगे।’

राजपुरुष नाव में बैठकर वापस किनारे पर लौट आये और सीधे विमलयश के पास पहुँच गये। विमलयश को समाचार दे दिये।

विमलयश ने कहा :

‘अब तुम जाओ और सेनापति मृत्युंजय को मेरे पास भेजो।’

मृत्युंजय कुछ ही देर में उपस्थित हुआ।

‘आज्ञा कीजिए... मुझे कैसे याद किया?’

‘मृत्युंजय, मेरे महल में से मेरे रत्नजड़ित आभूषणों की चोरी हो गयी है।’

‘आपके वहाँ पर चोरी?’ मृत्युंजय की भौहें खिंच गयीं।

‘हाँ... और वह चोरी करनेवाला कौन है... उसका मुझे ख्याल भी आ गया है...’

‘कौन है वह चोर?’

‘आज आया हुआ वह सार्थवाह! मैंने राजसभा में जब पहले-पहले उसे देखा तब ही मुझे महसूस हो गया था कि यह आदमी बाहर से जितना भला-भोला लगता है... भीतर से वैसा नहीं है...’

‘तब तो उसे बंदी बनाकर यहाँ ला कर पटक दूँगा!’

‘नहीं... तुम जाओ... उसके पास... उसे थोड़ा धमकाना... फिर उसके जहाजों की तलाशी लेना... चोरी का माल पकड़ो... माल यदि मिल जाए... तो उसे पकड़कर यहाँ मेरे पास ले आओ... और हाँ, तुम्हारे साथ मैं अपने आदमियों को भी भेजता हूँ। वे अभी-अभी उस सार्थवाह से मिलकर आये हैं।’

मृत्युंजय अपने विशेष सैनिक दस्ते को साथ लेकर, विमलयश के आदमियों के साथ समुद्र के किनारे पर जा धमका। अमरकुमार उसे किनारे पर ही मिल गया।

‘सेनापति, यह हैं अमरकुमार सार्थवाह...’

विमलयश के आदमियों ने अमरकुमार का परिचय करवाया।

श्रेष्ठी यह हैं हमारे सेनापति मृत्युंजय! आपसे मिलने के लिए यहाँ पर पधारे हैं।’ आदमियों ने सेनापति का परिचय करवाकर आने का कारण बताया... इतने में तो मृत्युंजय बोल उठा...

करम का भरम न जाने कोय

२६७

‘मिलने के लिए नहीं आया हूँ... सार्थवाह... तुम्हारे जहाजों की मुझे तलाशी लेना है!’

‘पर क्यों?’

‘हमारे महाराजा विमलयश के महल में आज ही चोरी हुई है और उस चोरी का माल तुम्हारे जहाजों में होने का शक है...!’

‘आप क्या बोल रहे हैं सेनापति? आपके महाराजा के वहाँ चोरी हो और माल मेरे जहाजों में आ जाए? अशक्य! बिलकुल संभव नहीं है...’

‘सार्थवाह, पर देख लेने में हर्ज क्या है? यदि माल नहीं मिला तो तुम निर्दोष सिद्ध हो जाओगे... और अगर माल मिल जाए तो कारागार में तुम्हें पहुँचा दूँगा...’

‘ठीक है... तलाशी ले सकते हो... पर इस तरह परदेशी सार्थवाह को परेशान करना तुम्हें शोभा नहीं देता...!’ अमरकुमार बोखला उठा।

‘और परदेश में आकर... राजमहल में चोरी करना तुम्हें भी शोभा नहीं देता, सार्थवाह... समझे ना?’

‘पहले चोरी साबित करो... बाद में इलज़ाम लगाना!’ अमरकुमार गुस्से से तड़प उठा।

मृत्युंजय ने अपने सैनिकों को, विमलयश के आदमियों के साथ जहाजों की तलाशी लेने के लिए भेजा। अमरकुमार ने भी अपने आदमी साथ में भेजे। मृत्युंजय अमरकुमार के पास ही बैठा।

करीबन एक प्रहर बीत गया।

सैनिक विमलयश के नाम से अंकित स्वर्ण आभूषण लेकर किनारे पर आये। अमरकुमार के आदमियों के चेहरे उतरे हुए थे। अमरकुमार ने आते ही अपने आदमियों से पूछा।

‘क्यों? क्या हुआ?’

‘क्या होना था? चोरी का माल मिल गया, सेठ! तुम्हारे जहाजों में!’ सैनिकों ने आभूषणों का ढेर बना दिया मृत्युंजय के सामने! मृत्युंजय ने अमरकुमार के सामने देखा... अमरकुमार हतप्रभ सा हो गया... उसकी आँखों में भय अंकित हुआ।

‘कहिए... सार्थवाह... यह क्या है? क्या देश-विदेश में घूमकर इस तरह चोरियाँ करकरके हीं करोड़ों रुपये कमाये हैं क्या?’

करम का भरम न जाने कोय

२६८

मृत्युंजय ने अमरकुमार के समक्ष दाँत पीसे। उसने अपने सैनिकों को आज्ञा की :

‘सभी जहाज़ों पर कब्जा कर लो। इस चोर के तमाम आदमियों को बंदी बना लो... और कारागृह में बंद करो दो!’

अमर की तरफ देखकर मृत्युंजय ने कड़े शब्दों में कहा :

‘सेठ, तुम्हें मेरे साथ आना है। हमारे महाराजा विमलयश के पास तुम्हें ले जाया जाएगा!’

‘महाराजा का नाम तो गुणपाल है न...?’

‘दुसरे महाराजा हैं विमलयश। महाराजा गुणपाल के दामाद हैं... आधे राज्य के मालिक वे हैं।’

अमरकुमार पर जैसे कि बिजली गिरी! वह बिलकुल मूढ़-सा हो गया। सेनापति के साथ बलात् खिंचता हुआ चला। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि यह सब हुआ कैसे? चोरी मैंने की नहीं है... न मैंने करवायी है... और चोरी का माल मेरे जहाज़ों में आ कैसे गया? इस परदेश में मेरा है भी कौन? यहाँ मुझे कौन पहचानता है? मेरी सच्ची बात को भी यहाँ मानेगा कौन? मैं तो माल के साथ पकड़ा गया हूँ। और चोरी की सजा? क्या यह राजा मुझे सूली पर चढ़ा देगा? कारागार में बंद कर देगा? मेरी बाकी जिंदगी क्या कैदखाने की सलाखों की ओट में बीतेगी?

विमलयश का राजमहल आ गया था। महल के एक गुप्तखंड में अमरकुमार को बिठाकर मृत्युंजय ने कहा :

‘व्यापारी के भेस में छुपे हुए ठग... तू यहीं पर बैठ। मैं जाकर महाराज से निवेदन करता हूँ कि चोर पकड़ लिया गया है और उसे यहाँ पर ले आया हूँ?’

‘चोर... ठग...’ अमरकुमार जिंदगी में पहली बार ऐसे कठोर शब्द सुनता है... उसका हृदय टुकड़े-टुकड़े हो जाता है... उसका सिर जैसे फटा जा रहा था... मृत्युंजय कमरे का दरवाज़ा बंद करके विमलयश के समक्ष उपस्थित हुआ।

‘महाराजा आपकी आज्ञा के अनुसार चोर को महल के गुप्त कमरे में बंद कर दिया है। अब क्या करना है?’

करम का भरम न जाने कोय

२६९

‘जहाज़ों का सारा माल मेरे राजमहल में रख दो। जहाज़ों के आदमियों को ठीक ढंग से रखना। वे लोग तो बेचारे निर्दोष और निरपराधी हैं... पर उन्हें रखने हैं अपने अधिकार में!’

‘इस चोर का क्या करना है?’

‘उसे मैं सम्हाल लूँगा!’

मृत्युंजय ने विमलयश की आज्ञा के अनुसार जहाज़ों का माल सारा का सारा विमलयश के महल के भूमिगृह में लाकर रख दिया। जहाज़ों को किनारे पर लंगर डाल कर बाँध दिया। जहाज़ के आदमियों के लिए रहने की भोजन की सारी व्यवस्था करके उन्हें पहरे में रख दिया।

विमलयश ने मालती को बुलाकर कहा :

‘मालती, एक मेहमान आये हैं। उनके भोजन वगैरह की व्यवस्था तुझे करनी है... चल, मेरे साथ तुझे मेहमान का कमरा दिखा दूँ!’

विमलयश ने मालती को अमरकुमार का कमरा दिखा दिया। हालाँकि मालती समझ तो गयी थी कि यह मेहमान गुनहगार है। परंतु उसने विमलयश से ‘कौन है? कहाँ से आये हैं... क्या नाम है?’ वगैरह पूछना उचित नहीं माना। शाम के समय मालती ने अमरकुमार के कमरे में जाकर पानी और भोजन रख दिया। सोने के लिए बिछौना बिछा दिया। फिर एक निगाह से अमरकुमार को देखा ‘लगता तो है किसी बड़े खानदान का युवक... क्या पता! क्या अपराध किया होगा इसने? मौनरूप से काम निपटाकर मालती चल दी।

विमलयश गुणमंजरी के पास गया। गुणमंजरी ने खड़े होकर विमलयश का स्वागत किया। उसने विमलयश को प्रफुल्लित देखा... वह शरमा गयी... वह समझ रही थी ‘अब प्रतिज्ञा पूर्ण होने में केवल तीन दिन का समय शेष है... इसलिए विमलयश काफी खुश-खुश नज़र आ रहा है।

‘देवी, तुम तीन दिन अब पिताजी के घर पर जाकर रहो, तो ठीक होगा!’

‘पर क्यों?’ गुणमंजरी चौंक उठी।

‘यह मन बड़ा चंचल है न? शायद कोई गलती कर बैठे तो? प्रतिज्ञा अच्छी तरह पूरी हो जाए फिर चिंता नहीं!’

गुणमंजरी का चेहरा शर्म से लाल-लाल हो गया। उसने विमलयश की आज्ञा, बिना कुछ दलील किये, मान ली... मालती को यथायोग्य सूचनाएँ देकर गुणमंजरी अपने पिता के महल पर चली गयी।

चोर, जो था मन का मोर

२१०

विमलयश के लिए अब मैदान साफ हो गया था! अमरकुमार को सबक सिखाने की योजना उसने मन में सोची थी... उसने एक रात यू ही बीतने दी... वह अमरकुमार के पास गया ही नहीं। इधर अमरकुमार अधीर हो गया था... 'कब राजा मुझे बुलायेगा? यहाँ पर खाने की रहने की सुविधा अच्छी है... पर वह तो सूली पर चढ़ाने से पहले अपराधी को मनपसंद भोजन या अन्य कुछ देने की पद्धति होती है।' वह डर से सहम उठा। उसके शरीर पर पसीने की बूँदे उभरने लगे।

'नहीं... नहीं मैं विनम्र शब्दों में प्रार्थना करूँगा... हकीकत बता दूँगा... मुझे ज़रूर मुक्ति मिल जाएगी... राजा इतना तो निर्दय नहीं होगा! वरना तो मेरे यहाँ पर आते ही वह गुस्से से बोखला उठता... और मुझे सज़ा फरमा देता!'

मेरे जहाज़ों में यह सारा चोरी का माल आया कैसे? क्या मेरे आदमियों ने चोरी की होगी? या फिर किसी कौतुहली व्यंतर ने यह कार्य किया होगा? हाँ... मैंने बचपन में आचार्यदेव से ऐसे व्यंतरों की कहानियाँ सुनी थी... केवल परेशान करने के लिए व्यंतर लोग ऐसा करते रहते हैं! औरों को दुःख देने में कुछ देवों को... कुछ आदमियों को आनंद मिलता है... मज़ा आता है!

'और हाँ... सुरसुंदरी को यक्षद्वीप पर छोड़कर मुझे भी आनंद हुआ था न? ओह! उस पतिव्रता सती नारी को मौत के मुँह में फेंक देने का घोर पाप इस तरह आज उदित हो गया?' अमरकुमार को सुरसुंदरी की स्मृति हो आयी। और उसकी आँखें बहने लगीं...





दूसरे दिन सबेरे आवश्यक कार्यों से निपटकर विमलयश ने सुंदर वस्त्र-आभूषण धारण किये। सिर पर मुकुट रखा... कानों में कुंडल पहने। अपने महल में मंत्रणागृह में सिंहासन पर बैठा और अपने आदमी को भेजकर अमरकुमार को अपने पास बुलाया।

अमरकुमार ने आकर, सिर झुकाकर प्रणाम किया। वह सिर झुकाकर खड़ा रहा। विमलयश ने बड़े ध्यान से अमरकुमार को देखा।

‘श्रेष्ठी, तुम तो वाणिक्-व्यापारी हो न?’

‘जी हाँ...’

व्यापारी होकर चोरी करते हो...?’

‘महाराज, मैं सच कहता हूँ... मैंने चोरी नहीं की है।’

‘अरे... समान के साथ रंगे हाथों पकड़े जाने पर भी चोरी का गुनाह कबूल नहीं करते हो! क्या गुनाह कबूलवाने के लिए चौदहवें रतन का प्रयोग करना होगा?’

‘महाराज, मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि आपका माल मेरे जहाज़ों में आ कैसे गया? मैंने चोरी नहीं की है।’

‘श्रेष्ठी, जानते हो कि यहाँ पर तुम्हे छुड़वानेवाला कोई नहीं है। चोरी के साथ-साथ कपट करना भी अच्छा आता है तुम्हें? इस देश में चोरी की क्या सज़ा मिलती है यह जानते हो न...?’ विमलयश का चेहरा लाल-लाल हो उठा... तमतमाये हुए चेहरे से उसने धमकाया... और अमरकुमार बेहोश होकर ज़मीन पर गिर गया!!!

‘मालती...’ विमलयश ने आवाज़ दी। मालती दौड़ती हुई आयी।

‘शीतल पानी के छींटे डाल इस परदेशी पर, और पंखा ला।’

मालती जल्दी-जल्दी पानी ले आयी और अमरकुमार पर छींटने लगी। विमलयश पंखा हिलाने लगा। कुछ देर बाद अमरकुमार होश में आया।

मालती चली गयी।

चोर, जो था मन का मोर

२७२

अमरकुमार की आँखों में आँसू छलछला उठे। उसने विमलयश के पैर पकड़ लिये। वह बेबस होकर गिड़गिड़ाने लगा।

‘मेरी सारी संपत्ति ले लीजिए... मेरे शरीर पर धारण किये हुए ये आभूषण ले लीजिए... मुझे यहाँ से जिंदा जाने दीजिए...। मैं आपका उपकार कभी नहीं भुलूँगा। आप मुझ पर मेहरबानी करें। मैं आपकी शरण में हूँ... मुझ पर कृपा कीजिए... कृपा कीजिए...!’

‘मैं तुम्हें छोड़ तो दूँ... पर एक शर्त है...!’

‘आप कहे वैसे करने के लिए मैं तैयार हूँ...।

‘आज रात को मैं तुम्हे सवा सेर घी दूँगा... तुम्हें मेरे पैरों के तलवों में वह घी लगाना-मलना है। सवा सेर घी मेरे पैरों में उतार देना है। बोलो, है कबूल?’

‘जी हाँ, कबूल है!’

‘तो अभी जाओ... दिन में आराम से सो जाना। रात को जगना पड़ेगा न?’

अमरकुमार को उसके कमरे में विदा किया गया।

विमलयश देखता रहा... दीन-हीन और हताश बनकर चले जा रहे अमरकुमार को। उसके चेहरे पर स्मित की रेखा उभरी। ‘औरों को दुःख देने में खुशी मनानेवाले को थोड़े दुःख का अनुभव करवाना ज़रूरी है!’

परंतु दूसरे ही पल उसका हृदय दुःखी हो गया। ‘नहीं, नहीं अब... उन्हें और दुःखी नहीं करना है... भेद खोल दूँ... उन्हें आश्चर्य में डाल दूँ...!’

‘नहीं... ऐसी जल्दबाजी नहीं करनी है...। उनके दिल में मेरे लिए कितनी जगह है? कैसे भाव हैं? यह जान लेना चाहिए। बारह-बारह साल बीत चुके हैं, दिल के भाव अगर बदल गये हों तो? मुझसे जो गुस्सा था अभी उतरा नहीं हो तो?’

उनके साथ दूसरी कोई औरत नहीं है... अर्थात् उन्होंने दूसरी शादी तो नहीं की है, ऐसा अंदाजा लगता है। उनके दिल में मेरा त्याग करके पछतावा तो हुआ ही होगा... मेरी स्मृति भी उनके दिल-दिमाग में होगी ही। कभी इन्सान कषाय से विवश होकर न करने योग्य कर डालता है, पर पीछे से वह पछताता है...।

‘फिर भी बातों ही बातों में कल मैं उनसे पूछ भी लूँगा। मेरे संबंध में उनके

चोर, जो था मन का मोर

२७३

भाव भी जान लूँगा... बाद में ही राज खोलूँगा। विलंब नहीं करना है... कल ही मैं अपने रूप में... अपने सच्चे रूप में प्रगट हो जाऊँगा...।'

मेरा सच्चा रूप... मेरी वास्तविकता जानकर गुणमंजरी को कितना आश्चर्य होगा? वह स्तब्ध हो जाएगी! महाराजा, महारानी... सारा राजपरिवार आश्चर्य के सागर में डूब जाएगा! नगर में कितना कौतूहल फैलेगा। सभी लोगों के दिल में कितने तरह के सवाल उठेंगे... उन सब का उचित एवं उपयुक्त समाधान भी करना होगा। हालाँकि, समाधान करते समय पूरी सावधानी रखनी होगी। महाराज से तो यक्षद्वीप की घटना कहनी होगी, पर गुणमंजरी से तो बिलकुल नहीं कही जा सकती! क्या पता उसे अमरकुमार के प्रति अभाव या वितृष्णा पैदा हो जाए तो? उसके साथ शादी करने से इन्कार ही कर बैठे तो?'

विमलयश अपने कमरे में चला गया।

इधर अमरकुमार आशा के तंतुओं में बन्धा हुआ अपने कमरे में पहुँचा। कई तरह से विचार आ-आकर उसे घेरने लगे।

'सवा सेर घी... इस राजा के पैरों के तलवे में मलना है। क्या इतना घी इसके पैरों में उतर जाएगा? उसने पैर दिखने में तो कितने मृदु हैं... कौमल हैं... और यदि घी इसके पैरों में नहीं उतर पाया तो? यदि उतर जाए तो, तो मुक्ति हो जाएगी... और किसी भी जहाज़ में बैठकर वापस चंपानगरी पहुँच जाऊँगा! फिर से व्यापार करके धन कमा लूँगा। और व्यापार नहीं करूँ तो भी चलेगा। पिताजी के पास ढेरों संपत्ति है... सब आखिर मेरी ही है न?'

मालती ने भोजन के थाल लेकर कमरे में प्रवेश किया। अमरकुमार को खाने की रुचि ही नहीं थी। उसने भोजन करना अस्वीकार किया।

'भोजन तो कर लो भाई, भाई... सुखदुःख तो आते-जाते हैं... जैसे करम किये हो वैसे फल तो भुगतने ही पड़ते हैं!'

अमरकुमार के दिल पर मालती के शब्द तीर बनकर चुभ रहे थे, पर उसने बरबस सुन लिया। उसका दिल दो-टूकड़े हुआ जा रहा था। दिल पर पत्थर रखकर उसने थोड़ा सा भोजन कर लिया।

मालती चली गयी। अमरकुमार वहीं ज़मीन पर लेट गया। उसे नींद आ गयी। जब वह जगा तो साँझ ढलने को थी। शाम को उसने केवल दूध ही पिया। और विमलयश के संदेश की प्रतीक्षा में बैठा रहा।

चोर, जो था मन का मोर

२७४

रात का प्रथम प्रहर शुरू हुआ ही था कि बुलावा आ गया। अमरकुमार पहुँचा विमलयश के कमरे में। सवा सेर घी से भरा हुआ पात्र उसे सौंपा गया।

‘सुनो सेठ मैं सो जाऊँ... मुझे नींद भी आ जाए... तो भी तुम अपना काम चालू रखना। चार प्रहर में इतना घी पैरों के तलवे में मल-मल कर उतार देना है!’

‘जी हाँ, आपकी आज्ञा के मुताबिक करूँगा।’

विमलयश सो गया। अमरकुमार ने विमलयश के पैरों के तलवे में घी मलना प्रारंभ कर दिया। शयनकक्ष में स्वर्णदीपकों का उजाला फैल रहा था।

एक प्रहर बीता, दूसरा प्रहर भी समाप्त हो गया। अमरकुमार ने घी के बरतन में नज़र डाली तो अभी तो पाव भाग का घी भी कम नहीं हुआ था। वह घबरा उठा। ‘ओह... भगवान! दो प्रहर तो बीत गये... केवल दो प्रहर ही बाकी हैं... अभी तो इतना सारा घी बाकी है। किसी भी हालत में इतना घी तो पैरों के तलवे में उतरने से रहा...। ‘यहाँ से मेरी मुक्ति नहीं होगी। जिंदगी यहीं बितानी होगी क्या? ओह... मैं क्या करूँ? कुछ सूझता भी तो नहीं है।’

वह खड़ा हुआ। विमलयश सिर पर कपड़ा पूरा ढँक कर सोया हुआ था।

उसने बराबर ध्यान से विमलयश के चेहरे को देखा। उसने मन ही मन निर्णय किया कि, राजा तो सचमुच सो गया है। वह पुनः अपनी जगह पर बैठ गया। मन में कुछ सोचा और घी का बरतन उठाकर अपने होठों से लगाया... एक घूँट... दो घूँट पिये... इतने में तो विमलयश एकदम खड़ा हो गया, और अमरकुमार के हाथ पकड़ते हुए वह चिल्लाया :

‘क्यों बे चोर, अब भी बोल दे कि मैं चोर नहीं हूँ। यह चोरी नहीं कर रहा है तो क्या कर रहा है? अब तेरा अंतकाल नज़दीक आ गया है!’

अमरकुमार तो डर से मूढ़-सा हो उठा... तुरंत बेहोश होकर ज़मीन पर गिर पड़ा। विमलयश ने ठंडे पानी के छींटे देकर हवा करना शुरू की। अमरकुमार ने आँखें खोलीं। डर के मारे उसका शरीर हवा से काँपते सूखे पत्ते की भाँति थर्रा रहा था। वह खड़ा हुआ... उसकी आँखों में से आँसू गिरने लगे।

‘तुझे बचपन से ही चोरी करने की आदत लगती है... नहीं? तू है कौन? किस नगर का रहनेवाला है? तेरे माता-पिता कौन हैं? शादीशुदा है या कुँआरा है?’

चोर, जो था मन का मोर

२७५

अमरकुमार ने सिसकियाँ भरते हुए अपना परिचय दिया :

‘महाराजा, मैं चंपानगरी के धनावह सेठ का एकलौता बेटा अमरकुमार हूँ। चंपा की ही राजकुमारी सुरसुंदरी और... मैं हम दोनों साथ-साथ ही अध्ययन करते थे। एक दिन मजाक में मैंने उसे पूछे बगैर उसके आँचल में बँधी हुई सात कौड़ियाँ ले ली और सब को मिठाई बाँटी। उसने मुझे काफी खरी-खोटी सुनायी। मैंने मौन रहकर सब कुछ सुन लिया। पर मैंने अपने मन में इस घटना की गाँठ लगा ली। फिर तो किस्मत से हमारी शादी हुई। हम परदेश जाने के लिए निकले। रास्ते में यक्षद्वीप आया। और पुरानी कीनाकशी को याद करके मैंने उसे वहाँ पर अकेली निद्रावस्था में छोड़ दिया। उसकी साड़ी के छोर पर सात कौड़ियाँ बाँधकर लिख डाला कि ‘सात कौड़ियों मैं राज ले लेना।’

‘ओह... अरे...! उस बेचारी का क्या हुआ होगा? मुझे कैसी दुर्बुद्धि सुझी? उस द्वीप पर कोई भी आदमी नहीं मिलता था... और वहाँ का यक्ष भी बड़ा क्रूर था!!’

‘तो क्या तुम्हें जरा भी दया नहीं आयी... इस तरह अपनी अबला पत्नी का त्याग करते हुए?’ विमलयश ने सवाल किया।

और अमरकुमार फूट-फूटकर रो पड़ा। रोते-रोते वह बोला :

‘मैंने स्त्री-हत्या का घोर पाप किया है। मैंने विश्वासघात किया, धोखा दिया। मैं महापापी हूँ। वह मेरे पाप इसी भव में उदित हुए हैं आज। महाराज, मुझे आप सूली पर चढ़ा दिजिए... मुझे जीना ही नहीं है!!!’

‘अमरकुमार, तुम्हारी वह पत्नी थी कैसी, वह तो बताओ ज़रा?’

‘महाराजा, मैं क्या बयान करूँ? उसमें अगिनत गुण थे। रूप में तो वह उर्वशी थी... रंभा थी... मैं अपने मुँह क्या अपनी पत्नी की प्रशंसा करूँ? परंतु...’

‘तुम्हें अपनी उस पत्नी की याद तो सताती होगी न?’

‘पल-पल याद आती है महाराजा, उसको छोड़ देने के बाद एक भी रात ऐसी नहीं गुज़री है कि मैंने उसकी यादों में खोया-खोया रोया न होऊँ!’

‘तो क्या उसको तुमसे कम प्रेम था?’

‘प्रेम? वह मेरे लिए चकोरी थी... मैं उसके लिए चकोर था। हमारी प्रीत अभेद्य थी, अच्छेद थी।’

‘तो फिर टूट क्यों गयी?’

चोर, जो था मन का मोर

२७६

‘प्रीत टूटी नहीं है... प्रीत तो अखंड है!’

‘इसका सबूत क्या?’

‘मैंने अन्य किसी भी औरत के साथ शादी न करने का संकल्प किया है।’

‘तो क्या तुमने बारह साल में किसी स्त्री के साथ शादी नहीं की है।’

‘की भी नहीं है और भविष्य में करनेवाला भी नहीं हूँ!’

‘तब तो तुम्हारी प्रीत सच्ची है, अमरकुमार! एक बात पूछूँ? मान लो कि कोई आदमी तुम्हें तुम्हारी अपनी पत्नी के समाचार दे तो... क्या नाम बताया था तुमने अपनी पत्नी का?’

‘सुरसुंदरी!’

‘वाह, कितना बढ़िया नाम है!’ वह सुरसुंदरी जिंदा है और अमुक जगह पर है। तो क्या करोगे तुम?’

‘महाराज, ये सारी बातें पूछकर अब आप मुझे क्यों ज्यादा दुःखी कर रहे हैं? वह जिंदा हो ही नहीं सकती! उस यक्षद्वीप पर रात रहनेवाला सबेरे का सूरज देखता ही नहीं है कभी।’

‘फिर भी मान लो कि तुम्हारी पत्नी अपने पुण्य के बल से, उसके शील-सतीत्व के प्रभाव से जिंदा रही हो तो...???’

‘तो... तो मैं अपना परम सौभाग्य मानूँगा... वह जहाँ पर भी हो... जाकर उसके चरणों में सिर रख दूँ... क्षमा माँगूँगा मेरे अपराधों की...पर वह सब कोरी कल्पना है, महाराज!!!’

‘यह तो अमरकुमार... तुम खुद अभी दुःख में फँसे हो... आफत में घिरे हो... इसलिए इतनी नम्रता बता रहे हो... ऐसा मानूँ तो?’

‘सही ख्याल है आपका... आप मेरी बात सच मान ही नहीं सकते? चूँकि मैं आपका गुनहगार हूँ न?’

‘नहीं, ऐसा तो नहीं... तुम अपराधी हो इसलिए तुम्हारी बात गलत मान लूँ, वैसा मैं नहीं हूँ। पर आदमी का ऐसा स्वभाव होता है कि दुःख में नम्र रहता है... और दुःख के जाने पर फिर अभिमान का पुतला बन जाता है! तुम अभी तो अपनी पत्नी से क्षमा माँगने की बात कर रहे हो... उसे याद कर करके आँसू बहा रहे हो... पर उसके वापस मिल जाने पर फिर से उसके साथ अन्याय नहीं करोगे, इसका क्या भरोसा?’

चोर, जो था मन का मोर

२७७

अमरकुमार मौन रहा कुछ पल, कुछ सोचकर वह बोला :

‘दूसरे आदमी को तो शब्दों से ही भरोसा दिया जा सकता है, महाराज! हृदय को तो बताया भी कैसे जाए? परंतु महाराज, आप मेरी जिंदगी की निजी बातों में इतनी रूचि दिखा रहे हैं, वही मेरे लिए तो बड़ी बात है। मेरे पापों का फल तो मुझे यहीं पर मिल जाएगा... अब तो मुझे उसका दुःख भी नहीं होगा!’

‘अमरकुमार, मैं तुम्हारी निजी जिंदगी में इसलिए इतनी रूचि दिखा रहा हूँ... चूँकि तुम्हारी पत्नी मेरे पास है... मेरी शरण में है!’

अमरकुमार की आँखे आश्चर्य से चौड़ी हो गयी। वह खड़ा हो गया... उसने विमलयश के दोनो कंधो को पकड़ लिया और कहा :

‘महाराज, कहाँ है मेरी पत्नी...? कहीं आप मेरे जले घाव पर नमक तो नहीं छिड़क रहे हैं? महाराजा बताइए... मुझसे कहिए... मुझ पर कृपा कीजिए! मेरे महाराजा... दया कीजिए...’

अमरकुमार फफक-फफककर रो पड़ा। विमलयश ने कहा :

‘कुमार, तुम यहीं पर बैठो। मैं तुम्हारी पत्नी को कुछ देर में तुम्हारे पास भेज देता हूँ... परंतु अब मैं तुमसे फिर कभी नहीं मिलूँगा।’

विमलयश शयनकक्ष के समीप के कमरे में गया। पद्मासनरथ बैठकर ‘रूपपरिवर्तिनी’ विद्या का स्मरण किया। और वह सुरसुंदरी बन गया।

मंजूषा में से सुंदर वस्त्र-अलंकार निकाले। सोलह श्रृंगार सजाए... बैठकर श्री नवकार मंत्र का जाप किया। उसका दिल आह्लाद की अनुभूति से भर आया। और उसने जहाँ पर अमरकुमार बैठा हुआ था उस कमरे में प्रवेश किया।

फटी-फटी आँखों से... फड़कते हुए दिल से अमरकुमार ने सुरसुंदरी को देखा। दोनों के नैन मिले। अमरकुमार दरवाज़े की ओर दौड़ा... और दोनो हाथ जोड़कर सुरसुंदरी के चरणों में झुकने को जाता है... इतने में तो सुरसुंदरी ने उसके दोनों हाथ पकड़ लिए... उसे झुकने नहीं दिया... अमरकुमार की आँखों में से आँसुओं के बादल बरसने लगे। दूर कहीं पर रात की खामोश हवा को थपथपाती हुई चौकीदार की ‘सब सलामत’ की ध्वनि कौंधी...।



४१. एक अस्तित्व की अनुभूति

‘नाथ! आप क्षमा न माँगे... आपको क्षमा माँगनी नहीं है।’

‘सुंदरी, मैंने तेरा कितना बड़ा विश्वासघात किया है। तेरा अक्षम्य अपराधी हूँ... मैंने तुझे मौत के द्वीप पर असहाय स्थिति में छोड़ दिया... तू मेरे अपराधों को क्षमा कर दे... मैं सच्चे दिल से क्षमायाचना करता हूँ...। तू सचमुच ही महासती है...। तेरे सतीत्व के बल पर ही तू जिंदा रही है...। तेरा पुण्यबल प्रकृष्ट है...। मैंने तो तुझे दुःख देने में कोई कसर नहीं रखी... पर तेरे अग्नित पुण्यों ने तुझे बचा लिया...। तू सुखी बनी...। पर मुझे बता सुरसुंदरी, तूने ये बारह साल कैसे गुज़ारे? न जाने कितनी यातनाओं में से तू गुज़री होगी...? कैसे कैसे कष्ट तुझे झेलने पड़े होंगे...। मैं तो कल्पना भी नहीं कर सकता...। यह सब हुआ भी मेरे कारण!’

अमरकुमार का स्वर आँसुओं से सिक्त था।

रात का तीसरा प्रहर पूरा हो गया था। चौथा प्रहर प्रारंभ हो चुका था। सुरसुंदरी ने स्वस्थ होकर, यक्षद्वीप से लगाकार एक के पश्चात एक घटनाएँ सुनानी आरंभ किया। अमरकुमार सुरसुंदरी की तरफ टकटकी बाँधे हुए... ऊँची साँस से सुन रहा है सब कुछ! यक्षराज को वंदना करता है मन ही मन... तो धनंजय और फानहान की पाशविकता पर थूकता है...। चोरपल्ली में प्रगट हुई शासनदेवी की कृपा पर मुग्ध हो उठता है।

रत्नजटी से मिलना... नंदीश्वर द्वीप की यात्रा... सुरसंगीतनगर मे रत्नजटी और उसकी चार पत्नियों के निर्मल स्नेह की बातें करते-करते तो सुरसुंदरी रो पड़ी। अमरकुमार की आँखें भी गीली हो गयी। रत्नजटी की चार पत्नियों के द्वारा दी गयी चार विद्याएँ... बेनातट नगर में आकर धारण किया हुआ पुरुष रूप...। ‘विमलयश’ नाम यह सब सुनकर तो अमरकुमार दंग रह गया! आश्चर्य से स्तब्ध हो गया!

‘तो क्या विमलयश वह तू ही थी?’ अमरकुमार की उत्सुकता पूछ बैठी।

‘जी हाँ... स्वामीनाथ! मैं ही विमलयश था!’

और गुणमंजरी के साथ की हुई शादी की बात सुनकर तो अमरकुमार हँस पड़ा। राज्य प्राप्ति की बात सुनकर प्रफुल्लित हो उठा।

एक अस्तित्व की अनुभूति

२७९

‘नाथ... आपका वचन मैंने पूरा कर दिया है। सात कौड़ियों से राज्य ले लिया है... अब फिर याद मत कराना...!’

‘सचमुच... श्री नवकार मंत्र का प्रभाव अचिंत्य है।’

‘हाँ... उसी महामंत्र के प्रभाव से ही सारे दुःख टल गये... सुख मिले... यश फैला और तुम्हारा मिलना हुआ।’

‘ये सारी तेरी अपूर्व श्रद्धा एवं सतीत्व के अद्भुत चमत्कार हैं।’

अरिहंत परमात्मा की कृपा है... भगवान पंचपरमेष्ठी का अनुग्रह है... नाथ! पर... अब आपको मेरी एक प्रार्थना स्वीकार करनी होगी।’

‘माननी ही पड़ेगी न हर बात भाई... महाराज की बात न मानूँ तो अपनी तो खैर नहीं रहेगी!’

‘नाथ... मैं अपने गुनाहों की माफी चाहती हूँ। मैंने आप पर चोरी का आरोप रखा... आपको सताया... मेरे पैरों में आप से घी मलवाया... आप मेरे इन अपराधों को भुला देंगे ना?’

‘नहीं रे... बचपन का तेरा छोटा-सा भी अपराध बरसों तक नहीं भूल सका, तब फिर ये सारे अपराध कैसे भुला दूँगा? वापस तेरा त्याग करके चला जाऊँगा।’

‘अब तो जाने ही नहीं दूँगी ना...? अदृश्य होकर पीछा करूँगी।’

‘ओह, बाप रे... अब तो तुझे जरा भी सताया नहीं जा सकेगा... चार-चार विद्याएँ तेरे पास हैं... और सौ हाथियों की ताकत!’

‘घबराना मत... उस चोर पर जैसा मुष्टिप्रहार किया... वैसा नहीं करूँगी...! पर अब यदि मुझे परेशान करोगे तो मैं अपने भाई को बुला लूँगी...!’

‘अरे... मैं तो भूल ही गया यह बात! हम चंपानगरी पहुँचे, तब तू अवश्य अपने उन उपकारी भाई-भाभियों को अपने यहाँ आने का निमंत्रण भेजना। मैं भी उनके दर्शन करके कृतार्थ बनूँगा... ‘बहुरत्ना वसुंधरा...’

अभी तो मैंने सुरसंगीत नगर की सारी बातें कहाँ है की जब वे बातें आप सुनेंगे तो आप भावविभोर हो उठेंगे! पर सब बातें मैं आपसे तब कहूँगी जब कि आप मेरे अपराधों को क्षमा कर देंगे!!!

‘मिच्छामि दुक्कडं’

‘मिच्छामि दुक्कडं’

एक अस्तित्व की अनुभूति

२८०

दोनों ने आपस में क्षमायाचना कर ली... सुरसुंदरी ने अमरकुमार से कहा :
 'नाथ, प्रभात में मैं 'विमलयश' होऊँगी... महाराजा को आपका सच्चा परिचय देना होगा। मेरा भेद भी उनके समक्ष खोलना होगा। गुणमंजरी को भी सारी परिस्थिति का परिचय देना होगा!'

'और नगर में भी तो सबसे मिलना होगा न? मुझे चोर से साहुकार बनाना होगा न?'

'हाँ... वह आरोप भी उतारना होगा...!!' दोनों हँस दिये मुक्त मन से।

सुरसुंदरी ने पद्मासन लगाकर रूपपरिवर्तिनी विद्या का स्मरण किया। वह पुरुष रूप में बदल गयी... उसने वस्त्र-परिवर्तन कर लिया।

प्राभातिक कार्यों से निपटकर, अमरकुमार के साथ दुग्धपान करके विमलयश महाराजा गुणपाल से मिलने के लिए राजमहल पहुँचा। महाराजा भी प्राभातिक कार्यों से निपटकर बैठे हुए थे। विमलयश ने महाराजा को प्रणाम किया और उनके समीप बैठ गया।

'उस परदेशी सार्थवाह की बात तो मुझसे गुणमंजरी ने की! चोर निकला साहुकार के भेष में!'

'महाराजा, मैं उसी विषय में आप से बात करने आया हूँ।'

'कहो... और क्या विशेष समाचार है उस चोर के बारे में?'

'वह सचमुच चोर नहीं है...। मैंने जान-बूझकर उसे 'चोर' के रूप में पकड़वाया है... मेरे यहाँ चोरी हुई ही नहीं है!!'

'ऐसा क्यों? क्यों इस तरह करना पड़ा?'

'चूँकि उस परदेशी सार्थवाह ने मुझे बारह साल पहले धोखा दिया था। मुझे दुःख दिया था...।'

'तब तो उसे कड़ी सज़ा देनी चाहिए। मैं स्वयं करूँगा उसे सजा।'

'सज़ा तो मैंने दी है। उसने क्षमा भी माँग ली है... महाराजा, वह मेरा स्वजन है...। मैं छद्मवेश में हूँ... सचमुच मैं पुरुष नहीं हूँ... स्त्री हूँ...!'

महाराजा गुणपाल तो ठगे-ठगे से रह गये!!

'क्या बोल रहा है तू विमल?...' महाराजा विमलयश की ओर देखते ही रहे। 'कुछ समझ में नहीं आ रहा है... विमल... तू कुछ साफ़-साफ़ बात कर।'

एक अस्तित्व की अनुभूति

२८१

‘वह परदेशी मेरा पति अमरकुमार है...। मैं उसकी पत्नी हूँ... मेरा नाम सुरसुंदरी है।’

‘तो फिर यह पुरुष वेष... पुरुष रूप...?’

‘विद्याशक्ति है मेरे पास, महाराजा! विद्याशक्ति से मैं मनचाहा रूप बना सकती हूँ...’

‘तो मेरे समक्ष, मेरे देखते हुए तू स्त्री का रूप बना सकेगा? कर दिखा?’

विमलयश ने वहीं पर पद्मासनस्थ बैठकर रूपपरिवर्तिनी विद्या का स्मरण किया...। वह स्त्री-रूप हो गया...। महाराजा भीतर के कमरे में जाकर गुणमंजरी के कपड़े ले आये। विमलयश ने वह वस्त्र धारण कर लिए।

‘ओह... तू तो सचमुच की स्त्री है... पर यह रूपपरिवर्तन क्यों करना पड़ा तुझे?’

‘महाराजा, वह बड़ी दास्तान है, पर आपको तो बतानी ही होगी। मैं इसलिए यहाँ पर अभी आयी हूँ। ताकि आपके मन में मेरे लिए कुछ भी गलतफहमी ना रहे।’

सुरसुंदरी ने अपने नगर, माता-पिता, सास-ससुर वगैरह का परिचय दिया। इसके बाद अमरकुमार के साथ विदेशयात्रा पर निकलना और यक्षद्वीप पर अमरकुमार उसका त्याग करके चला जाना .. तब से लगाकर बेनातट नगर में रत्नजटी का उसे छोड़ जाना -वहाँ तक की सारी बातें कह सुनायी...। महाराजा गुणपाल तो सुरसुंदरी की जीवनकहानी सुनकर स्तब्ध हो उठे।

‘सुरसुंदरी... बेटी, श्री नवकार मंत्र का प्रभाव तो अद्भुत है ही... पर तेरा सतीत्व कितना महान है! उस सतीत्व के प्रभाव से ही तेरे सारे दुःख दूर हुए... सुख आये... राज्य मिला।’

‘महाराज, उस सतीत्व की सुरक्षा नवकारमंत्र के प्रभाव से ही हो पायी। यदि वह महामंत्र मेरे पास नहीं होता, तो मैं जिंदा ही नहीं रहती!!!’

‘तेरी बात बिलकुल सही है बेटी... पर अमरकुमार ने तेरे साथ भयंकर अन्याय किया है!’

‘मेरे ही पूर्वजन्म के पापकर्म उदय को प्राप्त हुए। वरना उन जैसे गुणी पुरुष मेरा त्याग न करते! हर एक आत्मा को अपने किये हुए शुभाशुभ कर्म भुगतेन ही पड़ते हैं। मेरे अशुभ कर्म उदित हुए... और फिर शुभ कर्मों का

एक अस्तित्व की अनुभूति

२८२

उदय हुआ तो रत्नजटी जैसा विद्याधर भाई मिल गया। चार-चार भाभियाँ मिलीं... विद्याशक्तियाँ मिलीं... फिर आप जैसे पितातुल्य महाराजा मिले... गुणमंजरी मिली... और पति से भी पुनः मिलन हो गया।'

'बेटी, तेरा जीवनवृत्तांत सुनकर मेरी नवकारमंत्र के प्रति श्रद्धा सुदृढ़ बनी है... धर्म संबंधी विश्वास अविचल हुआ है।'

'पिताजी, अब एक महत्त्वपूर्ण कार्य करना है...'

'बोल बेटी... तू जो कहे वह करने को मैं तैयार हूँ।'

'गुणमंजरी को समझाना!'

गुणपाल राजा पल भर के लिए गहरे सोच में डूब गये।

'उसे ऐसा महसूस नहीं होना चाहिए कि मैंने उसके साथ छलना की है। मेरी परिस्थिति, स्थिति का वह सहज स्वीकार कर ले आनंद से, तो मुझे भी खुशी होगी। यदि उसे तनिक भी दुःख होगा तो मेरी वेदना का पार नहीं रहेगा।

'तेरी बात सही है... परंतु गुणमंजरी पर मुझे पूरा भरोसा है। वह जब तेरी कहानी सुनेगी तब तुझसे उसका प्रेम शतगुण बढ़ जाएगा। मैंने उसे बचपन से ही गुणानुराग का संस्कार घूँट घूँट कर पिलाया है...। मेरी बेटी गुणानुरागिणी है... उसकी तू जरा भी चिंता मत कर!'

'वह समझ जाएगी... बाद में?'

'उसकी शादी अमरकुमार के साथ करेंगे।'

'मैं भी यही सोच रही थी। हम दोनों बहनें साथ रहेंगी... साथ जिएँगी...। उसे किसी भी तरह की पीड़ा नहीं होने दूँगी!'

'वह तो मुझे भरोसा है ही।'

'तो मैं अब जाऊँ?'

'नहीं... तू थोड़ी देर रुक जा, मैं गुणमंजरी को बुलवाकर अभी ही बात कर देता हूँ...। गुणमंजरी की माँ को बुलवा लेता हूँ।'

'तो मैं तब तक पास वाले कक्ष में बैठती हूँ। आप बात कर लें, बाद में मुझे बुला लेना।'

सुरसुंदरी पास के कक्ष में चली गयी। महाराजा ने गुणमंजरी और महारानी को बुलाकर सारी बात अथ से इति तक सुना दी। गुणमंजरी के आश्चर्य की

एक अस्तित्व की अनुभूति

२८३

सीमा न रही। खुद ने एक औरत से शादी की है, यह जानकर वह सहमी-सी रह गयी। महारानी भी विस्मय से मुग्ध हो उठी।

‘अब मैं सुरसुंदरी को बुलाता हूँ।’

‘क्या वह यहीं पर है?’

‘हाँ...’ महाराजा खड़े हुए। वे पास के कक्ष में जाकर सुरसुंदरी को ले आये। गुणमंजरी और उसकी माँ सुरसुंदरी को देखते रहे... गुणमंजरी... खड़ी होकर सुरसुंदरी से लिपट गयी।

‘तुमने कितनी भयंकर यातनाएँ उठायी है...! पिताजी ने सारी बातें कही है...। मैं तो सुनकर चौंक ही उठी हूँ...। ओह, नवकार मंत्र की महिमा कितनी अगम-अगोचर है...। तुम्हारे सतीत्व का प्रभाव ही अद्भुत है... सचमुच तुम महासती हो!’

गुणमंजरी एक ही साँस में सब बोल गयी। महाराजा ने गुणमंजरी से कहा :

‘बेटी, तेरी शादी अमरकुमार से कर देने का मैंने और सुरसुंदरी ने सोचा है...। तुझे पसंद है ना?’

गुणमंजरी मौन रही। वह सोच में डूब गई।

‘पिताजी, इस सवाल का जवाब मैं कल दूँ तो?’

‘तेरी जैसी इच्छा बेटी... तू जैसे खुश रहे... सुखी हो... वैसे ही मैं करूँगा...। मेरे लिए तो तू ही बेटी है... और तू ही बेटा है!’

सुरसुंदरी सोच में पड़ गयी... ‘उसने जवाब कल देने की बात क्यों कही?’

‘पिताजी, हम दोनों कुछ देर बात कर लें।’

‘हाँ, तुम सोच लो।’ महाराजा और महारानी दोनों वहाँ से उठकर दूसरे खंड में चले गये।

गुणमंजरी सुरसुंदरी के उत्संग में सिर रखकर रो पड़ी...। सुरसुंदरी उसके सिर पर हाथ रखकर उसे सहलाने लगी...। कुछ देर बीती...। सुरसुंदरी ने गुणमंजरी के चेहरे को अपनी हथेलियों में लेते हुए उसकी आँखों में आँखें डालकर पूछा :

‘क्या सोच रही है मंजरी...? पिताजी ने जो कहा... वह तुझे अच्छा नहीं लगा क्या?’

बिदाई की घड़ी आई

२८४

‘तुम महान हो... बारह-बारह साल से पति के विरह की आग में जलती रही हो... अब जब उनका मिलन हुआ है, तब तुम अपना सुख मुझे देने को तैयार हो गयी हो...। नहीं... नहीं... यह नहीं हो सकता! मैं इतनी स्वार्थी कैसे होऊँगी? हाँ... मैं तुम्हें छोड़ूँगी तो नहीं... ठीक है... तुम्हारा रूप बदला है न? तुम्हारी आत्मा तो वही है न? पत्नी के रूप में नहीं तो भगिनी के रूप में तुम्हारी सेवा करूँगी... रोज तुम्हारे दर्शन तो कर लूँगी...।

‘मंजरी, क्या पगली की-सी बातें कर रही है... मैं तुझे अपना कौन-सा सुख दे रही हूँ जो तू इतना सोच रही है? मैं अमरकुमार को बचपन से जानती हूँ...। वह हम दोनों को समान दृष्टि से देखेंगे। तेरे साथ शादी करने के बाद मेरा त्याग नहीं करेंगे। और फिर तुझे मालूम है? तुझे सुखी देखकर मेरा सुख कितना बढ़ जाएगा...!! हम दोनों एक साथ जिएँगे...। तूने अभी उनको देखा कहाँ है? तू उन्हें देखेगी तो शायद मुझे भी भूल जाएगी...!!’

‘तुम्हें भूलूँ? इस जनम में तो क्या... जनम-जनम तक तुम्हें नहीं भुला सकूँगी...। तुम तो मेरे मनमंदिर के देव हो! रूप बदला तो क्या फर्क पड़ता है...? मैंने तो प्यार तुम्हारी आत्मा से, तुम्हारे अस्तित्व से किया है न? मेरा प्रेम शाश्वत रहेगा।’

‘तब मेरी बात कबूल है ना?’

‘तुम कहो और मैं नहीं मानूँ? मैं अस्वीकार करूँ तुम्हारी बात? ऐसा हो सकता है क्या? कभी नहीं! त्रिकाल में भी ऐसा नहीं हो सकता है!’

गुणमंजरी सुरसुंदरी से लिपट गयी... सुरसुंदरी की आँखें खुशी के आँसुओं से छलछला उठीं। गुणमंजरी सुरसुंदरी के उत्संग में अपने दिल की उमड़ती-उफनती भावनाओं को आसुओं के रूप में बहाने लगी...! गुणमंजरी सुरसुंदरी में प्रेम-सहनशीलता और जीवंत त्याग की त्रिवेणी महसूस करने लगी...। सुरसुंदरी गुणमंजरी में अपना ही दूसरा रूप पाने लगी! देह और व्यक्तित्व के उस पार के असीम-अथाह अस्तित्व में दोनों खो गयीं... रम गयीं... डूब गयीं...!!!





बेनातट नगर में उद्घोषित हो गया कि :

‘विमलयश पुरुष नहीं है... स्त्री है!’

‘सार्थवाह अमरकुमार ने चोरी नहीं की है!’

‘विमलयश का असली नाम सुरसुंदरी है!’

‘अमरकुमार सुरसुंदरी के पति हैं!’

‘अमरकुमार को चौंकाने के लिए ही विमलयश ने चोरी का झूठा इलजाम लगाकर पकड़वाया था!’

‘अमरकुमार चंपानगरी के नगरश्रेष्ठी के पुत्र हैं।’

‘सुरसुंदरी चंपानगरी के राजा की बेटी राजकुमारी है।’

‘सुरसुंदरी के पास रूपपरिवर्तिनी विद्या है... अदृश्य हो जाने की भी विद्या है...!’

‘अब गुणमंजरी की शादी अमरकुमार के साथ होनेवाली है।’

घर-घर और गली-गली में... बजारों में और बगीचों में... हर जगह अमरकुमार और सुरसुंदरी की चर्चा होने लगी।

श्री नवकार मंत्र के अचित्य प्रभाव की बातें होने लगी। लोग तरह तरह की बातें करने लगे। अमरकुमार और सुरसुंदरी को देखने के लिए राजमहल में लोगों के झुंड आने लगे। दोनों के रूप-गुण को देखकर सभी खुश हो उठते हैं। प्रसन्न हो जाते हैं।

इस माहौल में मालती सुरसुंदरी से एक मिनट भी एकांत में मिल नहीं पाती है! सुरसुंदरी से मालती की बेसब्री छुपी नहीं है। पर सुरसुंदरी को स्वयं बातें करने की फुरसत कहाँ थी? उसने दो पल मालती को एकांत में बुलाकर कहा :

‘गुणमंजरी की शादी हो जाने दे। फिर शांति से सारी बात बताऊँगी।’ मालती हर्षविभोर हो उठी। वह अपने कार्य में जुट गयी।

अमरकुमार ने सुरसुंदरी से पूछा :

बिदाई की घड़ी आई

२८६

‘यह औरत कौन है?’

सुरसुंदरी ने कहा : ‘पहले मेरी मेज़बान थी... फिर परिचारिका और अब मेरी सहेली कहूँ तो भी गलत नहीं!’

‘बड़ी चतुर और कुशल है! कर्तव्यदक्ष भी है!’

‘हम उसे चंपानगरी ले चलेंगे। पर अभी तो हम दोनों को महाराजा के पास जाना है। आप तैयार हो जाइए...।’

अमरकुमार का प्रफुल्लित हो उठा था। बेनातट में सुरसुंदरी की अपूर्व लोकप्रियता को देखकर वह बड़ा प्रभावित हुआ था। दोनों दंपति तैयार होकर राजमहल में पहुँचे।

महाराजा गुणपाल मंत्रणा-गृह में बैठे हुए थे। अमरकुमार और सुरसुंदरी ने जाकर प्रणाम किये। महाराजा ने बड़े स्नेह से दोनों का अभिवादन किया।

‘आओ... आओ... मैं तुम दोनों की ही प्रतीक्षा कर रहा था!’

अमरकुमार के सामने देखते हुए महाराजा ने कहा :

‘कुमार, तुम्हें तो सुरसुंदरी मिल गयी... पर हमारा तो विमलयश खो गया... हम तो उसे गवाँ बैठे!’ और तीनों खिलखिलाकर हँस दिये।

‘कुमार, तुम्हें मेरे विमलयश ने काफी दुःख दिये, नहीं?’ महाराजा ने सुरसुंदरी के सामने देखते हुए कहा।

‘पिताजी, मैंने अपने अपराधों की क्षमा माँग ली!’

‘और, मैंने कर भी दी क्षमा।’

‘तब तो अच्छा ही हुआ। आपस में ही समस्या का समाधान खोज लिया...! ठीक है, पर कुमार, अब तुम्हें मेरी एक विनती स्वीकार करनी होगी!’

‘महाराजा, आपको विनती करनी नहीं है। ...आज्ञा कीजिए। मैं तो आपके पुत्रतुल्य हूँ।’

‘कुमार... यह तुम्हारी नम्रता है, तुम्हारे गुणों से मैं प्रसन्न हुआ हूँ।’

‘आप आज्ञा कीजिए।’

‘तुम्हें गुणमंजरी के साथ शादी रचानी है!’

अमरकुमार ने सुरसुंदरी के सामने देखा। सुरसुंदरी ने कहा :

‘नाथ, महाराज का प्रस्ताव उचित है। मेरी भी यही इच्छा है... और मैंने

बिदाई की घड़ी आई

२८७

गुणमंजरी को भी मना लिया है।'

अमरकुमार मौन रहा। सुरसुंदरी ने महाराजा से कहा :

'पिताजी, इनकी स्वीकृति ही समझें। आपके प्रस्ताव को भला कैसे टाला जा सकता है?'

'बेटी, तुम दोनों सुयोग्य हो। गुणमंजरी को तुम्हें सुपुर्द करके मैं तो बिलकुल निश्चित हूँ।'

'आप राजपुरोहितजी से शुभतम मुहूर्त निकलवाये, फिर शादी कर दीजिएगा।'

महाराजा का चित्त प्रमुदित हो उठा। अमरकुमार के गुणगंभीर और सौंदर्यसंपन्न व्यक्तित्व से वे प्रभावित हो गये थे। हालाँकि, सुरसुंदरी के साथ हुए अन्याय को जानकर 'मेरी बेटी के साथ तो ऐसा विश्वास-भंग नहीं होगा न?' यह आशंका उन्हें कुरेद रही थी, पर संसार में साहस तो करना ही पड़ता है! आखिर सुख-दुःख का आधार तो स्वयं के शुभाशुभ कर्म ही होते हैं!

अमरकुमार सुरसुंदरी के साथ अपने महल में आया। वह गहरे सोच में डूब गया था। कपड़े बदलकर वह पश्चिम दिशा के वातायन में जाकर खड़ा रहा।

'बड़े गंभीर सोच में डूब गये हो?' सुरसुंदरी ने पीछे से आकर मृदु-मधुर स्वर में पूछा।

अमरकुमार सुरसुंदरी के सामने देखता ही रहा।

'कह दो न। जो भी मन में आया हो... कह दो' सुरसुंदरी का स्वर स्नेह में आप्लावित था।

'तू गुणमंजरी के साथ मेरी शादी करवाकर, इस संसार का त्याग करने का विचार तो नहीं कर रही है न?' अमरकुमार की आँखें गीली हो उठीं। उसका स्वर भी आर्द्र होता जा रहा था।

'नहीं... नहीं... ऐसी तो मुझे कल्पना भी नहीं आ रही है!! अभी आपका मोह... आपका अनुराग छूटा कहाँ है? इतने-इतने दुःख झेलने पर भी वैषयिक सुखों की इच्छा संपूर्ण 'विरमित' नहीं हो पायी है। हाँ, कभी-कभार वैराग्य के भाव उमड़ आते हैं मन के गगन में, पर वे भाव स्थिर नहीं रहते हैं।'

'यह निर्णय करते हुए तुझे डर नहीं लगा?'

'डर? काहे का?'

'गुणमंजरी के साथ शादी करके मैं तुझे शायद भुला दूँ तो?'

बिदाई की घड़ी आई

२८८

‘ओफ! ओह...’ सुरसुंदरी बरबस हँस पड़ी। ‘यह तो आप तब भी कर चुके थे जब गुणमंजरी नहीं थी!! भुला दिया था न मुझे? और देखो, गुणमंजरी तो खुद ही मुझे भुलाने न दे, वैसी है। चूँकि उसने पहले शादी मुझसे रचायी है... समझे?’

‘अच्छा... तो इतना ऐतबार है गुणमंजरी पर!’

‘हाँ, आप नहीं जानते हैं। गुणमंजरी सचमुच गुणों की मंजरी है। उसके संस्कार बड़े उच्च कोटि के हैं। स्त्रीसुलभ ईर्ष्या या छिछलापन उसमें ज़रा भी नहीं है! प्रेम के वास्तविक रूप को उसने समझा है। वह उदार है। विशालहृदय है। वह अपने सुख में सुखी और अपने दुःख में दुःखी होनेवाली सन्नारी है। मैं तो उसे अच्छी तरह जान चुकी हूँ। ऐसी कन्या शायद ही मिले। जितनी गुणी, उतनी ही मासूम...! समझदारी और सूझबूझ में शालीन है, तो व्यवहार में बिलकुल बाल-सुलभ सरलता से संपन्न उसका व्यक्तित्व है!’

अमरकुमार का मन आश्वस्त हुआ। उसके चेहरे पर प्रसन्नता की ज्योति झिलमिला उठी। सुरसुंदरी ने दूर खड़ी हुई मालती को देखा। मालती ने संकेत से भोजन की सूचना दी। अमरकुमार को लेकर वह भोजन-गृह में पहुँची। अमरकुमार को भोजन करवाकर उसने भोजन कर लिया। मालती के सामने मधुर स्मित करती हुई वह अमरकुमार के पास चली गयी। मालती आँखें नचाती हुई मन ही मन बोल उठी : ‘जोड़ी तो जैसे इन्द्र-इन्द्राणी की है!’

सुरसुंदरी ने यक्षद्वीप पर की बातें विस्तार से अमरकुमार को सुनायी। यक्षराजा के उपकारों का वर्णन करते-करते तो वह गद्गद् हो उठी।

इतने में राजमहल से बुलावा आ गया। दोनों तैयार होकर राजमहल में पहुँचे। महाराजा ने प्रेम से दोनों का स्वागत किया। महारानी भी वहीं बैठी हुई थी। सुरसुंदरी ने महारानी के चरणों में नमस्कार किया। अमरकुमार ने भी सिर झुकाकर नमस्कार किया। महारानी ने अमरकुमार को गौर से देखा। रानी का मन प्रसन्न हो उठा।

‘कुमार, राजपुरोहित ने शादी का शुभतम मुहूर्त वसंतपंचमी का दिया है। यानी आज से पाँचवें दिन शादी करनी है।’

‘सुंदर... बहुत बढ़िया... दिन भी निकट ही है।’ सुरसुंदरी बोल उठी।

‘राजपुरोहित कह रहे थे कि दिन शुभतम है।’

‘गुणमंजरी को बताया मुहूर्त के बारे में?’ सुरसुंदरी ने पूछा।

बिदाई की घड़ी आई

२८९

‘नहीं... उसे अब खबर दूँगा।’

‘ठीक है... तब तो... मैं उसी के पास जा रही हूँ। मुहूर्त की सूचना भी दे दूँ। मिल भी आऊँ। आप यहीं पर बातें कीजिए। मैं अभी आयी।’ सुरसुंदरी वहाँ से चलकर गुणमंजरी के कमरे में पहुँच गयी। गुणमंजरी ने प्यार से स्वागत किया। दोनों पलंग पर बैठीं।

‘शादी का मुहूर्त तय हो गया है मंजरी! वसंतपंचमी का!’

‘मेरी तो शादी हो ही गयी है! अब तो मुझे बिलकुल अच्छा नहीं लगता है यहाँ!’

‘अरे पगली... अब तो केवल पाँच दिन का सवाल है।’

‘मेरे लिए तो पाँच दिन भी पाँच साल जितने हैं, इसका क्या!’

‘तो फिर कल से मैं यहाँ आ जाऊँ?’

‘अरे, वाह! तब तक तुम मेरे सिर आँखों पर... लेकिन बाद में उनका क्या? उन्हें तो तुम्हारे बगैर...!!!’

‘ओप्पोह... बारह बरस गुजार दिये मेरे बगैर, तो फिर पाँच दिन ज्यादा! क्या फर्क पड़ेगा?’

‘अरे... बारह बरस बिता दिये वह बात छोड़ो... अब तो एक दिन क्या, बारह घंटे भी बिताना मुमकिन नहीं है।’

मंजरी, तूने उनको देखा है सही?’

‘बिलकुल, चोर के रूप में जब पकड़वाकर मंगवाये गए थे तब दिखे थे न?’ दोनों खिलखिलाकर हंस दीं। मुँह में आँचल दबाये दोनों देर तक हँसती रहीं।

महारानी ने कमरे में प्रवेश किया। कमरे का दृश्य देखकर उनका दिल खुशी के मारे भर आया। उनकी आँखें छलक आयीं। उन्हें लगा कि मेरी बेटी सुरक्षित हाथों में है।

वसंतपंचमी के शुभ दिन गुणमंजरी की शादी अमरकुमार के साथ धूमधड़ाके से हो गयी। महाराजा ने गुणमंजरी को ढेर सारी संपत्ति दी। आखिर इकलौती बेटी थी... लाड़ली थी... जान से भी ज्यादा प्यारी थी!

अमरकुमार गुणमंजरी और सुरसुंदरी के साथ अपने महल में आया। महल में भी सभी से मिलकर आनंद का उत्सव मनाया।

बिदाई की घड़ी आई

२९०

सुख में दिन को पंख लग जाते हैं। समय इतनी जल्दी से सरकता रहा जैसे कि चट्टान पर से बहता पानी! अमरकुमार दोनों पत्नियों के साथ सुख-भोग में डूब गया है...। एक दिन दोनों पत्नियों के साथ रथ में बैठकर वह समुद्र के किनारे घूमने के लिये गया। वहाँ किनारे पर उसने अपने जहाज़ लंगर डाले पड़े हुए देखे...। उसके मन में यकायक चंपानगरी की स्मृति हो आई। माँ-पिताजी... सब की याद मँडराने लगी दिल के आकाश में! उसने सुरसुंदरी से कहा :

‘चंपा की तरफ कब प्रयाण करेंगे?’

‘जब आपकी इच्छा हो, तब!’

‘तो मैं आज ही महाराजा से बात करता हूँ...। वे इजाज़त दें, फिर हम प्रयाण की तैयारी करें...।’

‘सुरसुंदरी के मनोगगन में चंपा उभरी... माता-पिता, सास-ससुर की स्मृति उभरी। साध्वी सुव्रता की याद आ गयी...। अपने आप उसके दोनों हाथ जुड़ गये... सिर झुक गया।

‘किसे प्रणाम कर रही हैं आप?’ गुणमंजरी ने सुरसुंदरी के दोनों हाथों को अपने हाथों में लेते हुए पूछा। सुरसुंदरी ने गुणमंजरी की ओर देखा :

‘मेरी गुरुमाता को... मंजरी!’

‘कौन हैं वे?’

‘साध्वीजी हैं...। उनकी आँखों में से करुणा का झरना झरता है। उनकी वाणी में सुधा झरती है...। मुझे श्री नवकारमंत्र का स्वरूप उन्होंने ही समझाया था! रहस्य भी उन्होंने ही बताया था। श्रद्धा की अक्षय और अनगिनत ताकत भी उन्होंने दी थी!’

‘हमें चंपा में उनके दर्शन होंगे?’

‘यदि अपनी खुशकिस्मती होगी तो! अन्यथा जिनशासन के श्रमण-श्रमणी एक स्थान पर रहते नहीं हैं। विचरते रहते हैं। घूमते रहते हैं...। यदि हमको मालूम पड़ेगा तो हम वह जहाँ भी होंगे वहाँ चलेंगे। उनकी वंदना करेंगे। मैं तो उनका ऋण अभी अदा नहीं कर सकती। यदि उन्होंने मुझे नवकार मंत्र नहीं दिया होता तो?’ सुरसुंदरी की आवाज़ भावकुता से भीगने लगी थी।

सुरसुंदरी ने गुणमंजरी को अपनी माँ रतिसुंदरी का परिचय दिया।

बिदाई की घड़ी आई

२९१

पिता रिपुमर्दन राजा की पहचान दी। प्यार भरी सासु धनवती के गुण गाये। ससुरजी श्रेष्ठी धनावह का परिचय दिया। चंपानगरी के बारे में बातें बतायी... और-धीरे धीरे सुरसुंदरी अपने बचपन की यादों के दरिये में खींच ले गयी गुणमंजरी को। जी भरकर दोनों बतियाने लगी! अमरकुमार आँखें मूँदकर सुरसुंदरी के उदात्त और उन्नत व्यक्तित्व को आँकने लगा। उसे अपना व्यक्तित्व छिछला लगा... उथला लगा...!!!

‘महाराजा, बेनातट में काफी दिन गुज़र गये...! समय इतनी जल्दी गुज़रा... कुछ पता ही नहीं चला। अब आप इजाज़त दें, तो हम चंपानगरी की ओर प्रयाण करें। माता-पिता से मिलना भी ज़रूरी है। बारह-बारह बरस बीत चुके हैं। इस बीच कितना कुछ बन चुका... बिगड़ चुका। अब तो जल्द से जल्द मन माता-पिता को देखने के लिए बेताब हो रहा है!’

अमरकुमार ने महाराजा गुणपाल के समक्ष अपनी मनोकामना व्यक्त की।

‘कुमार, स्नेह के रिश्ते बँध जाने के बाद, मन जुदाई की पीड़ा महसूस करने से कतराता है। पर दुनिया का भी तो रिवाज है... ‘बेटी तो ससुराल में ही...’ उस व्यवहार का उल्लंघन करना भी मैं नहीं चाहता!’

महाराजा का दिल भर आया। वह ज्यादा कुछ भी बोल नहीं पाये। अमरकुमार ने भी ज्यादा कोई बात नहीं छोड़ी।

महाराजा गुणपाल ने महारानी से बात की। बेटी के वियोग की कल्पना से ही रानी तो दुःखी हो उठी। राजा-रानी दोनों उदास हो गये। फिर भी बेटी को बिदा तो करना ही था...। आज नहीं तो कल...! राजा-रानी ने सीने पर पत्थर रखकर तैयारियाँ प्रारंभ करवा दी।

अमरकुमार ने भी प्रयाण की तैयारी चालू की। नगर में बात फैलते देर नहीं लगी कि अमरकुमार सुरसुंदरी और गुणमंजरी के साथ चंपा की ओर प्रयाण करनेवाले हैं! पूरे बेनातट पर मानो बिजली गिरी। लोगों के लिए बड़ा अजीब वातावरण खड़ा हो गया। वैसे भी उनका प्रिय व्यक्ति विमलयश तो चला ही गया था। अब सुरसुंदरी... गुणमंजरी भी चली जाएँगी। लोगों के झुंड के झुंड आने लगे मिलने के लिए... मनाने के लिए!

‘मत जाओ हमारे राजकुमार... मत जाओ हमारी राजकुमारियों... तुम्हारे बिना यह बेनातट बेजान हो जाएगा। यह हँसता-खिलता बाग सदा सदा के लिए मुरझा जाएगा!!!’

बिदाई की घड़ी आई

२९२

राजा-रानी दोनों अमरकुमार के महल में आये। अमरकुमार और सुरसुंदरी ने बड़े आदर से सत्कार किया।

‘कुमार, मैंने मृत्युंजय को सूचना दे दी है... तुम्हारी चंपायात्रा की जिम्मेदारी उसी के सुपुर्द की है। तुम्हारे २० जहाज़ों को सुसज्जित कर दे... और साथ में अन्य १० जहाज़ भी तैयार करें। मृत्युंजय स्वयं सौ सैनिकों के साथ चंपानगरी तक साथ आएगा। उसकी भी प्रबल इच्छा तुम्हारे साथ आने की है।’ महाराजा ने सुरसुंदरी की ओर देखकर कहा :

‘बेटी, तेरे बिना तो अब जीना भी कैसा लगेगा? तेरे विरह का दुःख कैसे सहा जाएगा? तेरे कारण तो मेरा नगर समृद्धि के शिखर पर पहुँचा। तू तो वास्तव में उत्तम आत्मा है। तू थी तो हम में भी कितने गुण आ गये तेरी संगति से। न जाने किस जनम का पुण्य था हमारा कि तू हमें मिली। तेरे साथ स्नेह बंध गया... प्रीत हो गयी... पर अब क्या होगा? दिन कैसे बीतेंगे...? किसको देखकर दिल बहलाएँगे...? किसे पूछकर अब हर कार्य करेंगे...? किसके मुँह से मीठे बोल सुनेंगे-? बेटी... तू तो चली जाएगी हम सबको छोड़कर, पर हमारा जीना दुश्वार हो जाएगा!’

सुरसुंदरी फफक-फफक कर रो पड़ी। उसने महाराजा के चरणों में अपना सिर रख दिया। महाराजा गुणपाल की आँखें रो-रोकर लाल हुई जा रही थीं। गुणमंजरी भी सिसक रही थी। महारानी ने गुणमंजरी को अपनी गोद में खिंच लिया। अमरकुमार से यह करुण दृश्य देखा नहीं गया। वह अपने कमरे में जाकर पलंग पर गिरता हुआ रो पड़ा। सारा महल शोक-परिताप... वेदना-और आँसुओं से भर गया। रानी गुणमाला ने भर्रायी आवाज़ में कहा :

‘प्यारी बेटी, मेरी लाड़ली बेटी, मैंने तुझे कभी रुठी हुई देखा नहीं है। मैंने सदा तेरा हँसता - खिलता फूल-सा गुलाबी चेहरा देखकर अपने इतने बरस सुख में गुज़ारे हैं। तू तो मेरी जिंदगी है - मेरी साँसों का तार है - मेरा सर्वस्व है...

बेटी, मेरी लाड़ली, कुछ बातें कहती हूँ तुझसे, उन बातों का पालन करना। बेटी, कभी भी श्री नवकार मंत्र को भूलना मत। पंचपरमेष्ठी भगवंतों का ध्यान करना। अपने दिल में धर्म की स्थापना करना। तू ससुराल जा रही है... तो वहाँ के कुलाचारों का भली-भाँति पालन करना।

गृहस्थजीवन का श्रृंगार है दान। अनुकंपादान देना। सुपात्र को दान देना। बेटी, घर पर आये हुए किसी का तिरस्कार मत करना। किसी को दुत्कारना

बिदाई की घड़ी आई

२९३

नहीं। घर के सभी बड़ों का आदर करना। छोटों के प्रति प्रेम रखना। और सभी को भोजन करवाकर, बाद में भोजन करना।

कभी भी असत्य मत बोलना। कटु वचन किसी से कहना मत। कभी किसी पर गलत इल्जाम मत मढ़ना। सच बोलना... मीठा-मधुर बोलना... कम बोलना, हमेशा सोच-विचारकर बोलना।

‘बेटी... कभी दुर्जनों का संग मत करना। मिथ्यादृष्टि लोगों की बातें मत सुनना। घर में सभी को निर्मल दृष्टि से देखना। ज्यादा क्या कहूँ? मेरी प्यारी बेटी, इस ढंग से जीना कि दोनों पक्ष की-ससुराल-पीहर की शोभा बढ़े... और बेटी... जल्दी ही अपना मुखड़ा वापस दिखाना... मेरी लाइली-गुणवती बेटी’ ...रानी गुणमाला गुणमंजरी को अपने सीने से लगाते हुए रो पड़ी।

अमरकुमार महाराजा के पास आकर गमगीन चेहरे से बैठ गया था। महाराजा ने अमरकुमार की ओर देखा। अमर का हाथ अपने हाथ में लेकर बड़े प्यार से कहा :

‘कुमार, मेरी बातों का ज़रा भी बुरा मत मानना, मन में और कुछ मत सोचना। गुणमंजरी मुझे जान से भी ज्यादा प्यारी है। दूर देश में उसे बिदा कर रहा हूँ। तुम पर पूरा विश्वास है। फिर भी कुमार, तुमसे कहता हूँ, कभी उसका त्याग मत करना। उसका दिल मत दुःखाना।’ बोलते-बोलते महाराजा गद्गद् हो उठे।

‘पिताजी, आप निश्चित रहना, ‘प्राण जाएँगे पर वचन नहीं जाएगा।’ अमरकुमार ने महाराजा को वचन दिया।

‘बेटी सुरसुंदरी,’ सुरसुंदरी को अपने निकट बुलाकर राजा ने कहा : ‘गुणमंजरी तेरे भरोसे पर है।’ बोलते-बोलते राजा ज़ोंरों से रो पड़े। अमरकुमार महाराजा के हाथ पकड़कर अपने कक्ष में ले गया। काफी आश्वासन देकर शांत किया।

भोजन का समय हो चुका था। आज सभी को महाराजा के साथ राजमहल में भोजन करना था। इसलिए सभी राजमहल में पहुँचे। भोजन से निवृत्त होकर सभी बैठे थे, इतने में मृत्युंजय ने आकर समाचार दिये :

‘महाराजा, सभी जहाज़ों को सजाने का काम शुरु है।’ सारा माल-सामान आज शाम तक जहाज़ों में भर जाएगा।’

‘तुम्हारी खुद की तैयारियाँ हो गयीं, मृत्युंजय?’ सुरसुंदरी ने मृत्युंजय की ओर देखते हुए पूछा।

‘जी हाँ, मैं तो चंपानगरी तक आनेवाला हूँ।’

‘और चंपानगरी में हमारा आतिथ्य स्वीकार करके वापस लौटना है ना?’

‘किस के लिए अब यहाँ वापस आना है, देवी? दुनिया में एक मेरी माँ थी... उसका भी कुछ दिन पूर्व ही स्वर्गवास हो गया।’

‘तुम्हें तो यहाँ पर महाराजा की सेवा में रहना है ना?’

‘महाराजा के पास तो मुझसे भी बढ़कर के श्रेष्ठ वीरपुरुष हैं। देवी, मेरा मन तो चंपानगरी में ही रहना चाहता है, यदि महाराजा अनुज्ञा दें तो!’

‘ठीक है, वहीं रह जाना मृत्युंजय, परंतु जब गुणमंजरी को यहाँ आना हो तब तू उसे लेकर आना।’

‘आपकी आज्ञा मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ।’

मृत्युंजय की प्रसन्न मुखमुद्रा देखकर सुरसुंदरी की आंखों में आँसू आ गये।

‘कल सबेरे प्रयाण का मुहूर्त है, मृत्युंजय!’ अमरकुमार ने कहा।

मुहूर्त का ध्यान रखेंगे। संध्या के समय यदि आप पधारकर जरा निगाह डाल दें, तो...।’

सारी तैयारियाँ हो चुकी थी। मालती और उसका पति भी तैयार हो गये थे।

सबेरा हुआ। सुरसुंदरी और गुणमंजरी को बेनातट नगर के प्रजाजनों ने आँसू-भरे भाव से बिदा किया। दिल की अथाह गहराइयों की शुभच्छाएँ दीं। बिदाई की घड़ी में गुणमंजरी माँ से लिपट गयी। सुरसुंदरी ने राजा-रानी को प्रणाम किया। राज्य फिर राजा को सुपुर्द कर दिया। सभी जहाज में बैठे।

‘जल्दी वापस आना... हमें भूल मत जाना... तुम्हें हम नहीं भूल पाएँगे... बेनातट को भुलाना नहीं... हमें याद करना... हम तुम्हारी राह देखेंगे... आना... लौट आना... जल्दी-जल्दी आना...’ के अश्रुपूरित स्वर उभरने लगे और जहाजों ने लंगर उठाया... जहाज़ गतिशील हो गये।

राजा-रानी अपने ज़िगर के टुकड़े को दूर-सुदूर जाते देखकर अपने आप पर काबू नहीं रख सके। दोनों बेहोश... गिर पड़ें। इधर जहाज़ में गुणमंजरी की चीख दबी-दबी-सी उभरी। रुमाल हिलते रहे। हाथ हिलते रहे। दूर-दूर समुद्र के क्षितिज में जैसे जहाज़ समा गये!!



४३. नदिया-सा संसार बहे

जब अमरकुमार के जहाज़ चंपानगरी के निकट पहुँचे, तब अमरकुमार ने एक जहाज़ को संदेश देकर आगे भेजा, समाचार देने के लिए।

संदेशवाहक ने चंपानगरी में पहुँचकर महाराजा रिपुमर्दन और नगरश्रेष्ठी धनावह को अमरकुमार के आगमन का संदेश दिया। राजा और श्रेष्ठी दोनों समाचार सुनकर हर्ष से उत्फुल्ल हो उठे। राजा ने मंत्री को बुलाकर पूरे नगर को सजाने की आज्ञा दी।

नगर के राजमार्गों को पचरंगी फूलों से सजाया गया। जगह-जगह पर सुगंधित धूप सुलगाया गया। रास्तों को स्वच्छ समतल और सुशोभित किया गया। रास्तों पर खुशबूदार भरपूर पानी सिंचवाया गया। प्रजाजनों ने अपने गृह-द्वारों पर तोरण बाँधे, बाज़ारों को सजाया गया।

अमरकुमार परिवार के साथ नगर के बाहरी इलाके में आ गया था। महाराजा और धनावह श्रेष्ठी ने भव्य स्वागत-यात्रा का आयोजन किया था। हज़ारों नगरवासी जन अमरकुमार का भव्य स्वागत करने के लिए नगर के बाहर आ पहुँचे। मंत्रीवर्ग, अधिकारी लोग और श्रेष्ठी, सभी ने अमरकुमार का भव्य स्वागत किया।

अनेक वाद्यों के नाद के साथ अमरकुमार ने नगरप्रवेश किया। महाराजा के द्वारा भेजे गये भव्य स्वर्णरथ में वह बैठा। अगल-बगल में ही रंभा और उर्वशी जैसी सुरसुंदरी और गुणमंजरी बैठीं। चंपानगरी के राजमार्ग पर से शोभायात्रा गुज़रती हुई राजमहल की ओर आगे बढ़ने लगी। मंगल गीत गाये जा रहे थे। अक्षत और पुष्पों से नगर की स्त्रियाँ बधाई दे रही थीं।

नगर के प्रमुख श्रेष्ठीगण मूल्यवान भेंट-सौगातें दे रहे थे। कुशलपृच्छा करते थे। अमरकुमार विनम्रता से हाथ जोड़कर उनका अभिवादन कर रहा था। अमरकुमार का विपुल वैभव उसके पीछे ही वाहनों में आ रहा था। मृत्युंजय घोड़े पर सवार होकर सौ सैनिकों के साथ आगे चल रहा था। मालती दोनों हाथों में दिव्य पंखे लेकर अमरकुमार के पीछे रथ में खड़ी थी।

सारी चंपानगरी उत्सव से पगलायी जा रही थी। शोभायात्रा राजमहल पहुँची। महाराजा रिपुमर्दन महल की सीढ़ियाँ उतरकर नीचे आये। अमरकुमार

नदिया सा संसार बहे

२१६

का स्वागत किया। सुरसुंदरी और गुणमंजरी ने रथ में से उतरकर महाराजा के चरणों में प्रणाम किया। रिपुमर्दन ने दोनों के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिये। बरसों के बाद बेटी को देखकर उनकी आँखें हर्षाश्रु से भर आयीं।

तीनों महल में गये। रानी रतिसुंदरी अपनी बेटी और दामाद को देखकर खुशी से झूम उठी। सुरसुंदरी ने संक्षेप में गुणमंजरी का परिचय दिया। रतिसुंदरी ने गुणमंजरी को अपने उत्संग में लेते हुए उसे वात्सल्य से सराबोर कर दिया।

राजा-रानी से मिलकर तीनों धनावह श्रेष्ठी की हवेली पर जाने के लिये रथ में बैठे। हवेली के द्वार पर ही धनावह श्रेष्ठी खड़े थे। जैसे ही रथ हवेली के द्वार पर जाकर खड़ा रहा... अमरकुमार रथ में से कूदा और सीधा अपने पिता के चरणों में लेट गया। सेठ बेटे को सीने से लगाते हुए प्रसन्नता से छलक उठे। सुरसुंदरी और गुणमंजरी ने भी सेठ को प्रणाम किया। तीनों को साथ लेकर सेठ ने हवेली में प्रवेश किया।

सेठानी धनवती दौड़ती हुई आई। अमरकुमार माँ के चरणों में दण्डवत् लेट गया... सुरसुंदरी और गुणमंजरी ने भी धनवती के चरणों में सिर झुकाया। धनवती ने वात्सल्य से आशीर्वाद दिए...। गुणमंजरी को सूचक दृष्टि से देखकर सवाल-भरी निगाहों से सुरसुंदरी को देखा...। सुरसुंदरी ने मुस्कराते हुए कहा :

‘माँ, यह आपकी दूसरी पुत्रवधू है। बेनातट के महाराजा गुणपाल की लाड़ली बेटी गुणमंजरी है।’

धनवती का दिल आनंद से बल्लियों उछलने लगा। उसने गुणमंजरी को अपनी तरफ खींचते हुए अपनी गोद में लेकर उसको स्नेह से भर दिया...। गुणमंजरी को लगा कि सास के रूप में मेरी अपनी माँ मुझे मिल गई है।’ वह हर्ष से नाच उठी।

धनवती अपने लाड़ले को बरसों बाद निहार रही थी। बारह-बारह बरस का दीर्घ समय गुजर चुका था। एक रात या एक दिन भी आँखों से दूर न होनेवाला बेटा विदेशयात्रा करके बारह बरसों के बाद लौटा था!

अमरकुमार ने धनावह श्रेष्ठी से कहलाकर याचकों को खुले हाथों दान दिया। नगर के सभी देवमंदिरों में उत्सव मनाये गये। आठ दिन तक नगर के

तमाम प्रजाजनों का भोजन-समारोह घोषित किया गया।

आज सपरिवार धनावह श्रेष्ठी का महाराजा के वहाँ राजमहल में भोजन का निमंत्रण था। नित्यकर्म से निपटकर मध्याह्न के समय सभी राजमहल में पहुँचे। अद्भुत स्वजन-मिलन हुआ। अमरकुमार ने मृत्युंजय को अपने साथ ही रखा था। मालती सुरसुंदरी और गुणमंजरी की छाया बनकर चल रही थी। मालती के पति को सुरसुंदरी ने महल में ही एक कमरा दिलवा दिया था।

भोजन इत्यादि से निवृत्त होकर अमरकुमार महाराजा रिपुमर्दन और धनावह श्रेष्ठी के पास बैठा। सुरसुंदरी और गुणमंजरी रानी रतिसुंदरी एवं धनवती के पास जाकर बैठी।

सुरसुंदरी ने गुणमंजरी का सभी से परिचय कराया। बेनातट नगर की बातें कही। गुणमंजरी के माता-पिता के गुणों की भी जी भरकर प्रशंसा की।

अमरकुमार ने अपनी विदेशयात्रा की बातें कही बेनातट नगर में महाराजा गुणपाल के आग्रह से एवं सुरसुंदरी के दबाव से गुणमंजरी के साथ की हुई शादी की बात कही। राजा-श्रेष्ठी दोनों प्रसन्न हो उठे।

‘अमर, तूने महाराजा, गुणपाल को चंपानगरी पधारने के लिए निमंत्रण दिया या नहीं?’

‘ओह... यह बात तो मेरे दिमाग से निकल ही गयी पिताजी!’

‘तब तो शीघ्र ही आमंत्रण भेजना चाहिए।’ महाराजा रिपुमर्दन ने धनावह सेठ के प्रस्ताव का समर्थन किया।

‘अच्छा है, बेनातट से आये हुए सैनिकों को वापस भेजना ही है। उनके साथ निमंत्रण भेज दूँगा।’

‘पर कुमार, उन सुभटों को आठ दिन तक तो चंपानगरी का आतिथ्य स्वीकार करना होगा।

ज़रूर... ज़रूर उन्हें यहाँ रहना अच्छा भी लगेगा।’

‘अब तुम भी आराम करो, कुमार, काफी ज्यादा थके हुए होगे... यात्रा से, लंबी समुद्री यात्रा से!’

सभी खड़े हुए। अपने-अपने स्थान पर चले गये।

दूसरे दिन जब अमरकुमार महाराजा से मिलने के लिये राजमहल में गया तब महाराजा ने अमरकुमार से कहा :

नदिया सा संसार बहे

२९८

‘कुमार... मैं चाहता हूँ... अब तुम रोज़ाना राजसभा में आया करो।’

‘मैं आऊँगा ज़रूर... पर मुझे राजकाज में तनिक भी रुचि नहीं है।’

‘वह रुचि जगानी पड़ेगी... बढ़ानी पड़ेगी। कुमार, चूँकी भविष्य में यह तुम्हें ही सम्हालना है। तुम तो जानते ही हो... कि मेरी बेटी कहो या बेटा कहो... एक सुरसुंदरी ही है।’

‘महाराजा! आपकी बात सही है, परंतु...’

‘परंतु क्या कुमार?’

‘मेरा जीव है व्यापारी का... राजकार्य में मैं कितना सफल हो पाऊँगा... यह मैं नहीं जानता हूँ। पर एक बात है, मेरे साथ बेनातट नगर से मेरा एक दोस्त आया है। वह था तो बेनातट राज्य का मुख्य सेनापति... परंतु हमारी तरफ से प्रगाढ़ स्नेह से प्रेरित होकर वह हमारे साथ आया है। उसका पराक्रम भी अद्वितीय है और बुद्धि में भी वह बृहस्पति की तुलना करे वैसा है। उसे यदि मंत्रीपद दिया जाए तो वह काफी उपयोगी सिद्ध होगा। हालाँकि इस मृत्युंजय के बारे में तो मुझसे ज्यादा जानकारी आपकी पुत्री ही दे देगी।’

‘तुम ठीक कह रहे हो कुमार, हम मृत्युंजय को सेनापति पद और मंत्रीपद, यों दो जिमेदारी सौंप देंगे।’

‘तब तो उसका सही सम्मान होगा।’

‘और हम को एक पराक्रमी और बुद्धिशाली राजपुरुष मिलेगा।’

महाराजा ने सुरसुंदरी के साथ परामर्श करके मृत्युंजय को दोनो पद दे दिये। सुरसुंदरी के साथ मंत्रणा करके मृत्युंजय ने सबसे पहले गरीबों को दान देना प्रारंभ किया। राज्य के अधिकारी वर्ग का दिल जीत लिया। सब के साथ मधुर संबंध बना लिये। राज्य की तमाम परिस्थितियों का अध्ययन किया और राज्य के उत्कर्ष के लिए जी-जान से काम करना प्रारंभ कर दिया।



एक दिन महाराजा ने सुरसुंदरी को विदेश यात्रा के संस्मरण सुनाने का बहुत आग्रह किया। सुरसुंदरी पहले तो आशंका से सहम गयी, पर फिर उसने इस ढंग से सारी बातें कहीं ताकि महाराजा को अमरकुमार के प्रति तनिक भी अभाव या दुर्भाव अनुभव न हो। यक्षद्वीप से लेकर बेनातट नगर में अमरकुमार से फिर मिलन होने तक का सारा वृत्तांत सुनाया।

नदिया सा संसार बहे

२९९

महाराजा रिपुमर्दन तो सुरसुंदरी के सुख-दुःख का इतिहास सुनकर चकित हो गये। श्री नवकार मंत्र के अचिंत्य प्रभाव को जानकर उनके हृदय परमेष्ठी भगवंतो के प्रति दृढ प्रीति-श्रद्धा व्याप्त हुआ। रत्नजटी के प्रति उनके दिल में अपार स्नेह और सद्भाव जगा। गुणमंजरी के साथ शादी की बात सुनकर तो उन्हें हँसी आ गई। कर्मों के विचित्र उदर्यों का तत्त्वज्ञान पाकर वे संसार के प्रति भी वैरागी हो उठे। उनके दिल में अमरकुमार के प्रति न तो अभाव हुआ और न ही नाराजगी रही।

‘पिताजी, कृपा करके ये सारी बातें मेरी माँ को मत कहना... अन्यथा वह बड़ी दुःखी-दुःखी हो उठेगी। उसका कोमल दिल इन बातों को, अपनी बेटी की यातनाओं को झेल नहीं पाएगा! उसे दामाद के प्रति शायद...।’

‘तू निश्चित रहना बेटी, यह बातें मेरे पेट में ही रहेगी! संसार में कर्मवश जीव को ऐसे सुख-दुःख उठाने ही पड़ते हैं। अपने बांधे हुए कर्म हम को भुगतने होते हैं! यह बात मैं कहाँ नहीं जानता हूँ?’



सुरसुंदरी गुणमंजरी का बराबर ध्यान रख रही है। मालती को उसने गुणमंजरी की सार-सम्वहल का कार्य सौंप दिया है।

सुरसुंदरी सबेरे-सबेरे अमरकुमार और गुणमंजरी के साथ ही बैठकर श्री नवकार मंत्र का जाप करती है, पंचपरमेष्ठी भगवंतों का स्मरण करती हैं, गीत-गान रती है। तीनों साथ-साथ जिन-पूजा करने जाते हैं। अमरकुमार ने चंपानगरी के बीचोबीच ही भव्य जिनमंदिर का निर्माण करवाने का कार्य ज़ोरशोर से शुरू करवा दिया। सुरसुंदरी की मनोकामना के अनुसार, चंपा राज्य में गाँव-गाँव में और नगर-नगर में जिनमंदिरों के निर्माण की योजना बना दी गयी। सवा लाख जिन प्रतिमाओं को निर्मित करने के लिए उसने राज्य के श्रेष्ठ शिल्पवास्तु विशारदों को चंपा में निमंत्रित किये हैं। मृत्युंजय के माध्यम से सारे राज्य में किस को क्या दुःख है... किस को क्या ज़रूरत है... इसकी जानकारी प्राप्त करके प्रजाजनों के दुःख दूर करने का कार्य भी प्रारंभ कर दिया है।

सुरसुंदरी और गुणमंजरी की एक-एक इच्छा को पूर्ण करता हुआ अमरकुमार गाँव नगर में और समूचे राज्य में लोकप्रिय हो गया। दान-शील और नम्रता के गुणों में यह ताकत छुपी हुई है।

नदिया सा संसार बहे

३००

कभी सुरसुंदरी और गुणमंजरी के साथ अमरकुमार अलग-अलग तीर्थों की यात्रा करने चला जाता है... कभी उपवनों-बगीचों में जाकर वे सब क्रीड़ा करते हैं। कभी चौपड़ खेलने बैठ जाते हैं।

सुख में तो बरस भी दिन बनकर उड़ जाते हैं... जलकर उड़ते कपूर की भाँति! दिन जैसे पल दो पल का हवा का झोंका बनकर गुज़र जाते हैं! धर्म-अर्थ-काम तीनों पुरुषार्थ का उचित पालन करता हुआ यह परिवार प्रसन्नता-पवित्रता से उमड़ता हुआ जीवन जी रहा है। दान-शील और तप उनके जीवन के श्रृंगार बन गये हैं...। परमार्थ, परोपकार उनके लिए आदत बन गये हैं...। प्रभुभक्ति और पंचपरमेष्ठी भगवंत उनकी साँसों के हर एक तार पर गीत बनकर बस गये हैं! आनंद की लहरों पर गुज़रती जीवन नौका सुखद... वातावरण में चली जा रही है। कई बरस इस प्रकार गुजरते हैं।

फिर एक दिन चंपानगरी में उद्भुत खुशियों का सागर उफनने लगा।

गुणमंजरी गर्भवती हुई। सुरसुंदरी ने गुणमंजरी को बेनातट-नगर भेजने को अमरकुमार से कहा। अमरकुमार ने हामी भर ली। श्रेष्ठी धनावह और राजा रिपुमर्दन भी गुणमंजरी को बेनातट नगर भेजने की तैयारी करने लगे। मृत्युंजय ने सुरसुंदरी से कहा :

‘देवी, गुणमंजरी को लेकर मैं जाऊँगा बेनातट नगर! मैंने महाराजा गुणपाल को वचन दिया हुआ है।’

‘बहुत अच्छा मृत्युंजय, तू साथ रहेगा तो फिर हम पूरी तरह निश्चित रहेंगे।’

‘मैं गुणमंजरी को पहुँचाकर तुरंत लौट आऊँगा।’

‘महाराजा गुणपाल का दिल प्रसन्न रहे... वैसे करना।’

शुभ दिन और शुभ मुहूर्त में अनेक दास-दासियों के साथ गुणमंजरी को लेकर मृत्युंजय ने बेनातट की ओर प्रयाण किया।

एक दिन सुरसुंदरी अपने कक्ष में, संध्या के समय अकेली-अकेली झरोखे में खड़ी-खड़ी सोच रही थी... विचारों की गहराईयों में वह डूबती चली गयी। उसकी अंतरात्मा में शहनाईयाँ बजने लगी थी। जीवन के शाश्वत तत्त्वों का संगीत उभर आया था...!

‘यह जीवन बीत जाएगा...’ बाद में? भव भ्रमण का न जाने कब अंत आएगा? जन्म और मृत्यु न जाने कब पीछा छोड़ेंगे? सुख-दुःख के द्वंद्व न जाने कब मिट जाएँगे?

नदिया सा संसार बहे

३०१

‘मैं रंगरेलियाँ और भोगविलास में डूबी जा रही हूँ... इंद्रियों के प्रिय विषयों को लेकर आनंद मान रही हूँ... कितने चिकने कर्म बंध रहे होंगे? ओह! आत्मन्, कब तू इन वैषयिक सुखों की चाह से विरक्त बनेगी? कब विरागी बनकर शांत... प्रशांत होकर... आत्म ध्यान में लीन हो जाएगी।

‘जानती हूँ... समझती हूँ कि ये वैषयिक सुख ज़हर से कालकूट ,हैं ज़हर से कातिल हैं... फिर भी न जाने क्यों ये सुख अच्छे लगते हैं? परमात्मा से रोजाना प्रार्थना करती हूँ... कि ‘प्रभो, मेरी विषयासक्ति छुड़ा दो... नाथ! मुझे भव वैराग्य दो... मुझ पर अनुग्रह करो... परमात्मन! मैं तुम्हारे चरणों में हूँ... मैं अपने आपको तुम्हारे चरणों में समर्पित करती हूँ...।’

‘हाँ, मुझे परमात्मा से असीम प्रेम है... निग्रंथ साधु पुरुषों के प्रति मुझे श्रद्धा है...। सर्वज्ञ भाषित धर्म मेरा प्राण है। मुझे व्रत-तप अच्छे लगते हैं...। मेरी श्रद्धा क्या एक दिन फलीभूत नहीं होगी?’ क्या मेरी आराधना फलवती नहीं बनेगी?’

सुरसुंदरी आत्ममंथन में लीन थी।

अमरकुमार हौले से कदम रखता हुआ पीछे आकर कब से खड़ा रह गया था। वह धीरे से मृदु स्वर में बोला :

आज किसी गंभीर सोच में डूबी हुई हो, देवी?’

सुरसुंदरी ने निगाहें उठाकर अमरकुमार को देखा... जैसे कि अभेदभाव से देखा... वह देखती ही रही... अपलक... अपलक!!!



४४. सहचिंतन की ऊर्जा

‘आज सुबह में श्री नवकार मंत्र का ध्यान पूर्ण होने के पश्चात् स्वाभाविकतया आत्मचिंतन प्रारंभ हो गया है। आत्मा का अनंत भूतकाल... असीम भविष्य... जन्म... मृत्यु जीवन इन सब पर विचार चले आ ही रहे हैं...।’

‘ये तेरे विचार आजकल के कहाँ हैं...? बरसों के हैं। तू बरसों तक ऐसे विचार करती रही है... और इसी चिंतन ने तो तुझको जीवन जीने का बल दिया है, जोश दिया है। तेरे अति प्रिय विचार हैं ये सारे!’

‘चंपानगरी में आने के पश्चात् ये विचार कभी-कभार ही आते हैं। संसार के सारे सुख मिल गये हैं... न? पिता के वहाँ भी सुख और पति के वहाँ भी सुख ही सुख! पति का पूरा सुख... संपत्ति की भी कमी नहीं...! स्नेही-स्वजनों का सुख और नीरोगी देह का भी सुख है! मेरे पास कौन-सा सुख नहीं है?’

‘एक सुख नहीं है...!’ अमरकुमार ने कसक के साथ कहा।

‘उस सुख की तमन्ना या इच्छा भी नहीं है भीतर में! वह सुख तो बंधन बन जाता है। वह बंधन नहीं है इसलिए तो श्रेष्ठ सुख को प्राप्त करने का रास्ता सहज रूप से खुला है!’

‘यह कैसे? स्त्री के जीवन में संतान का सुख तो कितना महत्त्व रखता है? संतान की इच्छा तो स्त्री में प्रबल होती है न?’

‘पर मुझे वैसी इच्छा ही नहीं है न?’

‘चूँकि तेरे में जिनमंदिरों के निर्माण की, जिनप्रतिमाओं के निर्माण की इच्छाएँ प्रबल हैं न? सुपात्रदान की और अनुकंपादान की इच्छाएँ तीव्र हैं न? इन इच्छाओं की तीव्रता ने उस इच्छा को पैदा ही नहीं होने दिया है!’

‘सही बात है... आपकी! मैं एक-एक नवनिर्मित जिनालय देखती हूँ, एक-एक नयनरम्य जिनप्रतिमा देखती हूँ और मेरा-रोम रोम नाच उठता है... हृदय आनंद से छलक उठता है!’

‘परमात्मतत्त्व के साथ तेरी आंतरिक प्रीत जुड़ गयी है न?’

‘और... अब तो मन उस परमात्मतत्त्व के साथ अभेद मिलन के लिए तरस रहा है। परमात्मा की आज्ञा का यथार्थ पालन करने के मनोरथ पैदा हो रहे हैं... कब वह अवसर आए कि जिनाज्ञाओं का समुचित पालन कर सकें!’

‘हम यथासंभव पालन तो कर ही रहे हैं न?’

‘कितना अल्प? गृहस्थजीवन में कितना पालन हो सकता है? जिनाज्ञा का संपूर्ण पालन चारित्रजीवन में ही संभव है... निर्ग्रन्थ जीवन में ही पूर्णतया पालन हो सकता है।’

‘चारित्रजीवन सरल नहीं है... बड़ा दुष्कर है... बड़ा कठिन होता है वह जीवन!!’

‘फिर भी वह जीवन जीना असंभव तो नहीं है न? हज़ारों स्त्री-पुरुष वैसा जीवन जी रहे हैं न...? तो फिर हम भी क्यों वैसा जीवन नहीं जी सकते?’

‘इसके लिए... ऐसे जीवन के लिए अपूर्व सत्त्व चाहिए!’ ‘वैसा सत्त्व अपने में भी प्रगट हो सकता है!’

‘ज्ञानमूलक वैराग्य चाहिए...!!’

‘आ सकता है वैसा वैराग्य अपने में भी!’

‘इन्द्रियों की उत्तेजना, कषायों की विवशता... और कष्टों को सहने की अक्षमता... लाचारी... ये सब उस वैराग्य को तहस-नहस कर देते हैं।’

‘वैराग्य को स्थिर, दृढ और वृद्धिगत रखने के लिए तीर्थंकर भगवंतों ने अनेक उपाय दर्शाये हैं। यदि ज्ञान में मग्नता हो... बाह्य आभ्यंतर तप में लीनता रहे... ध्यान में तल्लीनता रहे... तो वैराग्य अखंड-अक्षुण्ण रह सकता है।’

‘परंतु राग-द्वेष के प्रबल तूफान उठे तब फिर ज्ञान-ध्यान और त्याग-तप भी कभी नाकामियाब बन जाते हैं, आत्मा को बचाने के लिए।’

‘राग-द्वेष का निग्रह किया जा सकता है, संयम किया जा सकता है, अनुशासित किये जा सकते हैं...।’

‘पर यदि संयम रखने में सफल नहीं हुए तो?’

‘ऐसा डर क्यों! ऐसी आशंका क्यों? जिनाज्ञा के मुताबिक पुरुषार्थ करना, अपना कर्तव्य है...!! फल की चिंता करने से क्या? निष्फलता की तो कल्पना ही नहीं करनी चाहिए... परमात्मा का प्रेम-उनकी भक्ति ही हम में ऐसी शक्ति का संचार करती है कि हम परमात्मा की आज्ञा के पालन के लिए शक्तिमान बन सकते हैं! भक्ति में से अपूर्व शक्ति पैदा होती है।’

अमरकुमार सुरसुंदरी के सामने देखता ही रहा...। उसके चेहरे पर अपूर्व तेज की आभा दीप्तिमान थी। उसकी आँखों में से वैराग्य की गंगा जैसे बह

सहर्षितन की ऊर्जा

३०४

रही थी। अमरकुमार के दिल-दिमाग पर सुरसुंदरी की बातें बराबर असर कर रही थी। चारित्रधर्म-संयमधर्म की गहरी चाह धीरे-धीरे प्रगट हो रही थी।

सुरसुंदरी ने कहा :

‘नाथ, सद्गुरु का योग प्राप्त हो... और संयमधर्म स्वीकार करने तीव्र अभीप्सा जाग उठे तो क्या आप मुझे अनुमति देंगे?’ एकदम मृदु, कोमल और स्नेहार्द्र स्वर में सुरसुंदरी ने पूछा।

‘तो क्या तू अकेली ही चारित्र के मार्ग पर जाने की सोच रही है?’

‘आपके सिर पर तो राज्य की जिम्मेदारी है ना? उसे भी तो वहन करना होगा?’

‘नहीं, तू यदि संसार को छोड़ चले तो फिर मैं संसार में रह नहीं सकता! तेरे बिना संसार मेरे लिए शून्यवत् है।’

‘गुणमंजरी मैं ही हूँ नाथ!’

‘नहीं, गुणमंजरी-गुणमंजरी है, तू-तू है!’

‘गुणमंजरी को आपके प्रति अगाध प्रेम है, आपके चरणों में पूर्णतया समर्पित वह महासती नारी है।

‘सही बात है तेरी, पर मेरे दिल की स्थिति अलग है... मैं उसके बिना जी सकता हूँ, ऐसा मैं महसूस करता हूँ... पर तेरे बिना जीना... किसी भी हालत में संभव नहीं... ऐसा मुझे लगता है। इसलिए यदि चारित्रधर्म को अंगीकार करना होगा तो हम दोनों साथ-साथ ही अंगीकार करेंगे।’

‘मेरे-आपके बिना गुणमंजरी का क्या होगा? उसका भी विचार हमें करना चाहिए ना?’

‘जब वैसा समय आएगा तब सोचना है ना? देखेंगे।’

‘आपकी बात सही है, पर ऐसा अवसर शायद निकट भविष्य में आ जाए, वैसा मेरा मन कहता है।’

‘तो... गुणमंजरी को बुला लेंगे, उसे बात करेंगे, परंतु तू अभी माता-पिता को वैसी कोई बात करना मत!’

‘आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।’ सुरसुंदरी ने मस्तक पर अंजलि रचकर सिर झुकाकर अमरकुमार की आज्ञा को अंगीकार किया।

रात का प्रथम प्रहर पूरा हो गया था। अमरकुमार श्रेष्ठी धनावह से मिलने

सहर्षितन की ऊर्जा

३०५

के लिए अपने कक्ष से चला गया। सुरसुंदरी की स्मृति में रत्नजटी और उसकी चार पत्नियाँ आ गयीं। नंदीश्वर द्वीप और महामुनि मणिशंख उपस्थित हो गये। वह रोमांच से सिहर उठी!

‘यदि हम चारित्र लेंगे, साधुधर्म अंगीकार करेंगे... रत्नजटी को और चारों रानियों को मैं यहाँ आने के लिए निमंत्रण दूँगी...। उनके उपकार को मैं कैसे भूला सकती हूँ? कितना उत्तम वह परिवार है...? गुणों से समृद्ध! निःस्वार्थ प्रेम से लबालब भरा हुआ! मेरे उस धर्मभ्राता को संदेश पहुँचाने वाला कोई मिल जाए तो अभी ही उसे मेरी सुखशांति के समाचार भेज दूँ। पर उस विद्याधरों की दुनिया में जानेवाला कौन मिलेगा?’

सुरसुंदरी को गुणमंजरी का स्मरण हुआ। राजा गुणपाल के शब्द उसके दिल में उभरने लगे : ‘बेटी, गुणमंजरी तेरी गोद में है।’ और सुरसुंदरी विह्वल हो उठी... ‘यदि गुणमंजरी प्रसन्नमन से चरित्र की अनुमति नहीं देगी तो? उसकी उपेक्षा कर के तो मैं उसका त्याग कैसे कर सकती हूँ? और उसे मुझसे प्यार भी तो कितना ज्यादा है? वह किसी भी हालत में मुझे अनुमति देनेवाली नहीं है। यदि वह खुद संतान के बंधन में न बँध गयी होती तो हमारे साथ वह भी चारित्र की राह पर चल देती। परंतु वह तो निकट भविष्य में माँ बननेवाली है।

सुरसुंदरी उलझन में फँस गई। जैसे कि चारित्र लेना ही है - वैसे भावप्रवाह में बहती रही। संसार के असीम सुखों के बीच रही हुई सुंदरी का मन संयम के कष्टों को सहजरूप से स्वीकारने के लिए लालायित हो उठा था।

विचारों से मुक्त होने के लिए उसने श्री नवकार मंत्र का ध्यान किया। स्मरण करते-करते ही वह निद्राधीन हो गयी।

हृदय में वैराग्य के रत्नदीप को जलता हुआ रखकर सुरसुंदरी संसार के सुखभोग में जी रही है। पाँचों इंद्रियों के वैषयिक सुख भोगती है। अमरकुमार के दिल में भी वैराग्य का दीया जल उठा है। वह दीया बुझा नहीं है...। संसार के कर्तव्यों का पालन करते जा रहे हैं। धर्मशासन की प्रभावना के भी अनेक कार्य करते जा रहे हैं।

महीने बीत जाते हैं।

एक दिन बेनातट नगर से राजदूत आया और उसने शुभ संदेश सुनाया :

‘गुणमंजरी ने पुत्ररत्न को जन्म दिया है। माता और पुत्र दोनों का स्वास्थ्य अच्छा है, पुत्र भी खूबसूरत और निरोगी है।’

धनावह श्रेष्ठी ने राजदूत को क्रीमती रत्नों का हार भेंट किया। मंदिरों में उत्सव आयोजित किये गये। भव्य भोजन-समारंभो का आयोजन हुआ। गरीबों को खुले हाथ दान दिये गये।

राजा रिपुमर्दन ने कैदियों को मुक्त कर दिया। समग्र राज्य में महोत्सवों का आयोजन किया गया। प्रजा आनंदित हो गयी।

अमरकुमार ने मृत्युंजय को बेनातट नगर जाने के लिए रवाना किया, गुणमंजरी को पुत्र के साथ चंपानगरी लिवा लाने के लिए।

महाराजा रिपुमर्दन की राजसभा भरी हुई थी। अमरकुमार महाराजा के पास ही सिंहासन पर बैठा हुआ था। राज्यसभा का कार्य शुरू हो गया था। इतने में उद्यान के रक्षक माली ने राजसभा में प्रवेश किया। महाराजा को प्रणाम करके उसने निवेदन किया :

‘महाराजा, ज्ञानधर नाम के महामुनि ने अनेक मुनिवरों के साथ चंपानगरी को पावन किया है। हे कृपावंत, वे महामुनि सूरज से तेजस्वी हैं, चंद्र जैसे शीतल हैं, भारंड पक्षी से अप्रमत्त हैं... उनकी आँखों से कृपा बरस रही है - उनकी वाणी में से ज्ञान के फूल झरते हैं!’

राजेश्वर! ऐसे महामुनि चंपा के बाहरी उपवन में पधारे हुए हैं!’

महाराजा रिपुमर्दन हर्ष से गद्गद् हो उठे! सिंहासन पर से खड़े हुए। बाहरी उपवन की दिशा में सात कदम चलकर उन्होंने महामुनि की भाववंदना की और इसके बाद उद्यानरक्षक को सुवर्ण की जिह्वा भेंट की। अनेक आभूषणों से उसको सजा दिया।

महामंत्री को आज्ञा देते हुए कहा :

‘नगर में ढिंढोरा पिटवा दो कि नगर के बाहरी उपवन में ज्ञानधर महामुनि पधारे हैं। सभी नगरजन उन महामुनि के दर्शन करके पावन हो जाएँ। उनका उपदेश सुनकर धन्य बनें।

हस्तिदल, अश्वदल, रथदल और पदातिसेना को तैयार कराओ... अच्छी तरह सजाओ... राजपरिवार के साथ मैं भी उन पूज्य मुनिभगवंत के दर्शन-वंदन करने के लिए जाऊँगा। राजसभा का कार्य स्थगित कर दो!’

राजसभा का कार्य पुरा हुआ। अमरकुमार और सुरसुंदरी भी महाराजा के साथ जाने के लिए तैयार हुए। श्रेष्ठी धनावह और सेठानी धनवती भी सुंदर वस्त्राभूषणों से सजकर गुरुवंदन के लिए जाने को तैयार हुए।

सहर्षितन की ऊर्जा

३०७

ज्यों-ज्यों नगर में ढिंढोरा पीटता गया त्यों-त्यों हज़ारों स्त्री-पुरुष ज्ञानधर महामुनि के दर्शन-वंदन करने के लिए नगर के बाहर जाने लगे। नगर में आनंद और उल्लास का वातावरण फैल गया।

बाहरी उद्यान-उपवन हज़ारों स्त्री-पुरुषों से भरा जा रहा था। महाराजा रिपुमर्दन राजपरिवार के साथ आ पहुँचे। मुनिराज के दर्शन कर के सभी के मनमयुर नाच उठे। सभी ने मुनिराज की तीन परिक्रमाएँ की। विधिपूर्वक वंदना की। क्षेम-कुशल पूछी। महाराजा ने मुनिराज से प्रार्थना की :

‘गुरुदेव... आपने हमारे नगर को पावन किया है... अब हमें धर्मदेशना देकर हमारे त्रिविध ताप-संताप को शांत करने की महती कृपा करें।’

मुनिराज श्री ज्ञानधर अवधिज्ञानी महामुनि थे। त्रिकालज्ञानी थे। उच्चकोटी के चारित्रधर्म का पालन करते थे। मगधदेश में उनकी ख्याति थी। महामुनि ने धर्मदेशना प्रारंभ की :

‘महानुभावों,

चार गतिमय इस संसार में मनुष्यजीवन मिलना काफी दुर्लभ है। कर्मों के विवश बनी हुई... अनंत-अनंत आत्माएँ इस संसार में परिभ्रमण कर रही हैं। अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक दुःखों से पीड़ित बनती है। जब वैसे विशिष्ट कोटि के पुण्यकर्म का उदय होता है तब जीव को मनुष्य-भव मिलता है। आर्यदेश में जन्म मिलता है। सुसंस्कारशील माता-पिता मिलते हैं।

मनुष्यजीवन में सद्धर्म का श्रवण तो उससे भी कई गुना ज्यादा पुण्योदय से प्राप्त होता है। सद्गुरु का योग प्राप्त होना बड़ा मुश्किल है। उनके मुँह से मोक्षमार्ग का बोध प्राप्त होने के पश्चात् उस बोध पर विश्वास... दृढ़ श्रद्धा होना जरूरी हैं। आत्मा की मुक्ति प्राप्त करने का यही सच्चा रास्ता है।

उस श्रद्धा में से वैसा वीर्योल्लास प्रगट होता है कि मनुष्य चारित्र धर्म का पालन करने के लिए तत्पर बन सकता है। यह मनुष्यजीवन चारित्रधर्म का पालन करने के लिए ही मिला हुआ उत्तम जीवन है।

पुण्यशाली, आत्मा पर लगे हुए अनंत-अनंत कर्मों को तोड़ने का महान पुरुषार्थ चारित्रमय, संयममय जीवन में ही हो सकता है।

संसार के वैषयिक सुख तो हलाहल, कालकूट ज़हर से भी ज्यादा खतरनाक हैं। उन सुखों में लीन नहीं होना चाहिए। सुखों का राग और दुःखों का द्वेष जीव को मोहांध बना देता है। मोहांध बना हुआ जीव अनेक कुकर्म

किये करम ना छूटे

३०८

करता है। अनंत-अनंत पापकर्मों को उपाजित करके नरक इत्यादि दुर्गतियों में भटक जाता है।'

महामुनि की धर्मदेशना पुष्करावर्त्त मेघ की भाँति बरस रही है। श्रोतागण रसनिमग्न बनकर श्रवण कर रहे हैं। अमरकुमार और सुरसुंदरी तो आत्मविभोर हो उठे हैं। उनके दिल में दबी-दबी वैराग्यभावना बहार में आकर खिलने लगी है।

धर्मदेशना पूर्ण होती है। महाराजा रिपुमर्दन खड़े हुए। विनयपूर्वक हाथ जोड़कर सवाल करते हैं :

'गुरुदेव, मेरी लाइली बेटी सुरसुंदरी ने पूर्वजन्म में ऐसे कौन से कर्म किये थे कि जिससे उसे इस जनम में बारह बारह-बरस तक का पति विरह भोगना पड़ा? भयानक कष्टों और संकटों का सामना करना पड़ा?

'गुणनिधि गुरुदेव! आप तो ज्ञानी हैं, हमा पर बड़ी कृपा होगी, यदि आप अपने श्रीमुख से इन बातों को स्पष्ट करने की कृपा करेंगे।'

महाराजा रिपुमर्दन विनयपूर्वक निवेदन करके अपने आसन पर बैठे। सभी के दिल-दिमाग उत्सुकता से एकाग्र बन गये महामुनि के प्रति। गुरुदेव क्या जवाब देते हैं राजा के सवाल का? कईयों को तो राजा के सवाल से ताज्जुब भी हुआ। सभी परिचित नहीं थे सुरसुंदरी के जीवन के उस आँसू-उदासी भरे हिस्से से!

'सुरसुंदरी-अमरकुमार के जीवन में दुःख? वह भी बारह-बारह बरस की जुदाई... सुरसुंदरी का जीवन संकट की खाई में?' कईयों को ऐसी कल्पना से ही कँपकँपी-सा अनुभव हुआ।

इधर सुरसुंदरी स्वयं ही उत्सुक थी अपने पूर्वजन्म के बारे में जानने के लिए। वह यह भी जानना चाहती थी कि इतना कुछ बीतने पर भी अमरकुमार के प्रति उसका दिल जुड़ा हुआ ही क्यों रहा?

अमरकुमार के दिल में पल भर के लिए अपराध भाव की ग्रंथि कौंध उठी... पर उसने अपने मन को सम्हाल लिया।

सभी उत्कंठित थे गुरुदेव की बातों को सुनने के लिए!





महामुनि श्री ज्ञानधर ने आँखे बंद की। अवधिज्ञान के आलोक में सुरसुंदरी के भूतकालीन पर्याय देखे। अमरकुमार को अतीत में देखा। दोनों का रिश्ता देखा... जाना... और आँखे खोलकर रहस्य पर से परदा उठाते हुए वे बोले :

‘राजन, संसार में परिभ्रमण करनेवाले जीव राग-द्वेष और मोह के अधीन बनकर पाप करते रहते हैं; पापकर्मों के पाशों में आवश हो जाते हैं। बाँधते वक्त खयाल रहता नहीं है कि वे पापकर्म जब उदित होते हैं, तब जीवात्मा दुःखी-दुःखी हो जाता है। सुरसुंदरी ने गत जन्म में ऐसे ही पापकर्म किए थे। जिसके फलस्वरूप उसे दुःखों के दावानल में सुलगना पड़ा। लंबी कहानी है, जन्म-जन्मांतर की यात्रा दीर्घ होती है। मैं तुम्हारे सवाल को लक्ष्य करके सुरसुंदरी के गत जन्म की बातें बता रहा हूँ।

सूदर्शन नाम का एक सुहावना नगर था।

वहाँ पर राजा सुरराज राज्य करता था। रेवती नामक उसकी रानी थी। राजा-रानी दोनों में परस्पर प्रगाढ़ प्यार था... प्रीति थी... एक-दूजे के प्रति दोनों पूर्ण वफादार एवं समर्पित थे। देवलोक के इंद्र-इंद्राणी से दिव्य सुख दोनों अनुभव कर रहे थे।

एक दिन की बात है।

राजा-रानी नौकर-चाकर और कुछ सैनिकों को साथ लेकर एक सुंदर वनखंड में क्रीड़ा करने गये। एक रमणीय उपवन के निकट पड़ाव डाल दिया। सैनिक सुरक्षा के इरादे से आसपास तैनात हो गए। राजा-रानी घूमते हुए वन में कुछ दूर निकल गये।

एक घटादार पेड़ के नीचे एक महामुनि को उन्होंने ध्यानस्थ दशा में देखा। मुनि युवावस्था वाले थे। उनके चेहरे पर तपश्चर्या का तेज झिलमिला रहा था। उनके शरीर पर के वस्त्र मलिन से थे। राजा सुरराज ने मुनि के चरणों में मस्तक झुकाया। अंजलि जोड़कर वंदना की और रानी रेवती से कहा :

‘प्रिये, धन्य हैं ये महामुनि! भरी जवानी में महाव्रतों को पालन करनेवाले महामुनि की भावपूर्ण वंदना करो...। कितनी शांत-प्रशांत मुखमुद्रा है इनकी...

किये करम ना छूटे

३१०

एकाग्रचित होकर कैसा ध्यान कर रहे हैं। आज का अपना यह दिन चरितार्थ हो गया... इन महामुनि के दर्शन करके!

‘स्वामिन्, आपकी बात सच है। मुनि एकाग्रचित होकर ध्यान कर रहे हैं... पर इन्हें विचलित करने का कार्य हमारे लिए सरल होता है! रूपवती स्त्री को देखकर बड़े-बड़े जोगी-यति और साधु-संन्यासी भी विचलित हो जाते हैं। कितने ही उदाहरण मिलते हैं!’

‘देवी, चंचल और विचलित हो जानेवाले वे जोगी-यति और होंगे! ये महामुनि तो स्वर्ग में से रंभा या उर्वशी उतर आए, तो भी विचलित नहीं होंगे!’

‘ओहो! अरे, स्वर्ग की रंभा की ज़रूरत क्या है? ज़मीन पर की रंभा ही इन्हें विचलित करने को पर्याप्त है। आपको देखना है तो देखो, मैं इन्हें अभी चुटकी बजाते हुए विचलित कर देती हूँ!’

‘देवी, नादानी मत करो... ये तो योगी हैं योगी! योगी की परख नहीं की जाती। इसमें कुछ नहीं निकलेगा... व्यर्थ अनर्थ हो जाएगा!’

‘अरे देखिए! मैं अभी दिखाती हूँ...!’

रेवती ने मुनि के सामने गीत और नृत्य करना प्रारंभ किया। मुनि के समीप जाकर, सन्मुख जाकर वह नज़रों के तीर फेंकने लगी...। वह ऐसे उत्तेजित हावभाव प्रदर्शित करने लगी जिससे कोई यों ही विचलित-उत्तेजित हो जाए। काफी प्रयत्न किया मुनि को रिझाने का! दो घड़ी, चार घड़ी, छह घड़ी समय बीत गया... फिर भी मुनिराज-ज़रा भी डिगे नहीं!

रेवती ने मुनिराज के हाथ में से रजोहरण ले लिया। मुंहपत्ती ले ली। और मुनिराज का हँसी-मज़ाक उड़ाने लगी...। सताने लगी...। उनसे घृणा करने लगी... और छह घड़ी समय बीत गया। करीबन पांच घंटे का समयट रेवती मुनि को परेशान करती रही... फिर भी मुनि तो निश्चल रहे... निष्प्रकंप रहे, तब राजा ने जाकर रेवती से पुनः कहा :

‘रेवती, अब बस कर! यह कोई ऐरे-गैरे साधु नहीं हैं, ये तो आत्मध्यानी... अपूर्व सत्त्व को धारण करनेवाले योगीपुरुष हैं।’

रेवती भी थक गयी थी। अपनी हार से उसका मन लज्जित हो गया था। मन ही मन उसे पछतावा हो रहा था। इतने में महामुनि ने अपना ध्यान पूरा किया। राजा ने भावपूर्वक वंदना की... और वह मुनिचरणों में बैठ गया। रानी रेवती भी राजा के पास जाकर चुप-चाप बैठ गयी। मुनिराज विशिष्ट ज्ञानी

किये करम ना छूटे

३११

थे। उन्होंने राजा-रानी के उत्तम आत्मद्रव्य को देखा... परखा। उन्हें न तो क्रोध हुआ न किसी तरह की नाराज़गी। समता के सागर जैसे महामुनि ने राजा-रानी को धर्म का उपदेश दिया :

‘राजन्, इस मनुष्य जीवन को सफल बनाने के लिए चार प्रकार के धर्म का आचरण करना चाहिए। सुपात्र को दान देना चाहिए, शील धर्म का पालन करना चाहिए। विविध प्रकार की तपश्चर्याएँ करनी चाहिए और शुभ भावनाओं से भावित बनना चाहिए। इस चतुर्विध धर्म की आराधना करते-करते तुम्हें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र की प्राप्ति होगी।’

मुनिराज के करुण रस से भरे वचन सुनकर राजा-रानी दोनों के दिल प्रफुल्लित हो उठे। राजा ने विनयपूर्वक कहा :

‘गुरुदेव, हमारे अपराध क्षमा करने की कृपा करें। अंतःकरण से क्षमा माँगते हैं और आपसे निवेदन करते हैं कि यहीं पर जंगल में हमारा भी पड़ाव है, आप कृपालु वहाँ पधारकर भिक्षा ग्रहण करें।’

रानी ने मुनिराज के पास उनका रजोहरण और मुँहपत्ती रख दिये थे। मुनिराज, राजा-रानी के साथ उनके पड़ाव पर गये एवं भिक्षा ग्रहण की। रानी रेवती ने भी बड़े उल्लास-उमंग के साथ भिक्षा दी। उनके दिल में उस समय उत्कृष्ट शुभ भाव होने से उसने अनंत-अनंत पुण्योपार्जन कर लिया।

राजा-रानी दोनों नगर में लौटे। मुनिराज के उपदेश को सुनकर चतुर्विध धर्म का यथायोग्य पालन करने लगे।

परंतु रानी ने स्वयं की हुई मुनि की आशातना का प्रायश्चित नहीं किया। दोनों का आयुष्य पूर्ण हुआ। वे दोनों मरकर देवलोक में देव हुए। देवलोक का आयुष्य पूर्ण हुआ और इस चंपानगर में अमरकुमार और सुरसुंदरी बनें।

‘हे राजन, रेवती का जीव है तुम्हारी बेटी सुरसुंदरी! बारह घड़ियों तक मुनि को सताया था इसके कटु परिणाम स्वरूप उसे बारह बरस तक पति का वियोग उठाना पड़ा।

मुनिराज के गंदे-मैले कपड़े-देखकर, उनकी घृणा की थी... इसलिए उसे मगरमच्छ के पेट में कुछ समय के लिए रहना पड़ा!

मुनिराज को बड़े उल्लास और उमंग से भिक्षा दी थी, उसके परिणाम स्वरूप उसे चार विद्याएँ मिली और राज्य मिला।

किये करम ना छूटे

३१२

श्री नवकार मंत्र और से शीलव्रत के प्रभाव से दुनिया में उसका यश फैला और दिव्य सुख उसे प्राप्त हुआ।'

महामुनि ने पूर्वजन्म की कहानी पूरी की।

अमरकुमार और सुरसुंदरी उस कथा के दृश्यों को अपने मानसपटल पर चित्रांकन की भाँति उभरते देखने लगे। दोनों को जाति-स्मरण ज्ञान प्रगट हो गया था। पूर्वजन्म की जो-जो बातें बतायी थी वे सारी बातें स्मृति पथ में उभर आयीं।

दोनों की आँखें खुशी के आँसुओं से भर आयीं। सुरसुंदरी ने गुरुदेव को वंदना करके कहा :

'गुरुदेव, आपने हमारे पूर्वजन्म की जो बातें कही... वह बिलकुल यथार्थ हैं...। मैंने खुद जातिस्मरण के ज्ञान से उन बातों को जाना है!'

अमरकुमार ने कहा : 'गुरुदेव, मुझे भी जाति-स्मरण ज्ञान प्रगट हुआ है। आपकी कही हुई बातें सच्ची हैं... यथार्थ हैं!'

सुरसुंदरी ने गद्गद् स्वर से कहा :

'कृपानिधान, इस भीषण भवसागर में मोहवश... अज्ञानवश... अनेक पापाचरण करनेवाले हम दोनों का उद्धार करें। अब नहीं रहना है संसार में! नहीं चाहिए संसार के सुखभोग! नहीं चाहिए वैभव-संपत्ति...। बस गुरुदेव, अब तो आपके चरणों में हमें शरण दे دیجिए। आप जैसे परमज्ञानी गुरुदेव के मिलने के पश्चात् भी क्या... हम संसारसागर में डूब जाँएँ?

अमरकुमार भाव-विभोर बनता हुआ बोल उठा :

'गुरुदेव, आप अकारण, स्वभाव से वत्सल हैं... भवसागर से तैरकर उस पार जाने के लिए नौका-रूप हैं... हमें तार लीजिए!'

ज्ञानधर महामुनि ने कहा :

'हे पुण्यशाली दंपति, भवसागर से तैरने का एक ही उपाय है और वह है चारित्रधर्म! सर्व-विरतिमय संयमधर्म! उस धर्म को स्वीकार करके भवसागर को तैर जाओ!'

'गुरुदेव, हम पर कृपा करके हमें वह चारित्रधर्म प्रदान करें...। हमें अब आपकी ही शरण है!' अमरकुमार ने महामुनि के चरणों में अपना मस्तक रख दिया।

किये करम ना छूटे

३१३

सुरसुंदरी के मन में एक विचार कौंध उठा। उसने गुरुदेव से कहा : हे कृपावान, आप कुछ दिन यहाँ चंपानगरी में बिराजने की कृपा करें। हमारे माता-पिता की अनुमति लेकर हम यथाशीघ्र आपके चरणों में उपस्थित होंगे।'

मुनिराज ने सुरसुंदरी की प्रार्थना को स्वीकार किया।

राजा-रानी, सेठ-सेठानी और अमरकुमार-सुरसुंदरी वगैरह सभी नगर में लौट गये। राजा-रानी के हृदय भारी बन चुके थे। सेठ-सेठानी का दिल भी भारी हो रहा था। अमरकुमार और सुरसुंदरी का चारित्र के मार्ग पर चलने का संकल्प सुनकर उनके दिल व्याकुल हो उठे थे।

सुरसुंदरी-अमरकुमार भोजन आदि से निपटकर अपने शयनकक्ष में आये। सुरसुंदरी ने कहा :

'स्वामिन्, अपने परम पुण्योदय से ही ऐसे अवधिज्ञानी गुरुदेव हमें मिल गये हैं...। हम को इस अवसर से सहर्ष लाभ उठा लेना चाहिए। पर इससे पूर्व एक महत्त्वपूर्ण कार्य यथाशीघ्र करना होगा!'

'वह क्या?' अमरकुमार के मन में आशंका उभरी।

'गुणमंजरी को शीघ्र बुला लेना चाहिए। उसके मन को पूरा संतुष्ट एवं शंका रहित करके ही हम संयमपथ पर चलेंगे।'

'मैंने मृत्युंजय को बनातट भेजा ही है। दो-चार दिन में ही वह गुणमंजरी को लेकर लौटेगा।'

'तब तो बहुत बढ़िया! दो-चार दिन में हम अपने-अपने माता-पिता की अनुमति-इजाज़त ले लें...।'

'वह तो मिल जाएगी... इसमें इतनी देर नहीं लगेगी!'

'काफी देर लगेगी... मेरे नाथ! भावनाओं के बंधन हम ने काटे हैं, उन्होंने कहाँ काटे हैं? मेरे माता-पिता का और आपके माता-पिता का हमसे कितना गहरा अनुराग है? यह क्या हम नहीं जानते हैं? देखा नहीं...? हम जब गुरुदेव के समक्ष संयमपथ पर चलने की बात कर रहे थे, तभी उन सबकी आँखें आँसुओं से छलकने लग गयी थी!'

'पर, क्या इनकी इजाज़त लेना ज़रूरी है?'

'बिलकुल... उनके उपकारों को तो दीक्षा लेने के बाद भी भूलना नहीं है...! हम को उच्चतम संस्कार देने का महान् उपकार उन्होंने किया है। उन उपकारों का ऋण हम किसी भी क्रीमत पर नहीं चुका सकते!!!'

किये करम ना छूटे

३१४

‘पर, मान लो कि वे इजाज़त न दें, तो क्या?’

‘देंगे, जरूर देंगे इजाज़त! अपने दिल को क्या कभी भी उन्होंने दुखाया है? स्वयं दुःख सहन करके भी हम को विदेशयात्रा पर जाने की इजाज़त नहीं दी थी क्या? वैसे ही, वह अपनी तीव्र इच्छा देखकर, अपने सुख के लिए अवश्यमेव अनुमति देंगे।’

‘गुणमंजरी यदि सहमत नहीं हुई तो?’

‘मैं उसे सहमत कर लूँगी...। हाँ, अपनी संसारत्याग की बात सुनते ही पहले तो वह बेहोश ही हो जाएगी...। करुण रूदन, क्रंदन करेगी, पर आखिर वह भी सहमत हो जाएगी। उसे इस बात का बड़ा गहरा दुःख रहेगा कि वह खुद अपने साथ चारित्र नहीं ले सकेगी! पुत्रपालन की बड़ी जिम्मेदारी उसके सिर पर आयी है... और फिर वह पुत्र तो चंपानगरी का भावी राजा भी है!’

‘वह जल्दी लौट आए तो अच्छा!’

‘वह न आए तब तक हम माता-पिता की अनुमति प्राप्त कर लें...। आप अपने माता-पिता की अनुमति प्राप्त कर लें... मैं भी अपने माता-पिता को समझाने की कोशिश करूँगी! हालाँकि मुझे तो आपकी इजाज़त मिल गयी है, फिर और किसी भी इजाज़त की ज़रूरत ही नहीं है, पर फिर भी माता-पिता का स्नेह असीम है... इसलिए उनके मन को समझाना-सहलाना भी ज़रूरी है।’

दूसरे दिन सबेरे अमरकुमार और सुरसुंदरी गुरुदेव के दर्शन-वंदन करने गये, तब वहाँ पर उन्होंने गुरुदेव के समक्ष कुछ तेजस्वी स्त्री-पुरुषों को धर्मोपदेश श्रवण करते हुए देखे। वे दोनों भी वहाँ बैठ गये।

उपदेश पूर्ण होने के पश्चात् मुनिराज ने कहा :

‘सुरसुंदरी, ये विद्याधर स्त्री-पुरुष हैं। वैताढ्य पर्वत पर से यहाँ दर्शन करने के लिए आये हैं।’

सुरसुंदरी ने तुरंत ही गुरुदेव से बड़े अनुनय भरे स्वर में कहा :

‘हे पूज्यपाद, क्या ये विद्याधर पुरुष मुझ पर एक कृपा करेंगे! सुरसंगीत नगर के राजा रत्नजटी मेरे धर्मबंधु हैं... उन्हें मेरा एक संदेश देंगे क्या?’

‘ज़रूर... महासती! राजा रत्नजटी तो हमारे मित्र राजा हैं।’

‘तो उन्हें कहना कि तुम्हारी धर्मभगिनी सुरसुंदरी अपने पति अमरकुमार के

किये करम ना छूटे

३१५

साथ थोड़े ही दिनों में संयमधर्म अंगीकार करनेवाली है। वह तुम्हें और चारों भाभियों को अत्यंत याद कर रही है...। तुम्हारे उपकारों को, तुम्हारे गुणों को रोज़ाना याद करती है...। तुम चारों भाभियों को लेकर दीक्षा-प्रसंग पर चंपानगरी में ज़रूर पधारना। उनसे कहना कि तुम्हारी भगिनी पलकपाँवड़े बिछाये तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है।' सुरसुंदरी की आँखें बरस पड़े... उसका स्वर रूँध सा गया।

'आपका संदेश हम आज ही महाराजा रत्नजटी से कह देंगे महासती! और हम भी उन्हें आग्रह करके कहेंगे कि वे ज़रूर-ज़रूर चंपानगरी में तुमसे मिलें।'

'तो मुझ पर तुम्हारा महान् उपकार होगा।'

विद्याधर युगल आकाशमार्ग से चले गये।

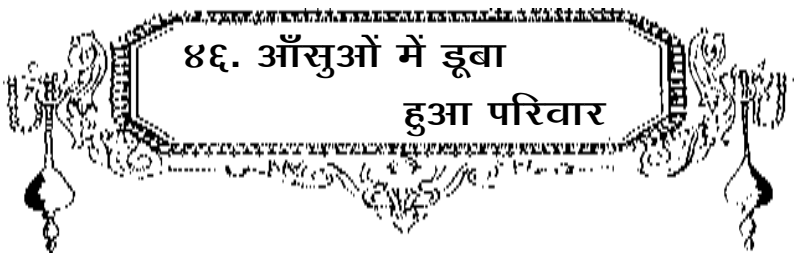
अमरकुमार-सुरसुंदरी ने गुरुदेव को वंदना की, कुशलता पूछी और विनयपूर्वक गुरुदेव के सामने बैठे। सुरसुंदरी ने कहा :

'गुरुदेव, हमारे पूज्य माता-पिता आपको वंदन करने के लिए रोज़ाना आएँगे। आप उन्हें प्रेरणा देने की कृपा करना कि वे हमें शीघ्र अनुमति दें...!'

'भद्रे, तुम निश्चिंत रहना। तुम्हें अनुमति मिल जाएगी... और घर पर पहुँचोगे तब वहाँ पर गुणमंजरी भी अपने पुत्र के साथ तुम्हें मिल जाएगी!'

'क्या...?' दोनों आनंदविभोर हो उठे!





मृत्युंजय गुणमंजरी को लेकर आ गया था। धनावह की हवेली में आनंद छा गया था। गुणमंजरी देवकुमार जैसे पुत्र को लेकर आई थी। धनवती ने गुणमंजरी के आगमन के साथ ही पौत्र को अपने पास ले लिया था।

अमरकुमार और सुरसुंदरी रथ में से उतरकर हवेली में प्रविष्ट हुए, इतने में वहाँ पर खड़ी गुणमंजरी ने सस्मित स्वागत किया...। सुरसुंदरी गुणमंजरी से लिपट गयी। इतने में धनवती पौत्र को लेकर आ पहुँची। सुरसुंदरी ने उसे अपनी गोद में ले लिया। प्यार के नीर से नहला दिया उस को।

दोनों पत्नियों के साथ अमरकुमार अपने कक्ष में आया। अमरकुमार ने गुणमंजरी की कुशल-पृच्छा की। बेनातट के समाचार पूछे। पुत्र को अपने उत्संग में लिया। टकटकी लगाए उसे देखा! सुरसुंदरी बोल उठी : 'नाथ, बच्चे में बिलकुल आप की ही आकृति संक्रमित हुई है! उसके चेहरे पर पुण्य का तेज चमक रहा है!'

'कोई जीवात्मा अनंत पुण्य लेकर यहाँ जन्मा है। वैसे भी मनुष्य-जीवन अनंत पुण्योदय के बिना मिलता ही नहीं है न? आर्यदेश... उत्तमकुल सब पुण्य के उदय से ही मिलता है!'

'अरे, इस पुत्र को तो संस्कार भी उत्तम ही मिलेंगे! देखना... गुणमंजरी संस्कार देने में जरा भी कमी नहीं रखेगी।'

'नहीं रे... मैं तो उसे केवल दूध पिलाऊँगी, बाकी वह रहेगा तुम्हारे ही पास! उसे संस्कार करने का कार्य तुम्हारे ही जिम्मे रहेगा...। उसका लालन-पालन भी तुम्हें ही करना होगा।' गुणमंजरी ने कहा।

सुरसुंदरी ने अमरकुमार की ओर देखा। दोनों के चेहरे पर स्मित उभर आया। सुरसुंदरी मौन रही... उसने आँखें बंद कर ली। गुणमंजरी सोच में डूब गयी... वह बोल उठी :

आंसुओं में डूबा हुआ परिवार

३१७

‘क्यों खामोश हो गये? यह पुत्र तुम्हारा ही है... क्या तुम उसकी माँ नहीं हो? बोलो...न?’

गुणमंजरी सुरसुंदरी के निकट सरक आयी।

सुरसुंदरी ने गुणमंजरी के निर्दोष... सरल चेहरे की तरफ देखा... उसकी भोली-भाली आँखों में झँका... उसने कहा :

‘मंजरी, पुत्र को माताजी को सौंपकर आ जा, कुछ समय के लिए तेरे साथ कुछ बातें करनी है।’ गुणमंजरी पुत्र को धनवती के पास छोड़ आयी।

‘मंजरी, बेटा तो मेरा ही है...। मैं उसकी दूसरी माँ हूँ। परंतु यहाँ पर तेरे जाने के बाद एक नयी परिस्थिति पैदा हो गयी है।’

‘क्यों, क्या हुआ? गुणमंजरी का मासूम मन आशंका से काँप उठा।

‘एक ज्ञानी गुरुदेव का परिचय हुआ...’

‘यह तो अच्छा ही हुआ।’

‘मेरे पिताजी ने उनसे मेरा पूर्वभव पूछा...गुरुदेव ने हमारे दोनों के पूर्वभव कह बताये।

‘क्या कहा गुरुदेव ने?’

सुरसुंदरी ने अपना और अमरकुमार का पूर्वभव कह सुनाया। गुणमंजरी रसपूर्वक सुनती रही।

‘यह पूर्वभव जानने के पश्चात् हम दोनों के हृदय में संसार के प्रति वैराग्य प्रगट हुआ है। वैराग्य तीव्र बना है, और हम दोनों गृहत्याग करके चारित्र के मार्ग पर जाने के लिए तैयार हुए हैं। बस, तेरी ही प्रतीक्षा थी। तू आ जाए... बाद में तुझे सारी बातें करके हम...’

‘नहीं, नहीं... नहीं... यह कभी नहीं हो सकता!’

गुणमंजरी एकदम बावरी-सी हो उठी। उसकी आँखों से आंसुओं का बाँध टूट गया। उसने अपना चेहरा सुरसुंदरी की गोद में छिपा दिया।

सुरसुंदरी ने अमरकुमार के सामने देखा। अमरकुमार की आँखें बंद थी। वह गहरे चिंतन में डूब गया था। उसके चेहरे पर शांति थी... तेज था...।

‘तो फिर मैं भी तुम्हारे साथ ही चारित्र लूँगी!’

गुणमंजरी बोली! सुरसुंदरी ने अपने उत्तरीय वस्त्र से उसकी आँखें पोंछी और कहा :

आंसुओं में डूबा हुआ परिवार

३१८

‘यदि इस पुत्र की जिम्मेदारी नहीं होती तो हम तीनों साथ-साथ ही चारित्रधर्म अंगीकार करते! पर इस पुत्र के लालन-पालन की जिम्मेदारी तुझे उठानी है।’

‘नहीं... यह नहीं होगा... मैं पुत्र के बिना जी लूँगी... पर तुम दोनों के बिना मेरा जीना संभव नहीं है...।’

‘मैं क्या नहीं जानती हूँ तेरे दिल को? परंतु उस राग के बंधन को काटना होगा... मंजरी, इस प्रेम को तोड़ना होगा।’

‘नहीं टूट सकता!’ गुणमंजरी फफक-फफककर रो पड़ी। सुरसुंदरी ने उसको अपने उत्संग में खींच लिया। उसके सिर पर अपनी कोमल अँगुलियों से सहलाने लगी।

‘तुम दोनों मेरा, पुत्र का, सब का त्याग करके चले जाओगे?’ गुणमंजरी ने सुरसुंदरी की आँखों में आँखें डालते हुए पूछा :

‘मंजरी?’

‘क्या तुम इतने पत्थर दिल हो जाओगे?’

‘मंजरी, क्या एक न एक दिन स्नेही-स्वजनों के संयोग का वियोग नहीं होगा? मंजरी, संयोगों में से जनमता सुख शाश्वत नहीं है। वह सुख स्वयं दुःख का कारण है। संयोगजन्य सुख में डूबनेवाला जीव, मौज मनानेवाला जीव दुःख का शिकार होता है। अतः हम को ज्ञानदृष्टि से उन संयोगों के सुख से मुक्त हो जाना चाहिए।’

‘तो मैं भी मुक्त हो जाऊँगी।’

‘पुत्र की जिम्मेदारी है, मंजरी तुझपर! तू पुत्र का लालन-पालन कर, वह बड़ा बने... तुझसे उत्तम संस्कार उसे मिले... वह सुयोग्य राजा बने, फिर तू भी चारित्रधर्म की आराधना करना। प्रजा को स्वस्थ, संस्कारी राजा देना भी एक विशेष कर्तव्य है न?’

‘तो तब तक तुम भी रुक जाओ... घर-गृहस्थी में रहकर तुम्हें जितनी धर्म आराधना करनी हो, उतनी करना... मैं तुम्हें बिलकुल नहीं रोक्कूँगी।’

‘मंजरी... मेरी बहन! गुरुदेव ने हमारा पूर्वभव कहा। हमें भी जातिस्मरण ज्ञान हुआ। हमने भी खुद हमारा पूर्वजन्म देखा... जाना... और हमारे दिल काँप उठे हैं! गृहस्थी में रहना... कुछ दिन भी गुज़ारना... अब हमारे लिए

आंसुओं में डूबा हुआ परिवार

३१९

दुःखद बन गया है। शायद तू अति आग्रह करेगी... इजाज़त नहीं देगी... तेरा मन नहीं मानेगा... तो हम संसार में रूक जाएंगे पर हमारा दिल...' सुरसुंदरी बोलते-बोलते रो पड़ी... गुणमंजरी सुरसुंदरी से बेल की भाँति लिपट गयी।

'नहीं... नहीं... तुम रोओ मत! तुम्हें दुःखी नहीं करूँगी...। तुम्हारी राह में विघ्न नहीं बनूँगी...।' गुणमंजरी ने सुरसुंदरी के आँसू पोंछे।

'मंजरी!' अमरकुमार ने मौन तोड़ा। गुणमंजरी ने अमरकुमार को देखा... अमरकुमार ने कहा :

'तू ऐसा तो नहीं मानेगी न कि मैंने तेरे साथ विश्वासघात किया है?'

'नहीं... नहीं... वैसा तो विचार भी मेरे दिमाग में नहीं आएगा नाथ! पर आप बिना मेरा जीवन, जीवन नहीं रहेगा। मैं जिऊँगी, पर जिंदा लाश की तरह! साँसों का जनाजा उम्र के कंधे पर ढोती हुई जीती रहूँगी। यह दिल-दिल नहीं रहेगा... साँसों के आने-जाने का यंत्र बन जाएगा... तुम्हारी यादें... मेरे दिल को कितना तड़पाएगी? कितनी चोट लगेगी... हृदय को? वह चोट मैं कैसे सह पाऊँगी...? तुम्हारे विरह की व्यथा... वेदना... मैं नहीं सह पाऊँगी...। तुम्हारे पीछे मैं रो-रोकर पागल हो जाऊँगी...। और मैं करूँगी भी क्या? किसके लिए जिऊँगी? कौन-सा बहाना रहेगा मेरे जीने के लिए? मेरा तो सर्वस्व ही लुट जाएगा!' गुणमंजरी दोनो हाथों में अपना चेहरा छुपाकर फफक पड़ी!

'मंजरी... अनुराग... उत्कट अनुराग ऐसी ही स्थिति पैदा करता है! तुझे यह अनुराग कम करना होगा। संबंधों की अनित्यता को बार-बार सोचकर-समझकर उस अनुराग के ज़हर को उतारना होगा। संबंधों की चंचलता का चिंतन ही शांति दे पाएगा। शांति प्राप्त हो सकेगी इसी से! और एक दिन तेरा मन भी संबंधों से मुक्त हो जाएगा।'

जब ज्ञानी गुरुदेव ने हमारे पूर्वभव का वर्णन किया... हमने जाति स्मरण ज्ञान से वह देखा... जाना... तब कर्मों की कुटिलता को समझा। इस संसार में जीवात्मा कर्मों के परवश पापकर्मों का आचरण तो कर लेती है, पर उसके भयंकर परिणाम कैसे आते हैं? बारह घड़ियों के किये हुए पाप बारह बरस की सज़ा दे गये! जब कि मैंने तो इस जन्म में ही कितना भयंकर पाप किया है? मुझे उन पापकर्मों का उग्र तपश्चर्या करके नाश करना है। अब इस संसार के सुखों के प्रति मेरा मन पूरी तरह विरक्त हो गया है।

आंसुओं में डूबा हुआ परिवार

३२०

तू ऐसा मत मानना कि तेरे प्रति हमें अरुचि या अभाव हो गया है! तेरे प्रति जो प्रेम था... वह विशुद्ध बन गया है। प्रेम का विषय अब तेरी देह नहीं, पर तेरी आत्मा बन गयी है। आत्मा का आत्मा से प्रेम! अद्भुत होता है, वह प्रेम! देह के अलग रहने पर भी वह प्रेम अखंड रहता है! एक दिन ऐसा आएगा कि हम तीनों की आत्माएँ अभेद भाव से मिल जाएँगी! तीनों आत्मज्योति मुक्ति में समा जाएगी...! फिर कभी भी वियोग या विरह नहीं होगा... अनंत काल तक संयोग ही संयोग!

‘पुत्र की जिम्मेदारी तुझ पर ओढ़ाकर मैं अपना स्वार्थ तो सिद्ध नहीं कर रहा हूँ न?’ मुझे यह विचार आ गया... अभी मैंने मौन रूप में इसी के बारे में सोचा...। तुझे अकेली छोड़कर... जिम्मेदारी तुझपर रखकर तभी हम जा सकते हैं... जब तू प्रसन्न मन से हमें बिदा दे!’

तू अपनी मानसिक और आत्मिक स्थिति का विचार करके संसार त्याग की हमारी भावना का समर्थन करे।

तू खूद भी संयमधर्म स्वीकार करने के लिए तत्पर हुई है - यह जानकर मेरा आनंद द्विगुणित हुआ है। हमारे पीछे तू भी ज़रूर आएगी ही संयम की राह पर! पुत्र को भी दूध के साथ आत्मज्ञान के अमृत का पान करवाना। त्याग-वैराग्य के आदर्शों का पान करवाना।’

अमरकुमार नहीं बोल रहा था... उसका हृदय बोल रहा था। गुणमंजरी मुग्ध होकर सुनती जा रही थी। एक-एक शब्द उसके दिल को स्पर्श कर रहा था।

उसके चेहरे पर स्वस्थता उभरने लगी। उसकी आँखों में समता तैरने लगी। वह गहरे सोच में खो गयी। खंड में मौन छा गया था।

‘क्या पुत्र की जिम्मेदारी माताजी नहीं ले सकती?’

‘अभी तक मैंने माँ से बात की नहीं है... उनकी अनुमति भी नहीं ली है... फिर भी यदि माताजी जिम्मेदारी ले-लें तो तू हमारे साथ संयम स्वीकार सकती है...!’

इतने में धनवती ने खंड में प्रवेश किया। तीनों जन सकपकाकर खड़े हो गये। धनवती दोनों पुत्रवधुओं के हाथ थामे बैठ गयी।

‘क्षमा करना तुम, मैंने तुम्हारा वार्तालाप दरवाजे की ओट में खड़े-खड़े सुना है। पौत्र को पालने में सुलाकर मैं तुम्हारे पास ही आ रही थी, परंतु तुम्हारा वार्तालाप मुक्त मन से हो सके, इसलिए भीतर नहीं आयी।’

आंसुओं में डूबा हुआ परिवार

३२१

‘तो माँ, हमें अनुमति दे... आशीर्वाद दे... हम संयमधर्म को स्वीकार कर के कर्मों के बंधन तोड़ने का पुरुषार्थ करें।’ अमरकुमार ने माँ के चरणों में सर रख दिया। धनवती की आँखें गीली हो गयी। उसने अमरकुमार के मस्तक पर अपने दोनों हाथ रखते हुए कहा :

‘बेटा, चारित्र के बिना मुक्ति नहीं है... यह बात मैं मानती हूँ। त्याग का मार्ग ही सच्चे सुख का मार्ग है। ठीक है, तुझसे अनुराग है इसलिए मैं तुझे मना करूँ... पर विघ्नभूत तो नहीं बनूँगी...!’

‘तो माताजी, हम दोनों को भी इजाज़त दीजिए...।’ दोनों पुत्रवधुएँ एक साथ बोल उठीं। गुणमंजरी का हाथ पकड़कर धनवती ने कहा :

‘बेटी, तुझसे अभी चारित्र का निर्वाह नहीं किया जा सकता! बच्चे को तेरा ही दूध मिलना चाहिए... तेरा प्रेम ही मिलना चाहिए... और एक मेरे मन की बात कहूँ तुमसे?’

‘कहो माँ!’ अमरकुमार गद्गद् हो उठा।

‘मैं और गुणमंजरी दोनों एक साथ चारित्र-जीवन अंगीकार करेंगे।’

‘ओह, माँ...।’ कहती हुई गुणमंजरी धनवती से लिपट गयी।

‘बेटी, अपने साथ अमर के पिताजी भी चारित्र स्वीकार लेंगे! कल रात में ही मेरे उनके साथ सारी बातचीत हुई है। उन्होंने कहा मुझसे...‘अमर और सुंदरी यदि चारित्र ले फिर हम तो संसार में कैसे रह सकते हैं?’ पर मैंने कहा उनसे कि रहना तो पड़ेगा ही। हम को गुणमंजरी और पौत्र के लिए भी संसार में रहना पड़ेगा। पौत्र योग्य उम्र का हो जाएगा तब हम चारित्र लेंगे। मेरी बात उन्हें जँच भी गयी।’

अमरकुमार, सुरसुंदरी और गुणमंजरी तीनों के हृदय धनवती पर फिदा-फिदा हो उठे!

‘माँ... अनंत-अनंत पुण्य का उदय हो तो तुझ जैसी माँ मिले!’ अमरकुमार का स्वर गद्गद् हो गया था।

‘बेटा... अनंत पुण्य का उदय हो, तब माँ को ऐसे उत्तम संतानों की प्राप्ति होती है। मुझे तो अपने पुत्र से बढ़कर बहुएँ मिली हैं। मेरे पुण्य की तो सीमा ही नहीं है!’

‘माँ, आज ही गुरुदेव ने कहा था कि तुम्हें माता-पिता की अनुमति मिल जाएगी...।’

संयम राह चले सो शूर

३२२

‘वे तो अंतर्यामी गुरुदेव हैं बेटा...। ऐसे सद्गुरु भी अनंत-अनंत जन्मों के पुण्य एकत्र हो तब जाकर के मिलते हैं - और बेटी सुंदरी तुझे एक शुभ समाचार दूँ?’

‘कहो माँ?’

‘साध्वीजी सुव्रताजी कल ही चंपानगरी में पधारी हैं’

‘ओह, साध्वीजी सुव्रताजी? मेरे परम हितकारणी... परम उपकारी... मुझे नवकार मंत्र देनेवाली... मुझे ज्ञान का प्रकाश देनेवाली... उन गुरुणीजी के दर्शन करने के लिए मैं अभी जाऊँगी... माँ!’

‘हाँ बेटी, हम अब साथ ही चलेंगे। वे भी तुझे याद कर रही थीं।’

‘मेरे पुण्य की सीमा नहीं है माँ...।’ सुरसुंदरी की आँखें हर्षाश्रु बहाने लगी।’

‘माँ... मैं भी तुझे एक शुभ समाचार दूँ?’

‘बोल, बेटा?’

‘विद्याधर राजा रत्नजटी, तेरी पुत्रवधू के धर्मबन्धु और रक्षक - उन्हें भी दीक्षा - महोत्सव में पधारने का निमंत्रण आज दे दिया गया! वे ज़रूर आर्येणो दीक्षा-महोत्सव में!’

‘बेनातट नगर मेरे माता-पिता को समाचार...?’ मंजरी बोली।

आज ही... अभी दूत को खाना करता हूँ...!!!’





‘महाराजा, हम अवधिज्ञानी महामुनि श्री ज्ञानधर के दर्शन-वंदन करने के लिए दक्षिणार्ध भरत में चंपानगरी में गये थे। वहाँ से आप के लिए एक संदेश लेकर के आये हैं।’

सुरसंगीत नगर की राजसभा में उपस्थित होकर दो विद्याधरों ने विद्याधर राजा रत्नजटी के समक्ष निवेदन किया। चंपानगरी का नाम सुनते ही रत्नजटी सहसा सिंहासन पर से खड़ा हो गया... और बोला :

‘महानुभाव, जल्दी-जल्दी वह संदेश मुझे कह सुनाओ... मैं बड़ा उत्सुक हूँ...।’

‘राजेश्वर, आपकी धर्मभगिनी सुरसुंदरी और उनके पति अमरकुमार दोनों चारित्रधर्म अंगीकार करने के लिए तत्पर बने हैं। उन्होंने आपको याद किया है। आपकी धर्मभगिनी ने कहलाया है कि मेरे भाई को कहना कि चारों भाभियों को लेकर दीक्षामहोत्सव में अवश्य चंपानगरी पधारें।’

रत्नजटी का रोएँ पुलक उठें। उसकी आँखें सजल बन गयीं। उसका गला रूंध गया... उसने सिवा अपने मुकुट के तमाम आभूषण उतारकर उन दो विद्याधरों को दान में दे दिये। राजसभा में से निकलकर सीधा वह पहुँचा अपने महल में और चारों रानियों को बुलाकर समाचार दिये। रानियाँ तो हर्ष से नाच उठीं। रत्नजटी बोला :

धन्य है बहन! संसार के विपुल सुख-भोग मिलने पर भी, उन सुखों का त्याग करके तू परमात्मा वीतराग के बतलाए हुए चारित्रमार्ग पर चलने को तत्पर हुई है! तेरे गुणों का पार नहीं है! तू सचमुच उत्तम आत्मा है! आ रहा हूँ बहन... अभी आ पहुँचता हूँ... तेरे पास... तेरा दीक्षा महोत्सव मैं मनाऊँगा!’

रानियों को तैयार होने की सूचना दे दी। रत्नजटी ने अपना विमान सजाया। साथ में अन्य एक हज़ार विद्याधरों को आने के लिए सूचना दे दी।

चारों रानियों के साथ विमान में बैठकर रत्नजटी ने चंपानगरी की ओर प्रयाण किया। पीछे-पीछे एक हज़ार विमान गतिशील बने। पूरा काफ़ीला चला चंपानगरी की ओर!



संयम राह चले सो शूर

३२४

‘महाराजा, मैं चंपानगरी से श्रेष्ठी धनावह का संदेश लेकर आया हूँ।’

‘कहो, श्रेष्ठी धनावह और अमरकुमार कुशल तो हैं न?’

‘जी हाँ, वे सब कुशल हैं, और आपको कहलाया है कि अमरकुमार और उनकी धर्मपत्नी सुरसुंदरी, इस संसार का परित्याग कर के चारित्रधर्म अंगीकार करने के लिए तत्पर हो गये हैं। दीक्षा महोत्सव में आपको परिवार के साथ पधारने की विनती की है।’

चंपानगरी से आये हुए दूत ने बेनातट नगर की राजसभा में राजा गुणपाल के समक्ष निवेदन किया। राजा गुणपाल संदेश सुनकर पलभर तो स्तब्ध रह गये... वे बोल उठे :

‘तो फिर गुणमंजरी का क्या?’

‘महाराजा, जहाँ तक मेरी जानकारी है... उन्होंने भी अनुमति प्रदान की है।’

राजसभा का विसर्जन किया गया। राजा गुणपाल सीधे ही अंतःपुर में गये। महारानी को समाचार दिये, और चंपा जाने की तैयारी करने की सूचना भी दे दी। रानी गुणमाला का हृदय काँप उठा। समाचार सुनकर! महाराजा के मन में भी तरह-तरह के विकल्पों के वर्तुल बनने-बिगड़ने लगे। गुणमंजरी के विचार उनके दिल को उद्विग्न किये जा रहे थे।’

प्रयाण की तैयारियाँ हो गयी...। राजा गुणपाल ने परिवार के साथ अनेक सैनिक वगैरह को लेकर समुद्र के रास्ते चंपानगरी की ओर प्रयाण कर दिया।



‘बेटी, तेरे बिना हमारा जीवन शून्य हो जाएगा!’

‘पिताजी आपकी दूसरी बेटी भी है ना? गुणमंजरी क्या आपकी बेटी नहीं है? आप उसे सुरसुंदरी हीं समझना। गुणमंजरी में मेरा ही दर्शन करना।’

महाराजा रिपुमर्दन और रानी रतिसुंदरी दोनों रथ में बैठकर श्रेष्ठी की हवेली पर आये थे। अमरकुमार और सुरसुंदरी की दीक्षा लेने की बात जानकर दोनों अत्यंत व्यथित हो गये थे। दोनों के चेहरे उदासी में डूब गये थे। रतिसुंदरी तो बेटी को अपनी गोद में लेकर फफक-फफककर रो पड़ी। महाराजा रिपुमर्दन ने कहा :

‘बेटी, तू तो वैसे भी संसार में रहते हुए भी साध्वी जीवन ही गुज़ार रही

संयम राह चले सो शूर

३२५

है। संसार में रहकर भी तू अपनी इच्छा के अनुसार धर्म आराधना कर सकती है, पर दीक्षा की बात तू जाने दे... मेरी बात मान ले बेटी...।'

'पिताजी, संसार के तमाम सुखों के प्रति मेरा मन विरक्त हो गया है। अब किसलिए... किसके लिए संसार में रहूँ? अब तो मुझे अनंत सिद्ध भगवंतों का बुलावा याद आ रहा है...। मैं अब इस संसार में नहीं रह सकती...। मुझे तो आप अंतःकरण से आशीर्वाद दें, पिताजी!'

राजा-रानी ने सुरसुंदरी को और अमरकुमार को समझाने की काफी कोशिश की। परंतु पूर्णतः विरागी बने हुए अमरकुमार और सुंदरी ने ऐसे ज्ञानगर्भित ढंग से प्रत्युत्तर दिये कि उन्होंने इजाज़त दे दी।

रतिसुंदरी ने गुणमंजरी को अपने उत्संग में लेकर विश्वास दिलाते हुए कहा : 'बेटी इस पुत्र का राज्याभिषेक करने के पश्चात् हम भी तेरे साथ चारित्र्य जीवन ग्रहण करेंगे!'

धनवती ने कहा : 'हम दोनों ने भी यही निर्णय किया है।

परिवार में त्याग का आनंद फैल उठा। नगर में दीक्षामहोत्सव मनाने की महाराजा ने आज्ञा दी। इतने में नगररक्षक दौड़ते हुए हवेली में आये। उन्होंने महाराजा से निवेदन किया :

'महाराजा, नगर के मैदान में एक हज़ार विद्याधरों के विमान उतर आये हैं। हमने तलाश की, तो मालूम पड़ा कि सुरसंगीतनगर के विद्याधर राजा रत्नजटी अपने परिवार के साथ पधारे हैं।'

सुरसुंदरी खुशी से उछल पड़ी!

'पिताजी, मेरे धर्मबंधु आये हैं... हम शीघ्र उनको लेने चलें।'

'नाथ... आप देर मत करना... जल्दी रथ सजाइये...'

'मंजरी! माताजी! सब चलो... मेरा वह भाई आया सही! साथ में मेरी प्यारी चार भाभियाँ भी होंगी। वे सब मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे!'

एक पल की भी बगैर देर किये सभी रथ में बैठ गये और कुछ ही मिनटों में रथ नगर के बाहर पहुँच गये। दूर ही से रत्नजटी और चार रानियों को देखकर सुरसुंदरी रथ में से उतर आयी...। पीछे-पीछे सभी रथ में से नीचे उतर गये।

रत्नजटी चारों रानियों के साथ त्वरा से सामने आया। सुरसुंदरी के मुँह से

आंसुओं में डूबा हुआ परिवार

३२६

आश्चर्य के साथ 'भाई...' की पुकार निकली। सामने से 'बहन' की आवाज देते हुए रत्नजटी दौड़ता आया।

भाई-बहन के अद्भुत मिलन ने सभी की आँखों में नमी भर दी। सुरसुंदरी चारों भाभियों से लिपट गयी। एक के बाद एक भाभी ने सुरसुंदरी को स्नेह से अभिसिंचित किया।

सुरसुंदरी ने सर्वप्रथम अमरकुमार का परिचय करवाया इसके बाद गुणमंजरी... माता-पिता... धनावह सेठ... धनवती सभी का परिचय करवाया।

महाराजा रिपुमर्दन ने नगर में पधारने के लिए रत्नजटी से विनती की। काफी जोर-शोर से रत्नजटी के परिवार का स्वागत किया। रत्नजटी ने राजमहल में पहुँचकर राजा रिपुमर्दन और श्रेष्ठी धनावह से विनती की : 'हे पूज्यवर, इन दंपति का दीक्षामहोत्सव संपन्न करने की मुझे अनुज्ञा दीजिए।'

रत्नजटी को अनुज्ञा मिल गयी। उसने विद्याधरों को आज्ञा करके चंपानगरी को इंद्रपुरी सी बना दी। रत्नजटी की चारों रानियाँ तो सुरसुंदरी को घेर कर ही बैठ गयीं। बेनातट नगर में बीती हुई तमाम घटनाएँ सुरसुंदरी ने कह सुनायी...। पुरुषरूप में गुणमंजरी के साथ शादी की बात सुनकर तो रानियाँ खिलखिलाकर हँस पड़ीं! गुणमंजरी को भी एक-एक रानी ने प्यार से सराबोर कर दिया।

दीक्षा-महोत्सव काफी भव्यता से मनाने के सभी तैयारियाँ हो चुकी थी। इतने में बेनातट से महाराजा गुणपाल और रानी गुणमाला भी आ पहुँचे सपरिवार। महाराजा रिपुमर्दन और श्रेष्ठी धनावह ने बड़े प्रेम से उनका भव्य स्वागत किया।

गुणमंजरी ने स्वयं ही अपने माता-पिता के मन को तुष्ट कर दिया। रत्नजटी का परिचय करवाया। राजा गुणपाल रत्नजटी से मिलकर अति प्रसन्न हुए। रत्नजटी ने सुरसुंदरी की दिल खोलकर प्रशंसा की। राजा गुणपाल भी सुरसुंदरी के अनेक गुण याद करते-करते गद्गद हो उठे। विमलयश के रूप को याद करके सभी हँस पड़े। गुणमाला ने रत्नजटी से कहा :

'हे नरेश्वर, गुणमंजरी को एक भी भाई नहीं है... तुम...'

'आज से गुणमंजरी मेरी बहन है राजन्! इसकी आप किसी भी प्रकार की चिंता मत करना।

आंसुओं में डूबा हुआ परिवार

३२७

‘नाथ, तो फिर भानजे का हम नामकरण कर डालें क्या?’ चारों रानियों ने पूछा :

‘ज़रूर करें...।’

‘उसका नाम ‘अक्षयकुमार’ रखें!’

‘वाह! बहुत सुंदर नाम रखा!’ राजा रिपुमर्दन प्रसन्न हो उठे। उन्होंने कहा

:

‘मेरे बाद चंपानगरी का राजा अक्षयकुमार होगा!’

सभी ने जयजयकार किया। सभी अपनी अपनी प्रवृत्तियों में व्यस्त हो गये।



वसंत पंचमी!

दीक्षा का शुभ मुहूर्त का दिन!

चंपानगरी में दिव्य श्रृंगार सजे थे... नगरी के राजमार्ग पर क्रीमती रत्नों के तोरण लटकाये गये थे। सुगंधयुक्त पानी का सिंचन किया गया था। हज़ारों रथ, हाथी और घोड़ों को सजाये-सवारे गये थे। विद्याधरों के वाद्यों ने वातावरण को प्रसन्नता से भर दिया था।

अमरकुमार और सुरसुंदरी दीक्षा ग्रहण करने के लिए हवेली से निकले। गुणमंजरी बेहोश ज़मीन पर ढेर हो गयी। रत्नजटी की रानियों ने उसको सम्हाल लिया। एक रथ में उसके साथ ही चारों रानियाँ बैठ गयी।

अमरकुमार और सुरसुंदरी ने ढेर सारी संपत्ति को दान में दे दी। रत्नजटी, राजा रिपुमर्दन और राजा गुणपाल ने भी विपुल संपत्ति का दान दिया।

शोभायात्रा नगर के बाहरी उपवन में पहुँची। जहाँ पर गुरुदेव ज्ञानधर मुनि बिराजे हुए थे। दंपति रथ में से उतर गये। अन्य सभी भी रथ में से नीचे उतरे। वाद्यों का स्वर बंद हो गया। दोनों ने आकर गुरुदेव की परिक्रमा करके वंदना की। ईशान कोने की तरफ जाकर, शरीर पर के अलंकार उतारे... और रत्नजटी की गोद में दिये। उन्होंने स्वयं अपने केशों को लुंचन किया। गुरुदेव ने दोनों को साधु-वेश करा दिया... और महाव्रतों का आरोपण किया।

दोनों को साधु-साध्वी के वेश में देखकर गुणमंजरी दहाड़ मारकर रो पड़ी। वह बेहोश होकर गिर पड़ी। रत्नजटी की रानियाँ उसको उठाकर दूर ले गयीं...। उपचार करके उसको सचेत किया।

आंसुओं में डूबा हुआ परिवार

३२८

‘बहन! हिम्मत मत हारो। शांत बनी रहो...। अभी तो तुम्हें उन दोनों को भीतरी-अंतःकरण की शुभ कामनाएँ देनी है!’

‘नहीं... नहीं... मैं नहीं देख सकती उन्हें इन कपड़ों में... उनका केशहीन मस्तक नहीं... मैं नहीं देख पाऊँगी... मेरे प्राण निकल जाएँगे... मुझे तुम दूर ले चलो...।’

गुणमंजरी को रथ में बिठाकर चारों रानियाँ उसे हवेली में ले आयी। धीरे-धीरे आश्वस्त करके उसे स्वस्थ चित्त किया।

इधर गुरुदेव ने महाव्रतों का आरोपण कर के, उन दोनों नवदीक्षितों को लक्ष्य करके कहा :

‘पुण्यशाली साधको, आज तुम भवसागर को तैरने के लिए संयम की नैया में बैठ गये हो। तुम्हें क्रोध-मान-माया और लोभ पर विजय प्राप्त करनी है। तुम्हें अपने मन-वचन-काया को शुभ-शुद्ध रखना है। इसके लिए पाँच इंद्रियों को वश में रखना है।

केश के लुंचन के साथ विषय-कषाय का लुंचन भी करना है! भाग्यशाली, इर्या-समिति, भाषा-समिति, एषणा-समिति, आदान-भंडनिक्षेपण-समिति, परिष्ठापनिका-समिति का पालन करना। मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, और कायगुप्ति का पालन करना। पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय की रक्षा करना।

दिन-रात के पाँच प्रहर तो तुम्हें श्रुतज्ञान की आराधना-उपासना करनी है। ४२ दोष टालकर भिक्षा लानी है और पाँच दोष त्यागकर आहार करना है। असत्य न बोला जाए, इसकी सतर्कता रखना। तुम्हारी वाणी मधुर-हितकारी और परिमित रखना। किसी भी वस्तु को उसके मालिक से पूछे वगैर लेना मत। मन-वचन-काया से ब्रह्मचर्य का नैष्ठिक पालन करना। नौ प्रकार के परिग्रह का सदंतर त्याग करना।

संयमरूप रथ के दो चक्र हैं- ज्ञान और क्रिया। उस रथ में तुम आरूढ़ हुए हो। देखना... ख्याल करना, रस, ऋद्धि, शाता की लोलुपता सताये नहीं। देशकथा, राजकथा, भोजनकथा और स्त्रीकथा का त्याग करना। वैसी आत्मस्थिति को प्राप्त करना कि शत्रुमित्र-समवृत्ति हो जाओ! इसके लिए क्षमा, नम्रता, सरलता, निर्लोभता, इत्यादि इस प्रकार के यतिधर्म का पालन करना। दस प्रकार के समाचारों का यथोचित पालन करना।

आंसुओं में डूबा हुआ परिवार

३२९

रोज़ाना अनित्यादि बारह भावनाओं से भावित बनना। गुरुविनय करना। बाह्य-आभ्यंतर बारह प्रकार की तपश्चर्या करना। ज्ञान-ध्यान में लीन बनकर कर्मशत्रु को खतम करना।'

देशना पूर्ण हुई।

पूज्य गुरुदेव ने सुरसुंदरी को साध्वी सुव्रता को सौंपकर श्रमणीवृंद में शामिल कर दिया। अमरकुमार को साथ लेकर उन्होंने चंपानगरी से प्रयाण किया।

रत्नजटी, राजा गुणपाल, राजा रिपुमर्दन और समग्र परिवार ने अमर मुनिराज को भावपूर्ण वंदना की और नगर में वापस आये।



सभी उदास थे... सभी के दिल टूटे हुए थे। अमरकुमार-सुरसुंदरी के बिना संसार सूना वीरान-सा हो गया था। महल जैसे श्मशान बन चुके थे!





रत्नजटी ने गुणमंजरी को क्रीमती वस्त्रालंकार भेंट किये। अक्षयकुमार के लिए भी अनेक सुंदर वस्त्रालंकार और खिलौने दिये। सभी से अश्रु-पूरित विदा लेकर वह अपनी रानियों के साथ अपने नगर में चला गया।

महाराजा गुणपाल ने भी बेनातट नगर जाने के लिए धनावह श्रेष्ठी की इजाजत माँगी। वे बेनातट नगर चले गये।

धनवती अपने हृदय पर पत्थर रखकर विरह की व्यथा के घूँट पीती हुई गुणमंजरी के तन-मन का खयाल करने लगी। गुणमंजरी ने सुंदर कपड़े पहनने छोड़ दिये... अलंकार छोड़ दिये। वह एक साध्वी जैसे जीवन व्यतीत करने लगी। धनवती के साथ वह भी अनेक प्रकार की धर्म आराधना में अपना दिल पिरोती है। रानी रतिसुंदरी भी गुणमंजरी को अपनी बेटी की भाँति सम्हालने लगी।

बरस गुजरते हैं।

समय का बहाव कितना तेज रहता है!

अक्षयकुमार भी तरुण हो गया। कलाओं के आचार्यों के पास अनेक प्रकार की कलाएँ सीखता है। गुणमंजरी पूरी देखभाल रखती है उसकी। पुत्र के साथ जीवन में किसी भी तरह का दूषण प्रविष्ट न हो, इसके लिए वह पूरी सावधानी रखती है, खयाल करती है! रोज़ाना पुत्र को अपने पास बिठाकर सुंदर, कहानियाँ सुनाती है। अमरकुमार और सुरसुंदरी की बातें करती है... कभी अक्षयकुमार जिद्द पकड़ लेता है... 'माँ, चल ना... हम पिताजी के पास चलें...।' तब गुणमंजरी उसे कहती : 'बेटा, तेरे पिताजी जब यहाँ आएँगे तब उनके पास जाएँगे।'

कभी गुणमंजरी रात-रात भर अमरकुमार और सुरसुंदरी की यादों में खोयी हुई जागती रहती है...। आँसू बहाती है... श्री नवकार महामंत्र का स्मरण करती है। उसने प्रतिदिन १०८ नवकार मंत्र का जाप करने की प्रतिज्ञा ले रखी है।

वह मिष्टान्न नहीं खाती...। न बालों का सिंगार सजाती है... पान-सुपारी नहीं लेती है... जब-जब मन व्याकुल होता है... तब गृह-मंदिर में जाकर

सभी का मिलन शाश्वत में

३३१

परमात्मा का स्तवन करती है...। परमात्मा के ध्यान ने लीन बनी रहती है... कभी धनवती के साथ उपाश्रय में जाकर साध्वीजी का सत्संग करती है। कभी रतिसुंदरी के पास जाकर तत्त्वचर्चा करती है...।

समय का प्रवाह बहता हीं जाता है। समय को कौन रोक सकता है? अक्षयकुमार ने यौवन में प्रवेश कर दिया था।



अमर मुनीन्द्र और साध्वी सुरसुंदरी शुद्ध चित्त से संयम का पालन करते हैं, जिनाज्ञा का पालन करते हैं... गुरुदेव का विनय करते हैं। ज्ञान-ध्यान में रत रहते हैं... संयम योगों की आराधना में अप्रमत्त रहते हैं। समता की सरिता में निरंतर स्नान करते हैं... धैर्यरूप पिता और क्षमारूप माँ की छत्रछाया में रहते हैं। विरतिरूप जीवनसाथी के साथ परमसुख की अनुभूति करते हैं।

आत्मस्वभाव के राजमहल में रहते हुए उन मुनि को, उन साध्वीजी को कमी किस बात की होगी...? संतोष के सिंहासन पर वे आसीन होते हैं! धर्मध्यान और शुक्लध्यान के चँवर ढुलते रहते हैं! जिनाज्ञा का छत्र उनके सर पर शोभायमान हो रहा है।

- * कांस्यपात्र की भाँति वे निःस्नेह बन चुके हैं!
- * गगन की भाँति वे निरालंबन बने हैं।
- * वायु की तरह वे अप्रतिबद्ध बन गये हैं।
- * शरद जल की तरह उनका हृदय शुद्ध-शुभ्र बन गया है।
- * कमल की भाँति वे निर्लेप और कोमल बन गये हैं।
- * कछुए की भाँति वे गुप्तेन्द्रिय बन चुके हैं।
- * भारंड पक्षी की भाँति वे अप्रमत्त हो गये हैं।
- * सिंह की भाँति दुर्धर्ष बन गये हैं।
- * सागर की तरह गंभीर और सूरज से तेजस्वी बन गये हैं।
- * चंद्र की भाँति शीतल और गंगा की तरह वे पवित्र बन गये हैं।

नहीं है उन्हें किसी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का कोई प्रतिबन्ध! नहीं है उन्हें किसी तरह का भय, हास्य, रति या अरति! उनके लिए गाँव, नगर या जंगल एक-से हैं। सुवर्ण और मिट्टी समान लगते हैं। चंदन और आग समान लगते हैं। मणि और तृण एक-से लगते हैं।

सभी का मिलन शाश्वत में

३३२

जीवन और मृत्यु में संसार और मोक्ष में उन्हें कोई भेद नहीं लगता है...। वे क्रोधविजेता बन गये थे, मानविजेता बन गये थे, मायाविजेता बन गये थे और लोभविजेता बन गये थे।

एक धन्य दिन रागद्वेष के बंधन तोड़ डाले... क्षपकश्रेणी लगायी... आत्मभाव की सघनता बढ़ी... विशुद्धि बढ़ती ही चली... घातीकर्मों का नाश हुआ। दोनों को केवलज्ञान प्रगट हो गया। अनंतज्ञान, अनंतदर्शन... वीतरागता और अनंतवीर्य प्रगट हो गया...!!



महाराजा रिपुमर्दन और रानी रतिसुंदरी को समाचार मिले :

‘अमरमुनि को एवं साध्वी सुरसुंदरी को केवल ज्ञान प्रगट हुआ है।’ रिपुमर्दन ने तुरंत ही धनावह श्रेष्ठी को समाचार भिजवाये। रथ जोड़े गये। राजा-रानी, सेठ-सेठानी, गुणमंजरी एवं अक्षयकुमार केवलज्ञानी के दर्शन करने के लिए और केवलज्ञान का उत्सव करने के लिए काकंदी नगरी की ओर रवाना हुए।

काकंदी नगरी के उद्यान में देवों ने केवलज्ञान का महोत्सव किया था। हज़ारों देव-देवियाँ और हज़ारों स्त्री-पुरुष केवलज्ञानी अमर मुनिराज की वाणी का अमृतपान कर रहे थे। राजा रिपुमर्दन वगैरह ने भी महामुनी की वंदना की और वे उपदेश सुनने के लिए बैठ गये।

केवलज्ञानी मुनिराज ने संसार की यथार्थता का स्वरूप दर्शन करवाया। आत्मा की स्वभावदशा का वर्णन किया, मोक्षमार्ग का ज्ञान दिया।

अक्षयकुमार ने अपने पिता मुनिराज को स्वर्ण-कमल पर आरूढ़ हुए देखे... उनकी अमृतवाणी सुनी। उसे परम आह्लाद प्राप्त हुआ। उसका मन तृप्त बन गया।

गुणमंजरी ने देशना पूर्ण होने के पश्चात् खड़े होकर विनती की :

गुरुदेव, चंपानगरी को पावन कीजिए, मेरा भवसागर से उद्धार करो गुरुदेव! कृपालु, इस संसार का बाकी रहा हुआ एक कर्तव्य अब पूरा हो चुका है... आप अब मेरे पर कृपा करें।’

‘अब तेरा समय परिपक्व हो चुका है, तेरे अधिकांश कर्म नष्ट हो गये हैं, तुझे अति शीघ्र चारित्रधर्म की प्राप्ति होगी।’

सभी का मिलन शाश्वत में

३३३

सभी के मन प्रफुल्लित हुए। सभी चंपानगरी में आये।

महाराजा रिपुमर्दन ने काकंदी-नरेश की राजकुमारी के साथ युवराज अक्षयकुमार की शादी करके शुभ मुहूर्त में राजसिंहासन पर उसका राज्याभिषेक कर दिया।

केवलज्ञानी अमर मुनिराज और केवलज्ञानी साध्वीजी सुरसुंदरी चंपानगरी के बाह्य उपवन में पधारे। हज़ारों श्रमण-श्रमणियों से उपवन भर गया।



चंपानगरी में आनंद का सागर उछलने लगा। हज़ारों प्रजाजन केवलज्ञानी भगवान के दर्शन-वंदन करने के लिए और उपदेश सुनने के लिए दौड़े।

चंपानगरी में ढिंढोरा पीटने लगा :

‘महाराजा और महारानी चारित्र ग्रहण करेंगे।’

‘धनावह श्रेष्ठी और धनवती सेठानी भी चारित्र ग्रहण करेंगे।’

‘गुणमंजरी भी चारित्र अंगीकार करेगी।’

नगर में महोत्सव मनाये गये।

गरीबों को दान दिये गये।

राजा अक्षयकुमार माता गुणमंजरी की गोद में सर रखकर फफक पड़ा... रो-रोकर उसकी आँखें सूज गयीं। गुणमंजरी ने बड़े वात्सल्य से उसे आश्वासन दिया और कहा :

‘वत्स... एक दिन तुझे भी इसी त्याग के मार्ग पर चलना है। प्रजा का पालन नीतिपूर्वक करना... परमात्मा की शरण में रहना।’

दीक्षा का दिन आ गया था।

भव्यातिभव्य... शानदार शोभायात्रा निकली...

केवलज्ञानी महामुनि के हाथों राजा-रानी, सेठ-सेठानी और गुणमंजरी की दीक्षा हुई। रतिसुंदरी, धनवती, गुणमंजरी ने केवलज्ञानी सुरसुंदरी साध्वी की शरण अंगीकार की। राजा रिपुमर्दन और सेठ धनावह ने अमरमुनि के चरणों में जीवन समर्पित किया।

राजा अक्षयकुमार ने राजपरिवार के साथ सभी की वंदना की और म्लानवदन... आँसूभरी आँखों से नगर में लौटा।

सभी का मिलन शाश्वत में

३३४

समय के बीतने के साथ अमरमुनिराज ने अघाती कर्मों का भी नाश किया। उनकी आत्मा सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो गयी। सदेह आत्मा विदेह हो गयी। परम सुख और परमानंद का भोक्ता बन गयी।

इसी तरह साध्वी सुरसुंदरी के भी शेष कर्म नष्ट हुए। उन्होंने भी मोक्षदशा को प्राप्त किया। अक्षयसुख और अनंत आनंद के भोक्ता बन गये।

श्री नमस्कार महामंत्र के अर्चित्य प्रभाव का बयान करनेवाली यह महाकथा सभी मनुष्यों के तमाम दुःखों का नाश करनेवाली हो...! सभी आत्माओं के क्लेश-संताप दूर हो जाएँ... सभी आत्माएँ परमानंद को प्राप्त हो...!!!





आचार्य श्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
कोबा तीर्थ

Acharya Sri Kailassagarsuri Gyanmandir
Sri Mahavir Jain Aradhana Kendra
Koba Tirth, Gandhinagar-382 007 (Guj.) INDIA
Website : www.kobatirth.org
E-mail : gyanmandir@kobatirth.org

ISBN :978-81-89177-04-1